ISSN 2277-5587
Indexed in ULRICH & IIJIF
Impact Factor 3.193
Registered & Listed by UGC 43289

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

शोध श्री

Volume - 23 Issue - 2 April-June 2017 RNI NO. RAJHIN / 2011 / 40531

CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

Shodh Shree Volume - 23 Issue - 2 April - June 2017

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

Virendra Sharma
Chief Editor
Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr. Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof. H.S. Sharma (Retd.)
University Of Rajasthan, **Jaipur**

Prof. T.K. Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P. Saraswat
Dean of Commerce
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Rajesh Choudhary
Deputy Director (Research)
Indian Council of Historical Research, **NewDelhi**

Dr. Avdhesh Kumar Sharma
BBD Govt. PG College, Chimanpura

Advisory Board

Prof. S.N. Tailor (Retd.)
S.D. Government P.G. College, **Beawar**

Prof. S.P. Vyas
Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.)
National Archives of India, **NewDelhi**

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

Contents

Volume-23 **Issue-2** **April - June 2017**

1. **भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में व्यंग्य** 1-5
   अमनप्रीत कौर, दसूहा (पंजाब)
2. **आर्षजीवनशैली में ग्रामीण संस्कृति की महत्ता (वर्तमान युग के विशेष संदर्भ में)** 6-11
   डॉ. आशुतोष पारीक, ब्यावर
3. **वाल्मीकि रामायण में विधि एवं न्याय** 12-21
   डॉ. अशोक कुमार शर्मा एवं डॉ. अजयसिंह राठौड़, जयपुर
4. **सल्तनतकाल में दक्षिण भारत के स्वतंत्र राज्यों में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विकास** 22-27
   ज्ञानेन्द्र, बदरपुर, नई दिल्ली
5. **मोहन राकेश के नाटक : उद्देश्य एवं दर्शन** 28-31
   डॉ. किरन, सकीट, एटा (उत्तर प्रदेश)
6. **माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर का वर्ण संप्रत्यय** 32-36
   डॉ. मनोज कुमार भारी एवं डॉ. विश्राम मीना, दौसा
7. **राजस्थान मे जनजातिय मौताणा लोक प्रथा; एक मानवशास्त्रीय अध्ययन** 37-40
   केशव पारीक, उदयपुर
8. **महाकवि माघ रचित शिशुपालवधम् महाकाव्य का वैशिष्ट्य** 41-46
   डॉ. विजय सिंह मीना, जयपुर
9. **भारतीय राजनीति में 1989–2014 तक साझा सरकारों का युगः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन** 47-51
   मनु सिंह, जोधपुर
10. **महाभारत काल की दूत एवम गुप्तचर व्यवस्था** 52-55
    नीलम जुनेजा, सूरतगढ
11. **भारत–अमेरिका : उत्तर–शीत युद्ध सम्बन्ध** 56-62
    डॉ. जहाँआरा, जयपुर
12. **मालानी क्षेत्र की संगीत आधारित आध्यात्मिक पृष्ठभूमि का तथ्यात्मक आधार** 63-71
    दुष्यन्त त्रिपाठी, ब्यावर
13. **सल्तनतकालीन उत्तर भारत में सामान्यजन के मनोरंजन के साधन** 72-76
    डॉ. निर्मला कुमारी मीणा, जयपुर
14. **नगरीय बुजुर्गो की पारिवारिक देखरेख** 77-83
    लोकेन्द्र सिंह शेखावत, उदयपुर
15. **चचवंशमहाकाव्य का प्रकृति–चित्रण** 84-87
    डॉ. राजेश कुमार मीना, दिल्ली

16. **संत कृपालु महाराज के भक्ति साहित्य में निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म का समन्वय** **88-91**
माला खेमानी, कोटा

17. **बालश्रमः एक समन्वित अध्ययन** **92-97**
डॉ तनुजा झा, सिरोही

18. **राजस्थान के टोंक अंचल के प्रमुख संत** **98-101**
अशोक कुमार जाट, जयपुर

19. **नगरीयकरण की प्रवृत्तियाँ और मानवीय गुणवत्ता पर प्रभाव (टोंक शहर का भौगोलिक अध्ययन)** **102-107**
डॉ. ललित भारतीय, बून्दी एवं राजेन्द्र प्रसाद, कोटा

20. **राजस्थानी कवियों का स्वतंत्रता संग्राम में योगदान** **108-111**
सुरेश कुमार सान्दू, अजमेर

21. **भारत में नक्सलवाद की समस्या एवं उसका प्रभाव** **112-119**
विजय कुमार मीना, जयपुर

22. **सुधा अरोड़ा के कथा साहित्य में परम्परा एवं आधुनिकता का द्वन्द्व** **120-125**
पूर्णिमारानी, जोधपुर

23. **मनरेगा का राजस्थान के ग्रामीण विकास में योगदान** **126-129**
प्रो. डॉ. डी. एस. खींची एवं हेमसिंह गौड, जोधपुर

24. **बीदावाटी का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व** **130-132**
डॉ. श्रवणसिंह, जयपुर

25. **साहित्य में श्रम–निरुपण : हिंदी साहित्य के विशेष संदर्भ में** **133-136**
तारावती मीना, जयपुर

26. **Students' Perception Towards Effective Teaching & Quality of Higher Education (Study Based on Selected U.G. Commerce Students)** **137-142**
Jitendra Singh & Ritu Agrawal, Jaipur

27. **The Role of CAGI in Financial Accountability and Management** **143-149**
Sarla Gehlot, Jodhpur

28. **Social Audit of Panchayati Raj in Rajasthan** **150-153**
Dr. Chhail Bihari & Kedar Lal Meena, Jaipur

29. **Work Life Balance and Civilization** **154-160**
Surbhi Mehra, Ajmer

30. **Assessing Corporate Financial Disclosure Practices in Indian companies: A practical Approach Adoption in View of Indian Accounting Standards** **161-163**
Balkishan Vaishnav, Pali

31. **Women Empowerment: A Challenge of 21st Century** **164-167**
Usha Rathore, Jodhpur

भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में व्यंग्य

अमनप्रीत कौर
सहायक प्राध्यापक, जी.टी.बी खालसा कॉलेज फॉर वूमैन, दसूहा (पंजाब)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश : *भवानी प्रसाद मिश्र आधुनिक हिंदी कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं। बीसवीं सदी के तीसरे दशक से लेकर नौवें दशक तक उनकी काव्य साधना चलती रही। उनकी विचारधारा का निर्माण करने में युगीन परिस्थितियों ने महत्ती भूमिका निभाई। भवानी प्रसाद मिश्र जी की कृतियों में युग-सत्य झाँकता है। भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने काव्य के माध्यम से व्यक्ति और समाज की विसंगतियों, विद्रूपताओं को उजागर कर उन पर व्यंग्य किया है। व्यक्ति, समाज, सत्ता, साहित्य और कलाकार कोई भी उनके व्यंग्य बाणों से नहीं बच सका। प्रस्तुत शोध पत्र में व्यंग्य के परिप्रेक्ष्य में उनके काव्य का मूल्यांकन किया गया है।*

संकेताक्षर : *भवानी प्रसाद मिश्र, व्यंग्य, गांधी-दर्शन, छायावाद, प्रगतिवाद, भ्रष्टाचार।*

साहित्यकार एक सजग व्यक्ति होने के साथ ही युगद्रष्टा भी होता है। वह युगीन परिस्थितियों से पूर्णतः प्रभावित रहता है। उसकी विचारधारा का निर्माण करने में युगीन परिस्थितियां महत्ती भूमिका निभाती हैं। अपने परिवेश से कटकर कोई सृजन-कर्म श्रेष्ठ नहीं हो सकता। 1930 ई से लेखन की शुरुआत करने वाले भवानी प्रसाद मिश्र हिंदी कविता में अपनी विलक्षण पहचान निर्मित करने वाले ऐसे कवि है, जिनकी कविता को समय के साथ बांधकर देखना उनके साथ अन्याय होगा। गांधी जीवन-दर्शन से प्रभावित भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य साधना किसी 'वाद' की मोहताज नहीं है। कृष्णदत्त पालीवाल के शब्दों में – "उनके विषय में यह बात सर्वमान्य है कि सन् 1930 से आरंभ होने वाली काव्य-साधना न तो छायावाद है, न प्रगतिवाद। उसे प्रयोगवाद तथा नयी कविता से भी सीधे नहीं जोड़ा जा सकता। विचार करके इस कविता के पूरे ऐतिहासिक हाशिए को देखा जाये तो कहना पड़ेगा कि यह कविता काव्यांदोलनों की भूमिका और पैगम्बरी मुद्रा से मुक्त है।"[1] भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य यात्रा बीसवीं सदी के तीसरे दशक से लेकर नौवें दशक तक चलती रही। इस काव्य यात्रा में मिश्र जी किसी एक वाद या सिद्धांत से बंधकर न रह सके पर उनकी भवानी प्रसाद मिश्र ने गांधी-दर्शन के प्रति आस्था इससे प्रभावित नहीं हुई। महात्मा गांधी के दर्शन में लोकमंगल की भावना निहित थी, वहीं भावना मिश्र जी के काव्य में मिलती हैं, इसी लोकमंगल की भावना ने उनके कवि-कर्म में विश्व-दृष्टि का निर्माण किया।

भवानी प्रसाद मिश्र अपनी कवि प्रतिभा के बल पर हजारों कवियों में अलग दिखायी पड़ते है। अपनी काव्य-संवेदना से पाठकों में नवीन चेतना फूंकने वाले भवानी प्रसाद मिश्र अपने समकालीन कवियों से बिल्कुल हटकर लेखन करने वाले गिने-चुने कवियों में से एक हैं। विजय बहादुर सिंह के शब्दों में -"महान छायावादियों के बाद आधुनिक हिंदी कविता के परिदृश्य पर जो कवि अद्वितीय काव्य-नक्षत्र की तरह उभरे, वे अज्ञेय और मुक्तिबोध हैं। शमशेर और नागार्जुन भी। इसमें अपनी स्वतंत्र और मौलिक काव्य-आभा लेकर उतरने वाले कवि का नाम भवानी प्रसाद है। तमाम क़िस्म के सिंथेटिक के बीच खुरदरी खादी जैसी विरल उपस्थिति।"[2] भवानी प्रसाद मिश्र एक व्यक्ति नहीं युग का नाम है। मिश्र जी की कृतियों में जहाँ एक ओर युग-सत्य झाँकता है, वहाँ दूसरी ओर उनका कवि-व्यक्तित्व भी आत्म-सजग रूप में दृष्टिगत होता है।

उन्होंने जब लेखन आरंभ किया तब वह समय हिंदी कविता में छायावाद और प्रगतिवाद का संधि-स्थल था। भवानी छायावाद से प्रभावित नहीं थे, परंतु उनकी शुरुआती कविताएं प्रकृति-प्रेम से संबंधित रहीं हैं। ज्यादातर कविताओं का धरातल सामाजिक – सौंस्कृतिक है। गांधी जीवन-दर्शन से प्रभावित होने के कारण वह सत्य के साथ सदैव खड़े रहे। समाज के प्रति समर्पित इस भाषा के सिपाही ने जो कुछ लिखा सत्य लिखा। वह सत्ता के भय से सत्य लिखने से पीछे नहीं हटे। भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने काव्य के माध्यम से व्यक्ति और समाज की विसंगतियों, विद्रूपताओं को उजागर कर उन पर व्यंग्य किया है।

व्यंग्य समाज की विसंगतियों को उजागर करने का कारगार हथियार है। किसी भी समाज-स्थिति पर तीखे स्वर-बाणों से प्रहार ही व्यंग्य है। माजदा असद के शब्दों में-" मानव-चरित्र की दुर्बलताओं को उजागर कर उन पर प्रहार करते हुए समाज के खोखलेपन का पर्दाफाश करना ही इस शब्द के मूल में निहित भाव है। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि विभिन्न प्रकार की विसंगतियों पर कुठाराघात करते हुए उन्हें समाज से दूर करने का प्रयास करना, समाज में फैले हुए असंतुलन को हटाकर सुधारने की कोशिश ही व्यंग्य कहलाती है।"[3] व्यंग्य यथार्थ का गंभीर विश्लेषण है। यह एक प्रकार का बौद्धिक विद्रोह है। भवानी प्रसाद के काव्य में यह बौद्धिक विद्रोह सर्वत्र दृष्टव्य है। व्यक्ति और समाज का कटु यथार्थ भवानी प्रसाद की व्यंग्योक्तियों से मुखरित हो उठा है। श्रीनिवास शर्मा के शब्दों में -" भवानी प्रसाद मिश्र व्यंग्य – प्रवृत्ति सर्वत्र मुखरित है। उसकी विशेषता यह है कि यह व्यंग्य कड़वा, तीखा एवं सच्चा होते हुए भी विनोद की मिठास में लिखा है। व्यक्ति, समाज, सत्ता, साहित्य, कलाकार कोई उनके व्यंग्य-प्रहार से बच नहीं पाया। उनके ये व्यंग्य दूर से रंगीन पिचकारी की तरह सलोने से लगते हुए आकर हृदय में तीर से चुभकर एक मस्तीभरा दर्द पैदा कर देते हैं।"[4] भवानी प्रसाद मिश्र की कविता युगीन परिवेश का आईना है। युगीन यथार्थ उनकी कविताओं में अपना विशिष्ट स्थान बनाता है। किसान और मज़दूर वर्ग के प्रति वह सहानुभूति रखते थे। उनकी कविताओं में श्रमजीवी वर्ग की दयनीय दशा के चित्रण के साथ ही उनकी व्यथा के प्रति आक्रोश व्यक्त हुआ है। 'मंत्रियों का स्वागत' कविता में वह नेताओं पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं :-

"मेरे किसान युग बीत गए गीतों की बात नहीं करते
ऐसा दिन कभी नहीं ऊगा जिसको वे रात नहीं करते
उनको यह लाल-हरी झंडी उनको यह तोरण और सभा
यह चहल-पहल यह दौड़-धूप उनको वस्त्रों की शुभ प्रभा
उनको जयघोष तुम्हारा यह उनको स्वतंत्रता के नारे
कुछ सुखी नहीं कर पाते, वे निस्सहाय वे बेचारे"[5]

कांग्रेस सरकार बनने के बाद भवानी प्रसाद मिश्र को जिस निराशा का सामना करना पड़ा, वही निराशा और सरकार के प्रति रोष इस कविता में व्यक्त हुआ है। मिश्र के काव्य का स्वर सदा से ही गरीब की वाणी रहा। उनकी कविताओं में निम्नवर्ग की दयनीय दशा का मार्मिक चित्रण मिलता है। निम्नवर्ग की दशा में सुधार न कर पाने के कारण वह सरकार के विरुद्ध आक्रोश व्यक्त करते रहें हैं। 'गाँव' कविता में वह व्यंग्य करते हुए लिखते हैं :-

"धूल, गोबर और कचरे में भरी-सी,
देवियाँ निकली कहाँ जीवित मरी-सी।
गाँव में सूरज सबेरा कर रहा है ?
गाँव में सूरज उजेला भर रहा है?"[6]

1947 ई में रचित 'गीत-फ़रोश' कविता ने भवानी जी को और पहचान दिलायी। यह समय ख़ासा उथल-पुथल का समय रहा। जिस तरह की आज़ादी के स्वप्न देखे गए थे, वह कहीं दिखई नहीं दे रही थी। मोह-भंग के इस समय को कवि कलमबद्ध किए बिना न रह सका। कृष्णदत्त पालीवाल के शब्दों में:-"आज़ादी के बाद भारत का राजनीतिकरण अजीब विषमताओं का शिकार हो गया। साम्राज्यवाद विरोधी स्वतंत्रता की क्रांति का स्वरूप 'जितने हरामजादे थे सरकार हो गए' के कारण कुंद पड़ गया। कुर्ता-धोती-टोपी के प्रतीक आज़ादी पूर्व के संकल्प का अर्थ ही खो बैठे-अब उनमें मक्कारवाद, धूर्ततावाद, कुर्सीवाद का अर्थ प्रवेश पा गया। ईमान सड़कों पर बेचा जाने लगा।"[7] ऐसी परिस्थितियों में कवि मन बेचैन हो उठा। देश में व्याप्त भ्रष्टाचार के साथ ही कवि अपने ऊपर किये जा रहे व्यंग्य-प्रहार का उत्तर देते हुए 'गीत-फ़रोश' में लिखते हैं:-

"जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको
पर बाद में अक़्ल जगी मुझको,
जी लोगों ने तो बेच दिए ईमान,
जी, आप न हों सुनकर ज़्यादा हैरान-
मैं सोच-समझकर आख़िर अपने गीत बेचता हूँ
जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ,
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूँ।"[8]

ISSN 2277-5587

भवानी प्रसाद मिश्र गांधी जीवन-दर्शन से प्रभावित रहे। महात्मा गांधी ने जिस प्रकार अहिंसा के मार्ग पर चलकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में अपना सहयोग दिया, उसी प्रकार मिश्र जी भी उनके नक़्शे कदमों पर चलते हुए अपने काव्य के माध्यम से अहिंसा दर्शन को अपने में रचाये हुए, साम्यवादियों के खिलाफ व्यंग्य बाण छोड़ते रहे। भवानी प्रसाद मिश्र के शब्दों में:-"गाँधी विचारधारा की तुलना में मार्क्सवाद अधूरा, अपर्याप्त एवं एकांगी जीवन-दर्शन प्रतीत हुआ-मुझे और मार्क्सवाद एक ढंग से हिंसा सिखाता है और हिंसा की राह मानव और प्रेम की राह नहीं है- पशु की राह है।"[9] मिश्र जी साम्यवादियों को चालाकी के पुर्जे मानते रहें हैं। उन्हें मार्क्सवाद देश-विरोधी धारणा लगती रही। अपनी कविता 'पत्र साम्यवादी मित्र को' में वह साम्यवादियों पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं:-

"कब तक चलेगा यही
रोना किसान के मज़दूर के दुख़ड़े को
शीशे में हज़ार बार देखना मुखड़े को
काम से पसीने से कोई पहचान नहीं
कोरी कविता का और तिस पर अवसान नहीं
उतरेगी कैसे उन शब्दों में व्याकुलता
जिनका दुख गाना है उनका दुख जानो तो"[10]

साम्यवादी खुद को श्रमिक वर्ग का मसीहा मानते थे। पर दुख किसे कहते है, वह नहीं जानते और उन पर कविताएं भी लिखी जा रही थीं। भवानी प्रसाद साम्यवादियों पर व्यंग्य करते हुए 'न उन्होंने' कविता में लिखते है:-

"न उन्होंने हल चलाया न चरखा
न उन्होंने गरमी झेली न बरखा
मगर उन्होंने कुछ नहीं किया
ऐसा मत कहो!"[11]

भवानी प्रसाद मिश्र अपने परिवेश को निर्भय होकर कलमबद्ध करते रहे। उन्होंने विभिन्न विरोधों और आरोपों का सामना करना पड़ता रहा। पर मिश्र जी अदम्य साहस और कवि-कर्म को समझते हुए सत्ता के डर से कभी पीछे न हटे। भवानी प्रसाद मिश्र के शब्दों में:-"रचनाकार व्यवस्था का क्रीतदास नहीं बन सकता। वह व्यवस्था के 'प्रोटेस्ट' में खड़ा रचनाकार होता है।"[12] रचनाकार पर लगाए जाते आरोपों पर व्यंग्य करते वह लिखते है:-

मैं गँवार हूँ और गधा हूँ
क्योंकि वचनों से अपने बँधा हूँ
तुम होशियार हो और हंस हो
क्योंकि अपनी प्रतिज्ञाओं के ध्वंस हो"[13]

'मेरा और तुम्हारा' कविता में भी कवि व्यंग्य करते हुए लिखते है:-

मेरा और तुम्हारा सारा फ़र्क इतने में है कि
तुम लिखते हो मैं बोलता हूँ
और कितना फ़र्क हो जाता इससे
तुम ढाँकते हो मैं खोलता हूँ।"[14]

भारीतय स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के साथ-साथ भवानी प्रसाद मिश्र का झुकाव कांग्रेस सरकार की तरफ रहा। उन्हें कांग्रेस सरकार से बहुत उम्मीदें थी। पर सरकार उनकी आशाओं पर पानी फेरती रही। जयप्रकाश नारायण और राम मनोहर लोहिया से भी भवानी प्रभावित रहे। कांग्रेस की नीतियों के कारण जयप्रकाश नारायण कांग्रेस विरोधी हुए और इसी से भवानी भी प्रभावित हुए। शुरुआत में कांग्रेस से प्रभावित भवानी जी बाद में कांग्रेस विरोधी हो गये। राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार ने कवि का मन उचाट-सा दिया। तब वह सत्ता से बेपरवाह राजनीतिज्ञों पर व्यंग्य करने से पीछे न हटे। 'चार कौए उर्फ़ चार हौए' कविता में कवि का व्यंग्य तत्कालीन राजनीतिज्ञों का कच्चा-चिट्ठा प्रस्तुत करता है:-

"बहुत नहीं थे सिर्फ़ चार कौए थे काले
उन्होनें यह तय किया कि सारे उड़ने वाले
उनके ढंग से उड़े, रुकें, खाएं और गाएँ
वे जिसको त्योहार कहें सब उसे मनाएँ।"[15]

कवि 'नायाब तरकीबें' कविता में भी राजनीतिज्ञों पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं:-

"हम जो चाहेंगे काटेंगे इन फ़सलों से
बोने को बोई होगी क्रांति जवानों ने
पर हम साइंस भिड़ाएँगे ऐसा
रह जाएगी आज़ादी बरसेगा पैसा।"[16]

भवानी प्रसाद मिश्र जोखिम उठाने वाले रचनाकार रहे हैं। सत्ता का दबाव उन्हें सत्य लिखने से रोक न सका। जो उन्होंने देखा, समझा उसी पर लिख डाला। भवानी प्रसाद मिश्र के शब्दों में:-"मन में जो आता है- कह देता हूँ, कहने का ज़ोखिम उठाता हूँ। ज़ोखिम उठाता हूँ इसीलिए भवानी प्रसाद हूँ- वरना मुझमें क्या है- मुझसे अच्छे कवि हैं- बहुत खराब कवि हैं।"[17] भवानी प्रसाद की यही बेफ़िक्री उनकी कविताओं में दृष्टव्य है। सत्ता की नीतियों से रुष्ट कवि

अपने को व्यक्त करने से पीछे न हट सका। 'कलम कारण' कविता में कवि व्यंग्य करते हुए लिखते है:-

''हमने उठा ली क़लम
और जो कुछ ठीक माना
सो लिखने लगे
क़लम कर दिए गए इस अपराध में
हमारे हाथ कि हमने उन्हें
नाथ क्यों नहीं लिखा।''[8]

राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार, सामंतवाद, जमींदारी व्यवस्था की मिलीभगत ने किसानों का जो अहित किया, उसके प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए कवि कविता 'वे परेशानी में थे' में लिखते है:-

''वे परेशानी में थे तो पूछा हमने
उससे मोल-भाव करने के बजाय
करना चाहते हैं सरकार से मोलभाव
न सही किसान
सरकार हमारी मुट्ठी में है!''[9]

साधारण विषय को भी असाधारण बना देने वाले भवानी प्रसाद को आलोचनाओं का सामना करना पड़ता रहा। अपनी आलोचनाओं से वह घबराये नहीं, पर जो उन्हें न भाया उसे वह कभी न अपना सके। सीधी-सरल भाषा में अपनी बात को रखने वाले इस कवि ने आलोचना के शब्दों से भी शब्दहार बना डाले:-

''तुकें ज़रा ज़्यादा हैं तुम्हारे पास
कहा गया हमसे
और हम हो गए उदास
बेतुके होने की कोशिश में
काम चलाने लगे कुछ कम से

XXX

भाई रघुवीर सहाय
ज़रा तुम सुझाना
क्या मैं अपनी तुकों को छोड़कर
तुम्हारे शिल्प पर उतर आऊँ
बजाय अपने इस छोटे घर के
किसी बड़ी सराय में ठहर जाऊँ
जब तक ठहरने दे सराय वाला''[10]

'यह वसंत है भाई' और 'आजकल' कविताओं में भी कवि का व्यंग्य बहुत पैना बन पड़ा है। कवि हर तरफ से की जा रही अपनी आलोचना को कविता में व्यक्त करते हुए लिखते है :-

''छायावाद ही नहीं
मर तो हम भी गए हैं
जो जरुरत से ज़्यादा नए हैं
और जिनकी ओर कोई आँख
उठाकर नहीं देखता
हमारे भावों को तो छोड़ो
लोग हमारे घावों को भी
झूठा मानते है''[11]

अपने युग के प्रति पूर्णतः समर्पित भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य उनकी अनुभूतियों और युगीन यथार्थ का परिचायक रहा है। व्यक्ति, समाज, सत्ता, साहित्य और कलाकार कोई भी उनके व्यंग्य बाणों से नहीं बच सका। युगीन यथार्थ का गंभीर विश्लेषण उनकी व्यंग्योक्तियों में लक्षित हुआ है। व्यंग्य एवं विद्रोह तो उनके पूर्ववर्ती और परवर्ती साहित्यकारों में भी मिलता है पर, जिस सहज-स्वभाव से मिश्र जी ने उसे पकड़ा और व्यक्त किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *पालीवाल, कृष्णदत्त. भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य संसार, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2004, पृष्ठ-9*
2. *संपा सिंह, विजय बहादुर. भवानी प्रसाद मिश्र-प्रतिनिधि कविताएं दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2014, पृष्ठ-5*
3. *मजदा, असद. गद्य के विविध रूप. नई दिल्ली :ग्रंथ अकादमी, 1992, पृष्ठ-27*
4. *शर्मा, श्रीनिवास. हिंदी साहित्य का इतिहास. दिल्ली : अशोक प्रकाशन, 2004, पृष्ठ-652*
5. *संपा सिंह, विजय बहादुर. भवानी प्रसाद मिश्र-प्रतिनिधि कविताएं दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2014, पृष्ठ-18*
6. *वही- पृष्ठ-19*
7. *पालीवाल, कृष्णदत्त. भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य संसार, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2004, पृष्ठ-21*
8. *संपा सिंह, विजय बहादुर. भवानी प्रसाद मिश्र-प्रतिनिधि कविताएं दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2014, पृष्ठ-45*
9. *पालीवाल, कृष्णदत्त. भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य संसार, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2004, पृष्ठ-174-75*
10. *संपा सिंह, विजय बहादुर. भवानी प्रसाद मिश्र-प्रतिनिधि कविताएं दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2014, पृष्ठ-42*
11. *वही- पृष्ठ-106*
12. *पालीवाल, कृष्णदत्त. भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य संसार, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2004, पृष्ठ-175*

13. संपा सिंह, विजय बहादुर. भवानी प्रसाद मिश्र–प्रतिनिधि कविताएं दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2014, पृष्ठ–68
14. वही– पृष्ठ–75
15. वही– पृष्ठ–78
16. वही– पृष्ठ–79
17. पालीवाल, कृष्णदत्त. भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य संसार, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2004, पृष्ठ–177
18. संपा सिंह, विजय बहादुर. भवानी प्रसाद मिश्र–प्रतिनिधि कविताएं ,दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2014, पृष्ठ–130
19. वही– पृष्ठ–125
20. वही– पृष्ठ–96
21. वही– पृष्ठ–113

आर्षजीवनशैली में ग्रामीण संस्कृति की महत्ता (वर्तमान युग के विशेष संदर्भ में)

डॉ. आशुतोष पारीक
व्याख्याता, सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश : *आज की पीढ़ी भले ही वर्तमान युग के रहन-सहन एवं विचारों में रची बसी नज़र आ रही है किन्तु आयु की किसी न किसी अवस्था में प्रत्येक मनुष्य को यह लगता है कि इतना सब कुछ प्रकृति ने दिया और वह भी मात्र इसके लिए और तब जाकर इस चकाचौंध वाले आधुनिक जीवन से विरक्तिभाव जाग्रत हो उठता है तथा मानवीय सभ्यता और संस्कृति की आर्षजीवन शैली के प्रति हमारा मन अनायास ही उन्मुख होने लगता है। शहरी जीवन ने हमें प्रकृति के अधिकाधिक दोहन और अमानवीय शोषण के अतिरिक्त क्या सिखाया है ? औद्योगिक क्रान्ति के मात्र ढाई सौ वर्षों में आज प्रकृति का यह हाल हो गया है जबकि हमारे पूर्वजों ने इस प्रकृति में हज़ारों लाखों वर्ष बिता दिये। क्या हम ऐसा नारकीय जीवन अपनी आने वाली पीढ़ी को देकर खुश रह पायेंगे। प्राकृतिक तत्वों के अभाव एवं दूषित पर्यावरण की पृष्ठभूमि पर कौनसा नूतन पुष्प पुष्पित हो सकेगा। आज आवश्यकता है जीवनपति को फिर से नया करने की, पुरातन से वह सीखने की जिससे हम अपना ही नहीं आने वाली सन्ततियों का भी हित कर पायेंगे क्योंकि यही वास्तविक मानवीय मूल्य है।*

संकेताक्षर : *आर्षजीवन, Mini City, आत्मनिर्भर, आर्यगृह, सादा जीवन उच्च विचार, आर्यग्राम, पंचमहायज्ञ, वर्णाश्रमव्यवस्था, ग्रामणी व ग्राम पंचायत, वैदिक साम्यभाव, असुर प्रवृत्ति, आर्ष राज्य की परिकल्पना।*

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुव।।[1]

समस्त पाप, अनाचार एवं बुराइयों से दूर करते हुए अभ्युदय, सर्वकल्याण एवं निःश्रेयस् को प्राप्त कराने की प्रार्थना से विश्वकल्याण का पोषक यह यजुर्वेदीय मन्त्र। वैदिक मन्त्रों की सबसे बड़ी विशेषता है– समस्त जगत् का अभ्युदय और इसी कारण वैदिक परम्पराएँ एवं दृष्टिकोण अल्पाधिक रुप में आज भी संसार की सभी सभ्यताओं में दृष्टिगोचर होते हैं।

आर्ष अर्थात् ऋषिप्रणीत। वैदिक ऋषियों ने वर्षों की तपस्या एवं वैदिक अन्वेषणात्मक शोध से जिन निष्कर्षों को प्राप्त किया, वे निष्कर्ष एवं तदनुरुप व्यवस्थाएँ आर्ष-व्यवस्थाएँ कहलाने लगीं। वर्णाश्रमव्यवस्था, वैदिक-यज्ञविधान, सोलह संस्कार, आचार-विचार, वेदाध्ययन की अविच्छिन्न परम्परा ने इस भारतीय उपमहाद्वीप को 'विश्वगुरु' और 'सोने की चिड़िया' बना दिया। कारण स्पष्ट है कि वैदिक ज्ञान-विज्ञान की दृढ भूमि पर एक महान् सामाजिक व्यवस्था ने जन्म लिया था और इसी कारण मनुस्मृति में महर्षि मनु यह उद्घोष कर सके–

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।[2]

वैदिक जीवनपरिचर्या को ग्रामीण परिचर्या भी कहा जा सकता है क्योंकि आर्य लोगों के जीवन में बड़े नगरों एवं महानगरों का

 ISSN 2277-5587

स्थान नगण्य–सा था। इतिहासकार यह मानते हैं कि सिन्धु घाटी की नगरीय सभ्यता के नष्ट होने में आर्यसभ्यता एवं आर्य विचारधारा भी सहायक थी। वास्तविक रुप में यह कोई जातिगत संघर्ष नहीं था अपितु यह संघर्ष था भोगवाद और योगवाद में, भौतिकता और आध्यात्मिकता में, शिक्षा की भौतिकता और ज्ञान की पराकाष्ठा में, नगरीय और ग्रामीण व्यवस्था में, ऐश्वर्यपूर्ण जीवन और सादा जीवन उच्च विचार में।

यह वास्तविकता है कि साधनों और विचारों के युद्ध में अन्ततः विजय विचारों की ही होती है। साधन विचारों को बल प्रदान कर सकते हैं किन्तु यदि साधन ही विचार बन जाएँ तो ऐसे साधनों का अन्त निकट भविष्य में सुनिश्चित ही है। आज का युग साधनों की प्रचुरता का युग है। जिसके पास जितने अधिक साधन–संसाधन हैं, वह उतना ही अधिक विकसित है। यही आज के विकास का एकमात्र नियम है। अतः आज के ज्ञान–विज्ञान का एकमात्र लक्ष्य उत्कृष्ट से उत्कृष्टतर और उत्कृष्टतर से उत्कृष्टतम साधनों को जुटाना ही रह गया है; किन्तु भौतिकता के दो सबसे बड़े दोष हैं : 1. भौतिक विज्ञान की अनिश्चितता 2. प्रकृति में साधनों का सीमित होना। आधुनिक विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् जे.ए. थॉम्सन कहते हैं "When minor mysteries disappear, greater mysteries stand confessed. Science never destroys wonder, but only shifts it higher and deeper."[3] अर्थात् संसार के जब छोटे रहस्य खुल जाते हैं, तो आगे और बड़े रहस्य आ उपस्थित होते हैं। संसार के आश्चर्यों को विज्ञान कभी मिटा नहीं सकता, प्रत्युत उन्हें अथाह और अगाध बना देता है।

इसी प्रकार मनोविज्ञानी प्रो. मेडौगॉल के अनुसार किसी भी जीवनकार्य की संगति भौतिक नियमों से अब तक स्पष्ट नहीं की जा सकी। आँसू निकलने या पसीना बहने के छोटे–छोटे जीवनकार्य भी भौतिक तथा रासायनिक नियमों से स्पष्ट नहीं हो सकते।[4]

अतः कहा जा सकता है कि भौतिक जीवन में भारतीय विचारधारा के ग्राम अपने आप में स्वयं जीवन्त होने की क्षमता से विकसित थे। ग्राम वैचारिक रुप में सुदृढ हों, इसकी आवश्यकता निश्चित रुप से है किन्तु वे आत्मनिर्भर हों, यह भी अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान ग्रामीण परिवेश निरन्तर बदल रहा है। ग्रामीण उपयोगी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्वों को आज गाँवों ने छोड़ दिया है। भौतिकता की भागदौड़ में लगे शहरों ने गाँवों को अपना जैसा ही बनने के लिए मजबूर कर दिया है। आज के गाँव 'Mini City' बनने की होड़ में हैं तथा वर्तमान व्यावसायिक सोच भी यही चाहती है। किन्तु ऐसा होने से हम गाँवों को भी उन्हीं समस्याओं से जोड़ देंगे जिनसे हमारे महानगर जूझ रहे हैं। अतः ग्रामीण और नगरीय व्यवस्था का भारतीय परिस्थिति के अनुसार सामंजस्य अत्यन्त आवश्यक है। आर्षकालीन जीवनपरिचर्या इसमें अत्यन्त उपादेय है; आइये जानें आर्षजीवनशैली के उन तत्त्वों को जिन्होंने ग्रामीण जीवन को श्रेष्ठ व आत्मनिर्भर बनाए रखा–

आर्यगृह, ग्राम और नगरः आर्षपरम्परा में आश्रमव्यवस्था के कारण समाज की आधे से अधिक जनसंख्या (लगभग तीन चौथाई) के पास स्वयं का घर नहीं होता था। मोह, अभिमान, आलस्य उत्पन्न करने वाले मनुष्य की स्वाभाविकता के विपरीत भव्य–भवनों व मकानों के आर्यसभ्यता में स्थान नहीं दिया गया। ऋग्वेद में उल्लेख है कि आर्यों के घर प्रायः लकड़ी के होते थे। उनकी छत घासफूस और पत्तों की बनाई जाती थी।[5] वहीं मित्र और वरुण के भवन सहस स्तम्भ और सहस्त्र द्वार वाले बतलाये गये हैं।[6]

आर्यों के मकानों का आदर्श स्वरुप अथर्ववेद में इस प्रकार वर्णित है–

तृणैरावृता पलदान्वसाना रात्रीव शाला जगतो निवेशनी।
मिता पृथिव्यां तिष्ठसि हस्तिनीव पद्वती।।[7]
या द्विपक्षा चतुष्पक्षा षट्पक्षा या निमीयते।
अष्टापक्षां दशपक्षां शालां मानस्य पत्नीमग्निर्गर्भ इवा शये।।[8]

कौषीतक्युपनिषद्[9] में गृहस्वरुप का वर्णन करते हुए उल्लेख है कि भवन की परिधि में सर्वप्रथम वृक्ष तत्पश्चात् भवन होता था। इसका एक भाग अपराजित आयतन था जो सम्भवतः अधिक दृढ होता था। आयतन के मुख द्वार पर द्वार–गोप रहते थे। इस द्वार से प्रवेश करने पर विभु नामक महाकक्ष होता था। इस कक्ष में आसन्दी, पर्यक आदि बैठने और सोने के सामान होते थे।

प्रो. रामजी उपाध्याय के शब्दों में– ''आर्यों की रहन–सहन वैदिक युग के प्रारम्भ में प्रधानतः ग्रामीण थी। उनके गाँवों के आसपास पशुओं के चरने के लिए मैदान व पानी पीने के लिए सरितायें होती थीं। आर्यों के कृषक–जीवन के लिए उपयोगी जो घर होते थे, उनमें पशुओं के रहने के लिए कमरे तथा उनके भोजन को सुरक्षित रखने के लिए स्थान होता था।... उनके घर सुखप्रद थे और घर में रहने का विचार

मात्र आह्लादजनक था। घर के बाहर वृक्षों को वे शरण मानते थे।''[10] पं. रघुनन्दन शर्मा के शब्दों में – ''आर्यसभ्यता की स्थिरता तो सादे, स्वच्छ और छोटे घरों में ही रह सकती है। इसलिए सादे ही घर होने चाहिए और ऐसे ही सौ– दो सौ घरों का ग्राम होना चाहिए तथा प्रत्येक ग्राम के बाद बहुत सा जंगल छोड़कर फिर दूसरा ग्राम आबाद करना चाहिए।''[11] मनुस्मृतिकार ने ग्राम एवं नगरों की अवस्थिति का नियम इस प्रकार स्पष्ट किया है–

धनुःशतं परीहारो ग्रामस्य स्यात् समन्ततः।
शस्यापातास्त्रयो वापि त्रिगुणो नगरस्य तु।।[12]

अर्थात् प्रत्येक ग्राम के चारों ओर एक सौ धनुष भूमि छोड़ देनी चाहिए और बड़े नगरों के चारों ओर इससे तिगुनी चरभूमि को छोड़ना चाहिए।

पशुपालन एवं चरभूमि : शतपथ ब्राह्मण में प्रजापति एवं पशु को 'यज्ञ' कहा गया है क्योंकि मनुष्य इन्हीं दोनों से पालित होता है। पशुओं में भी गाय की महत्ता सर्वाधिक है। आर्यव्यापार में पशुरक्षा का विशेष महत्त्व बतलाया गया है। ऋग्वेद के अनुसार–

एता धियं कृणवामा सखायोऽप या मातॉं ऋणुत व्रजं गोः।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम्।।[13]

अर्थात् मित्रो! आओ, गायों के बड़े–बड़े गौष्ठ बनाने का उद्यम करें। यह उद्यम माता के समान है। इसी से मनुष्य शत्रुओं को जीत सकता है और इसी से उत्कण्ठवान् वणिक् हर प्रकार के रस को प्राप्त होते हैं।

चरभूमि के बिना पशु रह ही नहीं सकता। पशुओं को 'प्रजापति' तो वृक्षों को 'पशुपति' कहा गया है। गायों के चरागाह 'व्रज', अश्वों के चरागाह 'अर्व', भेड़ों के चरागाह 'गान्धार' कहलाते थे। 'गोमध यज्ञ' अर्थात् अन्न के योग्य (उत्तम खेती के योग्य) भूमि तैयार करना। पं. रघुनन्दन शर्मा अपनी पुस्तक वैदिक सम्पत्ति में लिखते हैं– ''चरभूमि का देना अथवा ऐसी भूमि मोल लेकर चरने के निमित्त छोड़ना अथवा ऊबड़–खाबड़ ज़मीन को इस योग्य बना देना कि उसमें हर प्रकार के अन्न, घास, बाग और जंगल हो सकें, आर्यसभ्यता का खास गुण था।''[14] इस प्रयास से सभी पशुओं के लिए समान रुप से चरागाह की व्यवस्था एवं पशुवृद्धि होगी।

सामाजिक व्यवस्था – वैदिक सामाजिक व्यवस्थाओं ने तत्कालीन समाज को ऐसे दृढ आधार प्रदान किए जिन्होंने समाज को अनवरत रुप से सत्पथ पर अग्रसर किया। वर्ण, आश्रम, पुरुषार्थचतुष्टय, पंचमहायज्ञ एवं वैदिक यज्ञादि ऐसे ही उपाय थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों वर्णों के कर्तव्यों का सुन्दर अभिव्यंजन करते हुए यजुर्वेद में उल्लेख है–

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्य मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम्।।[15]

वैदिक काल में इन चारों वर्णों में सामंजस्य, प्रेम और सद्भाव था। वेदाध्ययन का अधिकार सभी वर्णों का था।[16] चारों वेदों में जातिव्यवस्था, जातिप्रथा या जन्मना जाति का उल्लेख नहीं है।[17]

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रमों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि इनके द्वारा समाज के संसाधनों का अत्यन्त सरल एवं सहज रीति से समान भाव के साथ उपयोग को आधार मिला। यहाँ कर्तव्यों एवं अधिकारों का इतना सुन्दर विभाजन है कि किसी को कष्ट नहीं होता तथा ये आश्रम मनुष्य को उसके चारों पुरुषार्थों धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के साधन बन जाते हैं।

पंचमहायज्ञ प्रत्येक गृहस्थ के लिए अनिवार्य बताये गये हैं। ये हैं– ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय), देवयज्ञ (अग्निहोत्र), पितृयज्ञ (तर्पणदि), बलिवैश्वदेवयज्ञ (पशु–पक्षियों के लिए अन्नादि) और अतिथियज्ञ (वानप्रस्थ, संन्यासी आदि की सेवासुश्रुषा)। स्वयं सुदृढ बन सम्पूर्ण समाज को बल प्रदान करने वाले ये यज्ञ दैनिक यज्ञ हैं। इन्हीं के साथ यज्ञों में औषधियों के अतिरिक्त जौ, चावल, तिल, सत्तू, हविः, करम्भ, मालपुआ, भात, मेवे आदि का भी हवन किया जाता है। इन सभी का कृषि से सम्बन्ध है, अतः यज्ञों में कृषि का विशेष महत्त्व है। बाग–बगीचे लगाना, कुएँ एवं तालाब बनवाना भी एक यज्ञ है, जिसे 'इष्टापूर्त' कहते हैं।

राजा के कर्तव्य : यजुर्वेद में राजभिषेक के समय राजा के चार प्रमुख दायित्वों का वर्णन किया गया है–

कृष्यै त्वा, क्षेमाय त्वा। रम्यै त्वा, पोषाय त्वा।।[18]

1. कृषि की उन्नति, 2. जनकल्याण, 3. राष्ट्र की समृद्धि, 4. राष्ट्र की रक्षा व उसका विकास।

इसी के साथ राजा को यह निर्देश है कि वह द्यूत खेलने वालों व जुआचोरों के पाषाणनिर्मित समस्त नगरों को तुड़वा दे।[19] महर्षि मनु ने शिल्पियों पर राजा की कड़ी नज़र की बात कही है। वे लिखते हैं–

असम्यक्कारिणश्चैव महामात्राश्चिकित्सकाः।
शिल्पोपचारयुक्ताश्च निपुणाः पण्ययोषितः।।

ISSN 2277-5587

एवमादीन्विजानीयात्प्रकाशाँल्लोककण्टकान्।
निगूढचारिणश्चान्याननार्यनार्यलिङ्गिनः।।[20]

अर्थात् बुरे कर्म करने वाले, उच्च कर्मचारी, वैद्य, मारन-मोहन करे वाले, शिल्पी, वेश्यादिकों में रहने वाले तथा आर्यरुप धारण किए हुए अनार्यों पर राजा को कड़ी निगाह रखें।

ग्रामणी एवं ग्राम पंचायत: ग्रामणी अर्थात् ग्राम का प्रमुख या ग्राम का मुखिया। ग्रामणी स्वयं तेजस्वी हो तथा अपनी योग्यता से ग्रामीणों को तेजस्वी, वर्चस्वी और स्वावलम्बी बनावे। अथर्ववेद में कहा गया है-

ग्रामणीरसि, अभिषिक्तोऽभि मा सिंचि।
तेजोऽसि तेजो मयि धारय।।[21]

कृषिव्यवस्था : कृषि समृद्धि का द्योतक है। कृषि एवं पशुपालन के बिना ग्राम का अस्तित्व सम्भव नहीं। अतः अथर्ववेद कृषि तथा गाय, अश्वादि पशुओं के मनुष्य के लिए शुभ होने की कामना करता है-

शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो, अश्वेभ्यः शिवा भव।
शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय .... ।।[22]

पशुसंरक्षणार्थ ऋग्वेद में व्रज बनाने का विधान है - ''व्रजं न पशु-वर्धनाय।''[23] कृषि के क्षेत्र में विशेष योग्यता प्राप्त व्यक्ति को क्षेत्रवित् कहते थे। क्षेत्रवित् ग्रामीणों की कृषि सम्बन्धी समस्या का समाधान करते थे। ऋग्वेद कहता है-

क्षेत्रवित्तरो मनुषो वि वो मदे।।[24]

वैदिक साम्यभाव: यज्ञ का उद्देश्य सार्वजनिक सुखों की अभिवृद्धि करना है। भेदभाव रख कर संकुचित मानसिकता का नाश साम्यभाव से ही सम्भव है। अश्वमेध यज्ञ का उद्देश्य भी यही साम्य लाना है। मिल-बाँटकर खाने की श्रेष्ठभावना से ओतप्रोत होने के लिए ऋग्वेद कहता है- ''केवलाघो भवति केवलादी।''[25] मनुष्य की इच्छाओं को सात भागों में बाँटा जा सकता है- 1. बहुत जीने की इच्छा 2. स्त्री, सन्तान, रति, शोभा, शृंगारादि की इच्छा 3. खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, मकान, गृहस्थी, बाग-बगीचे, खेत व पशुओं की इच्छा 4. यश-मान आदि की इच्छा 5. विद्या, ज्ञान, विज्ञान और मालूमात की इच्छा 6. न्याय की इच्छा 7. मोक्ष की इच्छा। किन्तु इन सभी के लिए समान अधिकार एवं समान कर्तव्य से ही समाज में साम्यभाव स्थापित हो सकता है। आत्मकल्याण के लिए मनुष्य को जीवन में ऋणी या कर्जदार नहीं होना चाहिए; अथर्ववेद के अनुसार-

अनृषा अस्मिन् अनृणाः परस्मिन्,
तृतीये लोके अनृणाः स्याम।।[26]

वहीं अथर्ववेद के एक मंत्र में कहा गया है कि मनुष्य जन्म से ही धनवान् व करोड़पति है। परमात्मा ने उसे जन्म से ही सद्विचार के रुप में सैकड़ों प्रकार की विभूतियाँ, ऐश्वर्य और धन प्रदान किया है-

एकशतं लक्ष्म्यो मर्त्यस्य, साकं तन्वा जनुषोऽधि जाताः।
तसां पापिष्ठा निरितः प्रहिण्मः,
शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नि यच्छ।।[27]

खेत, खाद, खदान और यंत्र : मनुष्य की वास्तविक (मौलिक) खुराक फल, फूल, दूध, दही आदि है। अतः मनुष्य को इन्हीं की प्राप्ति व संवर्धन का प्रयत्न करना चाहिए। वैदिक विचार के अनुसार खेती से उत्पन्न अन्न मनुष्य का प्राकृतिक भोजन नहीं है। साथ ही खेती करने के लिए जंगलों, वाटिकाओं व चरागाहों को नष्ट करना पड़ता है। अतः अन्न उपजाना भी सृष्टिनियम के विरुद्ध है। अतः जब खेती करना ही सृष्टिनियम के विरुद्ध है तो उसके संवर्धन के लिए रासायनिक खाद आदि के प्रयोग की तो चर्चा ही अनुचित है।

खदानों में निहित खनिजादि पदार्थ पृथ्वी के ही भाग हैं, उनके अनियंत्रित दोहन से पृथ्वी के भार एवं परिमाणादि प्रभावित होते हैं, अतः ऐसे पदार्थों के प्रति आकर्षण एवं अन्वेषण को भी नियंत्रित करना आवश्यक है।

मनुस्मृति में महर्षि मनु ने यन्त्रादि के परिचालन, खदानों से खनिज प्राप्ति, वृक्षों को काटना आदि को पापकर्म कहा है-

सर्वाकरेष्वधीकारो महायन्त्रप्रवर्तनम्।
हिंसौषधीनां स्त्र्याजीवोऽभिचारो मूलकर्म च।।[28]
उपपातकम्।।[29]

अर्थात् समस्त खदानों में अधिकार करना, बड़े-बड़े यन्त्रों को चलाना, वृक्षों को काटना, वेश्यावृत्ति और अभिचार आदि करना उपपातक हैं।

ग्राम्य एवं नागरिक जीवन : एक तुलना - आर्षदृष्टिकोण के अनुसार नागरित जीवन सृष्टिनियम के बिल्कुल ही प्रतिकूल है और नागरिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली अमित सम्पत्ति बिल्कुल ही अस्वाभाविक है। ऐसा आसुरी जीवन नितान्त अस्वाभाविक है, इसीलिए आर्यसभ्यता में नगरों के लिए स्थान नहीं है। वेद में में इन्दसूक्त के अन्तर्गत इन नगरों के भंजन की बात कही गई है-

त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ।।[30]

अर्थात् हे राजन्! आप प्रकृष्ट बुद्धि वाले छलकपटयुक्त अयज्वा अव्रती दस्युओं को कम्पायमान कीजिए और जो यज्ञ न करके अपने ही पेट भरते हैं, उन दुष्टों को दूर कीजिए और इन उपद्रव, अशान्ति, अज्ञानता और नास्तिकता फैलाने वाले जनों के नगर को भग्न कर दीजिए तथा दुष्टों का दमन कर सरल प्रकृति मनुष्यों की रक्षा कीजिए।

पं. रघुनन्दन शर्मा के शब्दों में– ''आर्यसभ्यता में नागरिक जीवन असुर प्रवृत्ति वाला समझा जाता है, इसलिए नगरों को तुड़वा देने की आज्ञा दी गई है। आर्यसभ्यता में जब नगरों की ही आवश्यकता नहीं बतलाई गई तब भला नागरिक जीवन और नागरिक सम्पत्ति की बात कहाँ बतलाई जा सकती है?''[31]

आर्यनगर तो केवल राजा के निवास अथवा व्यवसायादि कारण ही बनते थे। ये नगर भी छोटे-छोटे ग्रामों व जंगलों से सदैव घिरे होते थे। इसके दो कारण व प्रमाण हैं – 1. प्रत्येक आर्य सन्ध्यावन्दन हेतु प्रातः व सायं जंगल जाता था, 2. आर्षशास्त्रों में मैला ढोने व शौचालयादि के लिए कोई शब्द नहीं है।

आर्ष राज्य के आदर्श को प्रस्तुत करते हुए राजा अश्वपति घोषणा करते हैं–

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।[32]

अतः निष्कर्ष रुप में यही कहा जा सकता है कि आज आवश्यकता है समाज को ग्रामों की महत्ता के बारे में बताने की। ग्रामीण जीवन जीना सौभाग्य की बात है, अतः नगरीय जीवन को ग्रामों को अपनी ओर आकर्षित करने की भूल नहीं करनी चाहिए, अपितु स्वयं ग्रामों की ओर आकर्षित होना चाहिए। जिस देश में वन्यभूमि से अधिक कृषिभूमि होगी और कृषिभूमि से अधिक नगरीय भूमि होगी, वह देश कभी आत्मनिर्भर नहीं हो पाएगा। अतः हमारा प्रयास होना चाहिए कि वैदिक आश्रमादि व्यवस्थाओं की समुचित शिक्षा के माध्यम से हम वर्तमान पीढ़ी को उच्च विचारों की ओर उन्मुख कर सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. यजुर्वेद 30.3
2. मनुस्मृति – महर्षि मनु
3. Introduction to Science by J.A. Thomson M.A.
4. "For no single organic function has yet been found explicable in purely mechanical terms. Even such relatively simple processes as the secretion of a tear or the exudation of a drop of sweat continue to elude all attempts at complete explanation in terms of physical and chemical science.", Psychology by Prof. W. Medougall, F.R.S., M.B
5. ऋग्वेद 7.88.5
6. ऋग्वेद 2.41.5
7. अथर्ववेद 9.3.17
8. अथर्ववेद 9.3.21
9. कौषीतक्युपनिषद् 1.5
10. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका – प्रो. रामजी उपाध्याय, पृ. सं. 867
11. वैदिक सम्पत्ति – पं. रघुनन्दन शर्मा, पृष्ठ सं. 592
12. मनुस्मृति – महर्षि मनु 8.237
13. ऋग्वेद 5.45.6
14. वैदिक सम्पत्ति – पं. रघुनन्दन शर्मा, पृष्ठ सं. 305
15. यजुर्वेद 30.5
16. ''यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च...।।'' यजुर्वेद 26.2
17. ''रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु, रुचं राजसु नस्कृधि। रुचं विश्येषु शूद्रेषु, मयि धेहि रुचा रुचम्।।'' यजुर्वेद 18.48.
18. यजुर्वेद 9.22
19. ''शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत्। दिवोदासाय दाशुषे।।'' ऋग्वेद 19.31.12
20. मनुस्मृति – महर्षि मनु 9.259-260
21. अथर्ववेद 19.31.12
22. अथर्ववेद 3.28.3
23. ऋग्वेद 9.94.1
24. ऋग्वेद 10.25.8
25. ऋग्वेद 10.117.6
26. अथर्ववेद 6117.3
27. अथर्ववेद 7.115.3
28. मनुस्मृति – महर्षि मनु 11.63
29. मनुस्मृति – महर्षि मनु 11.66

ISSN 2277-5587

30. ऋग्वेद 1.51.5

31. वैदिक सम्पत्ति – पं. रघुनन्दन शर्मा, पृष्ठ सं. 605

32. छान्दोग्योपनिषद्

सहायक ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद भाष्य – स्वामी दयानन्द सरस्वती, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
2. यजुर्वेद भाषा भाष्य – स्वामी दयानन्द सरस्वती, दयानन्द संस्थान, दिल्ली।
3. सामवेद भाष्य – ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
4. अथर्ववेद भाष्य – प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
5. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका– स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली।
6. सत्यार्थप्रकाश – स्वामी दयानन्द सरस्वती, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
7. वैदिक सम्पत्ति – पण्डित रघुनन्दन शर्मा, प्रतापसिंह शूरजी वल्लभदास, कच्छ केसल, सेडहर्स्ट ब्रिज, मुम्बई, संवत् 2016
8. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति – पद्मश्री डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, तृतीय संस्करण, 2006 ई.
9. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका – प्रो. रामजी उपाध्याय, देवभारती एवं लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम संस्करण, 1966 ई.

वाल्मीकि रामायण में विधि एवं न्याय

डॉ. अशोक कुमार शर्मा
जयपुर
डॉ. अजयसिंह राठौड़
प्राचार्य, सेन्ट जेवियर्स पी.जी. कॉलेज, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश : *प्रजा के वाद-विवाद को धर्म पर आधारित विधि के अनुसार सुनकर उनका निपटारा करना राजा का प्रमुख कर्त्तव्य था। न्यायालय में कार्यार्थियों (अपराध से प्रताड़ित होने वालों) को न्यायालय (राज-दरबार) में शीघ्र प्रवेश पाने का अधिकार प्राप्त था। मामले की सावधानीपूर्वक जाँच करने के पश्चात ही निर्णय दिया जाता था। स्त्री-पुरुष दोनों को न्याय प्राप्त करने का समान अधिकार प्राप्त था। धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र पर आधारित विधियों को आधार मानकर न्याय किया जाता था तथा उसी के अनुरूप दण्ड दिया जाता था। तत्कालीन न्यायिक प्रशासन में पक्षपात, रिश्वत का कोई भी स्थान नहीं था। न्याय प्राप्ति के अवसर सभी वर्गों को समान रूप से बिना किसी भेदभाव के उपलब्ध होते थे।*

संकेताक्षर : *धारणा, परोक्ष वृत्ति, मर्यादा, दण्ड, अपराध, कार्यार्थी, न्यायाधीश, धर्मपालक, आयुधधरा।*

प्रशासनिक व्यवस्था का अस्तित्व मानव के समूह में रहने की घटना के साथ ही प्रारम्भ होता है, जिसमें कालक्रमानुसार वैदिक काल, स्मृतिकाल की यात्रा करते हुए रामायणकाल तक प्रशासनिक व्यवस्था का सुव्यवस्थित व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक प्रतिमान पूर्ण विकसित हो चुका था। इसी क्रम में विधि एवं न्याय की यात्रा भी इसके अपरिहार्य भाग के रूप में समानान्तर रूप से जारी रही। रामायणकाल में न्याय व्यवस्था प्रशासन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण निकाय के रूप में स्थापित हो चुकी थी। वाल्मीकि रामायण में प्रतिपादित राजकीय कर्त्तव्यों में निग्रह को एक प्रमुख कर्त्तव्य माना गया है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार राज्य व सरकार की ओर से लाभों अथवा दंड का वितरण क्रमशः व्यक्तिकी साधुता एवं दुष्टता के आधार पर होना चाहिए। आचरण के किसी विशिष्ट सन्दर्भ में किसी व्यक्ति की साधुता एवं दुष्टता का विनिश्चय वस्तुतः तथ्यान्वेषण की अपेक्षा करता है तथा ऐसा तथ्यान्वेषण एक निश्चित प्रक्रिया व व्यवस्था के माध्यम से ही संभव हो सकता है। राज्य द्वारा निर्धारित आचरण के मापदंडों का सम्यक् पालन सुनिश्चित करने के लिए तथा किसी विशिष्ट अवसर पर किसी व्यक्तिविशेष की साधुता एवं दुष्टता का निर्धारण करने के उद्देश्य से रामायण में न्याय-व्यवस्था का विवेचन किया गया है।

प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द इन तीनों प्रमाणों के आधार पर ही दार्शनिक सत्य-असत्य का संज्ञान करते हैं। सत्य के इस स्वरूप का साक्षात्कार करने के लिए जिन प्रमाणों का आश्रय लिया जाता है, उन्हीं की वास्तविक विवेचना को न्याय का नाम दिया जाता है।

वेदों पर आधारित षड्दर्शन परम्परा में प्रमाणों की विवेचना प्रस्तुत करने वाले शास्त्र को न्यायदर्शन का नाम दिया गया है। यह प्रमाणित सत्य ही न्याय कहलाता है। वेदों और उपनिषदों में स्पष्टतः कहीं भी न्याय शब्द का प्रयोग उल्लेख, मीमांसा अथवा व्याख्या नहीं की गयी है। मनुस्मृति के 8वें अध्याय में जहाँ न्याय-व्यवस्था के लिए समुचित निर्देश दिये गये हैं, और न्याय व्यवस्था के विशिष्ट सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, वहाँ कहीं भी न्याय की परिभाषा का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। व्यवहार के क्षेत्र में कुछ विवादित विषयों के औचित्यपूर्ण विधिवत निर्णय देने की प्रक्रिया को ही न्याय शब्द के द्वारा प्रख्यात

किया गया है। वास्तविकता यह है कि सत्य सदैव निरावृत्त नहीं होता। ईशावास्योपनिषद में कहा गया है कि सुवर्णमय पात्र से सत्य का मुख आवृत्त है। सत्य, धर्म को दृष्टिगत कराने के उद्देश्य से उसके तात्त्विक स्वरुप को अनावृत्त करे तथा प्रमाणों के आधार पर ही सत्य को अनावृत्त करके प्रत्यक्ष को और स्पष्ट करे। इस प्रकार प्रमाणित सत्य को ही न्याय का नाम दिया गया है।[1]

शासक की न्यायिक शक्तियाँ

वाल्मीकीय रामायण में शासक में ही न्यायिक शक्ति का निवास माना गया है। शासक को न्याय सत्ता का प्रयोग करने वाला मानते हुए कहा गया है कि राजा समस्त प्राणियों का उत्पादक, नायक, सब के सोने पर जागकर प्रजा की रक्षा करने वाला, उत्तम नीतियों का प्रयोग करने वाला, सम्पूर्ण जगत का पालन करने वाला काल और युग का प्रवर्तक होता है।[2]

इस ग्रंथ में प्रतिपादित किया गया है कि धर्म संपूर्ण जगत को धारण करने के कारण इस नाम (धर्म) से जाना जाता है। धर्म (न्याय) को ही प्रजा को धारण करने वाला मानते हुए त्रिलोकी का आधार माना गया है।[3] ग्रंथ में शासक को अपने द्रोहियों को धारण (दुष्टों को मर्यादा में सीमित) करने वाला एवं प्रजा को प्रसन्न रखने वाला मानते हुए उसके शासन रुपी कर्म को 'धारणा' तथा धर्म माना गया है।[4] प्रजापालन को शासक का परम धर्म (न्याय) मानते हुए ग्रंथ में अभिव्यक्तकिया गया है कि इसका पालन करने पर शासक इस लोक एवं परलोक में सुख प्राप्त करने का अधिकारी होता है।[5] धर्म (न्याय) की विवेचना करते हुए ग्रंथ में कहा गया है कि राजा धर्म से ही राज्य प्राप्त करे और धर्म (न्याय) से ही उसका पालन करे तथा धर्म से ही समस्त प्रजा को आश्रय प्रदान करने के दायित्व का पालन करते हुए धर्म के आधार पर ही सभी का भय दूर करने का कार्य करे।[6]

न्यायिक दायित्वों का निर्वाह शासक द्वारा किये जाने की विवेचना करते हुए ग्रंथ में उल्लेख किया गया है कि प्रभात काल में संध्यावन्दन आदि नित्य कर्मों से निवृत्त हो धर्म का पालन (प्रजाजनों के विवाद का निपटारा) करने के लिए वेदवेत्ता ब्राह्मणों एवं पुरोहितों के साथ शासक न्याय के आसन पर विराजमान हो अपने न्यायिक दायित्वों का निर्वाह करे।[7] साथ में यह भी कहा गया है कि न्याय करते समय शासक के पास व्यवहार का ज्ञान रखने वाले मंत्री, धर्मशास्त्रों का पाठ करने वाले विद्वान एवं नीतिज्ञ सभासद भी उपस्थित रहें।[8] शासक की न्यायिक शक्तियों को परिसीमित करते हुए रामायण में कहा गया है कि वह धर्म, अर्थ और काम तत्व को जानते हुए दुष्टों का निग्रह तथा साधु पुरुषों के प्रति अनुग्रह करें।[9] साथ ही उससे धर्म मार्ग से भ्रष्ट पुरुषों को ही दण्डित करने की अपेक्षा की गई है।[10] धर्म के मार्ग पर चलने वालों को प्रशासन की ओर से संरक्षण, संवर्धन एवं प्रोत्साहन मिलना चाहिये।[11]

ग्रंथ में न्यायिक कृत्यों को संपादित करना शासक का अनिवार्य दायित्व मानते हुए कहा गया है कि वह क्रोध से उत्पन्न होने वाले दुर्व्यसनों का परित्याग कर परोक्ष वृत्ति (गुप्तचरों द्वारा यथार्थ बातों का पता लगाकर) तथा प्रत्यक्ष वृत्ति से (अर्थात दरबार में सामने आकर कहने वाली जनता के मुख से उसके वृत्तान्तों को प्रत्यक्ष देख-सुनकर) ठीक प्रकार से न्याय के दायित्व का निर्वाह करे।[12]

शासक से अपेक्षा की गई है कि वह श्रेष्ठ मनुष्यों पर लगाये गये मिथ्यारोपों का विद्वानों द्वारा परीक्षण करके ही दंड दे। साथ में यह भी अपेक्षा की गई है कि वह रिश्वत आदि के आधार पर किसी दुष्ट मनुष्य को दंड से मुक्त न करे तथा गरीब-अमीर के विवादों की सुनवाई भी नियमानुसार समतापूर्वक ही करे।[13] निष्पक्ष न्याय की अपेक्षा करते हुए चेतावनी भी दी गई है कि यदि शासक किसी निरपराध व्यक्ति को मिथ्यादोष लगाकर दंड देता है, तो वह पक्षपातपूर्ण दण्ड उसके पुत्र, पशु एवं धन का विनाश कर देता है।[14]

शासक की न्यायिक शक्तिको परिसीमित करने के लिए ग्रंथ में न्याय के दो सिद्धान्तों का समर्थन किया है-

- न्यायिक प्रक्रिया पक्षपात रहित हो अर्थात् शासक द्वारा किसी भी परिस्थिति में पक्षपातपूर्ण तरीके से सत्पुरुषों को दण्डित न किया जावे।
- याचना करने वाले पक्ष को और उस विपक्ष को जिस पर उस याचना का प्रभाव घटित हो सकता है, अपने-अपने पक्ष में साक्ष्य प्रस्तुत करने का समुचित अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

ग्रंथ में व्यक्त किया गया है कि न्याय के आसन पर प्रतिष्ठित शासक अथवा उसके प्रतिनिधि उपर्युक्त दो मौलिक सिद्धान्तों का पालन करते हुए ही न्याय प्रदान करें।[15]

अपराध एवं दण्ड-व्यवस्था

समाजशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मानवीय

अपराधवृत्ति एक प्रकार का मानसिक उन्माद है, जिसकी उत्पत्ति किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में मानसिक विक्षिप्तता की अवस्था में ही होती है। इस प्रकार का मानसिक उन्माद ही व्यक्तिको लोकनीतियों के विरुद्ध व्यवहार करने को प्रेरित करता है, जिसे अपराध की संज्ञा दी जाती है। अपराध की इस मानवीय वृत्ति को रोकने का साधन दण्ड है। दण्ड का प्रयोग मन को निरुद्ध करने की अपेक्षा शुद्ध करने के लिए अधिक उपयुक्त माना गया है।[16]

वाल्मीकी रामायण में असुर अथवा देहधारी राक्षसों द्वारा आर्यों एवं ऋषि-मुनियों का मांस भक्षण करना, [17] तथा धर्म-मर्यादा का उल्लंघन करना जघन्य अपराध के अन्तर्गत समाविष्ट किया गया है।[18] इसी संदर्भ में ग्रंथ में यह भी प्रतिपादित किया गया है कि जो पुरुष धर्म अथवा वेद की मर्यादाओं का त्याग कर देता है, वह पापकर्म (अपराध) में प्रवृत्त हो जाता है, तब उसके आचार-विचार दोनों नष्ट हो जाते हैं।[19]

प्राचीन भारतीय ग्रंथों के अनुसार राज्य द्वारा धर्म का निर्वाह होता है और धर्म की रक्षा के लिए दण्ड की आवश्यकता होती है। धर्म वह तत्व है जिसके द्वारा किसी भी पदार्थ की सत्ता या किसी भी वस्तु के स्थायीभाव का उस पदार्थ अथवा वस्तु के प्राकृतिक गुणानुसार पुण्यगति का बोध होता है, ताकि जीवन और प्रकृति अपने-अपने निर्धारित मार्ग का अनुसरण कर सकें। दण्ड का शाब्दिक अर्थ लकुट या लष्टिका होता है, क्योंकि आततायी से रक्षा करने के निमित्त यह एक सरलतम आयुध है, जिसे समस्त जन उपलब्ध एवं प्रयुक्त कर सकते हैं। न यह मूल्यवान है और न इसके प्रयोग के लिए किसी जटिल प्रक्रिया की आवश्यकता है। राजा समस्त जनता का प्रतिनिधि होने के कारण जो आयुध सर्वसाधारण को उपलब्ध हो उसी दंड को धारण करके न्याय प्रदान करता है। नरेशों का दण्ड धारण करना दंडाधिकार का प्रतीक है। दण्ड प्रदान करने के लिए दण्ड को धारण करना आवश्यक मानकर दण्ड को राजा के परिवेश का एक संभ्रान्त चिह्न मान लिया गया है। धर्म के लिए दण्ड आवश्यक है लेकिन दण्ड धर्म का निर्माण नहीं करता, अपितु धर्म के निर्वाह एवं उसकी रक्षा के लिए राजा को दण्डाधिकार प्रदान किया गया है।[20] वाल्मीकिरामायण में धर्म से भ्रष्ट हुए पुरुषों को दण्ड देना शासक का अनिवार्य दायित्व माना गया है।[21]

पक्षपात रहित होकर दण्ड देना शासक का महत्वपूर्ण दायित्व है अतः इस ग्रन्थ में कहा गया है कि दुष्टों का निग्रह तथा सत्पुरुषों का अनुग्रह शासक का प्रमुख दायित्व है।[22] शासक द्वारा अपने दण्ड देने के दायित्व का प्रमादवश निर्वाह न करने पर शासक को गंभीर चेतावनी देते हुए कहा गया है कि अपने इस दायित्व का पालन न करने पर उसे दूसरों के पापों का भागी होना पड़ता है।[23] इसी सन्दर्भ में यह भी अभिव्यक्त किया गया है कि यदि राजा पापी व्यक्तिको उचित दंड नहीं दे तो उसे स्वयं उसी पापी के पाप का फल भोगना पड़ता है।[24]

दण्ड एवं अपराधों का वर्गीकरण

रामायणकालीन व्याख्याओं एवं उदाहरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उस समय राक्षसों ने वानप्रस्थी महात्माओं का वध करने का क्रूर कृत्य प्रारम्भ कर दिया था, जिससे पीड़ित होकर महात्माओं के समूह द्वारा श्रीराम से मिलकर अपनी रक्षा करने का आग्रह किये जाने पर श्रीराम द्वारा समस्त राक्षसों का वध करने का संकल्प लिया गया।[25]

इस ग्रंथ में यथाप्रसंग विभिन्न प्रकार के दण्डों का उल्लेख किया गया है जो अग्रांकित हैं-

- **अंग-भंग करना** - कुल्पा, कुलटा एवं कामजनित भावनाओं के वशीभूत किसी परपुरुष के पास जाने वाली स्त्रियों को अंगहीन करने के दण्ड का उल्लेख ग्रंथ में किया गया है, यथा लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा को दिया गया दण्ड।[26] ग्रंथ में अंग-भंग या विकृत कर देना दूत के लिए उचित दण्ड माना गया है।[27]
- **राज्य से निष्कासित करना** - राजकीय आज्ञाओं की अवहेलना करने पर या प्रजा की शिकायत पर इस प्रकार का दण्ड दिया जाता था। उदाहरणार्थ राजा सगर ने अपने पुत्र असमन्जस को नगर निवासियों की शिकायत पर उनके पुत्रों को नदी में फेंकने के अपराध के कारण जीवनपर्यन्त देश से बाहर निकालने का दण्ड दिया।[28] रावण ने अपने दूत शुक और सारण को शत्रुपक्ष की प्रशंसा करने के कारण देश से बाहर निकालने का दण्ड दिया।[29]
- **मृत्युदण्ड (वधदण्ड) देना** - वधदण्ड को अत्यधिक महत्वपूर्ण मानते हुए ग्रंथ में निम्नलिखित अपराधियों को इसके योग्य माना गया है-

1. यज्ञों में विघ्न डालने का क्रूर कृत्य करने वाली स्त्रियाँ वधदण्ड के योग्य थीं।[30]

2. अपनी कन्या, बहिन अथवा छोटे भाई की स्त्री के पास काम बुद्धि से जाने वाला व्यक्तिवधदण्ड के योग्य माना गया है।[31]

3. राजा के भृत्यों को अपने पक्ष में लेकर राज्य हड़पने का षडयन्त्र रचने वाला व्यक्ति चाहे वह साम, दान, दण्ड एवं भेद नीति एवं राजनीतिशास्त्र का विद्वान हो, वध दण्ड का पात्र है।[32]

4. कुमार्ग पर चलने वाले राजा को अपनी मंत्रणा द्वारा न रोकने वाले मंत्री भी वधदण्ड के योग्य हैं।[33]

5. धर्म-सदाचार का त्याग करने वाला क्रूर, निर्दयी, असत्यवादी तथा परस्त्री का अपहरण करने वाला व्यक्तिभी शास्त्रोक्तविधि के अनुसार वधदण्ड का पात्र है।[34]

6. किसी शूद्र व्यक्तिके द्वारा तपस्या का कार्य करने पर वह वधदण्ड का पात्र माना गया है। उक्त संदर्भ में विद्वानों का मत है कि यह प्रसंग रामायण के मूल ग्रंथ में नहीं मिलता है। इसका उल्लेख उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत मिलता है जिसे प्रक्षिप्त माना गया है। अन्धे वैश्य मुनि व उसकी शूद्रा पत्नी से उत्पन्न पुत्र ऋषि व तपस्वी बन गये थे। इस प्रकार शूद्रों को तपस्या करने पर रामायण में वधदण्ड का पात्र नहीं माना गया है। इसके अतिरिक्त पम्पा सरोवर के तट पर स्थित सिद्ध तपस्विनी शबरी के आश्रम पर श्रीराम का आगमन एवं शबरी का उद्धार करना ग्रंथ में यह प्रमाणित करता है कि तत्कालीन समाज में शूद्रों को तपस्या करने पर वधदण्ड का प्रावधान नहीं था।[35]यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि निरंकुश मन से तप करना समाज के हित में नहीं माना जाता था। योग्य गुरु के अनुशासन में किया गया तप ही कल्याणकारी माना जा सकता है।

7. गुरुकन्या के साथ बलात्कार करने वाला शासक एवं व्यक्तिवध दण्ड का पात्र है यथा भार्गव कन्या अरजा के साथ राजा दण्ड द्वारा बलात्कार करने पर उसे दिया गया वधदण्ड इसका प्रमाण है।[36]

दण्डों के वर्गीकरण की सूची अपराधों के वर्गीकरण की सूची भी मानी जा सकती है, क्योंकि प्रत्येक प्रकार का दण्ड उस प्रकार के अपराध करने पर ही दिया जाता था।

वाल्मीकिरामायण में तीन प्रकार के अपराधों को विशेष मानते हुए अभिव्यक्त किया गया है कि जगत में कामजनित तीन प्रकार के अपराध ही मुख्य है, यथा- 1. मिथ्याभाषण, 2. परस्त्री गमन , 3. बिना वैर-भाव के दूसरों के प्रति क्रूरतापूर्ण बर्ताव।[37] इसके अतिरिक्त रामायण में निम्नांकित अपराधों का उल्लेख किया गया है[38]-

लोकाचार, धर्म या विधि और मर्यादा का उल्लंघन करना, दूसरों की सम्पत्ति का अपहरण करना या दस्यु कर्म करना, राजद्रोह करना, हत्या, ब्रह्महत्या, गौहत्या व जीवहत्या करना, गुरुपत्नीगमन करना, मित्रद्रोह एवं मित्रघात करना, स्त्री, बालक और वृद्ध की हत्या करना,युद्ध से पलायन करना, विष द्वारा किसी की हत्या करना, किसी व्यक्ति की वृत्ति का हरण करना, आग लगाना एवं जुआ खेलना, चुगलखोरी करना, झूठ बोलना, नृशंसता, बेईमानी एवं क्रूरता करना।

इस ग्रन्थ में विभिन्न उदाहरणों के अवलोकन से यह संकेत मिलता है कि युद्धों व द्वन्द्वों से परे अपराधों के छुट-पुट उदाहरण हैं जो कभी-कभार होते थे, जिन्हें राज्य सत्ता के हस्तक्षेप के बिना व्यक्तिगत स्तर पर निपट लिया जाता था। उदाहरणार्थ बाली द्वारा अपने छोटे भाई सुग्रीव की पत्नी रूमा का कामवश उपभोग करने पर उसे दिया गया वधदण्ड उक्त संदर्भ में पुष्ट प्रमाण है।[39]

रामराज्य का चित्रण करते हुए ग्रंथ में अभिव्यक्त किया गया है कि वहाँ किसी भी प्रकार का कोई अपराध नहीं होता था। उदाहरणार्थ न्याय सभा में विराजमान श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि "सुमित्रा कुमार! आप बारी-बारी से कार्यार्थियों को बुलाना प्रारम्भ करो।" राम के इस आदेश की अनुपालना में लक्ष्मण ने कार्यार्थियों को पुकारा तो वहाँ कोई भी व्यक्ति न्याय की माँग करने के लिए उपस्थित नहीं था।[40] उक्त प्रसंग उस समय अपराधों के अभाव को इंगित करता है। यहाँ पर प्रयुक्त कार्यार्थी शब्द विशिष्ट महत्त्व रखता है, इस शब्द का प्रयोग अन्यत्र नहीं मिलता है। आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था में प्रार्थनापत्रों पर अंकित प्रार्थी शब्द के स्थान पर कार्यार्थी शब्द अंकित किया जाना अधिक उपयुक्त होगा।[41]

न्यायपालिका का संगठन

रामायणकालीन व्यवस्था का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि रामायण में न्याय की समुचित व्यवस्था का विवेचन किया गया है। शासक प्रजाजनों के विवादों का निपटारा वेदवेत्ता ब्राह्मणों, पुरोहितों, मंत्रियों, धर्म का पाठ करने वाले विद्वानों एवं नीतिज्ञों को साथ बिठाकर स्वयं ही करते थे।[42] विनयशीलता, सलज्जता, कार्यकुशलता, जितेन्द्रिय, श्रीसंपन्न, शस्त्रविद्या के ज्ञाता, सुदृढ़ पराक्रमी, यशस्वी, काम, क्रोध एवं असत्य से रहित, धर्मज्ञ, अदोषदर्शी, अपराध करने पर पुत्र को भी दण्ड से मुक्त न करना, अपराधी के अपराध का भली-भाँति परीक्षण करके अपराधी सिद्ध होने पर ही दण्ड देना, गरीब द्वारा न्याय की याचिका प्रस्तुत करने पर उसके मामले पर विधिवत विचार करना, चोर आदि अपराधियों को धन के लोभ में नहीं छोडना एवं पक्षपातरहित न्याय प्रदान करना आदि गुण ग्रंथ में न्यायाधीश के अनिवार्य गुण माने गये हैं।[43]

न्यायिक प्रक्रिया

जब कोई पीड़ित व्यक्तिकिसी विवाद को प्रस्तुत करता था, तो उस विवाद का प्रभाव, विवाद प्रस्तुत न करने वाले प्रतिपक्ष पर घटित किये जाने की प्रार्थना की जाती थी। इस प्रकार उस विवाद में दोनों पक्षों को भी सम्मिलित करना आवश्यक हो जाता था। न्याय संस्थाओं के समक्ष पीड़ित व्यक्ति अपने पक्ष को प्रमाणों के माध्यम से स्पष्ट करता था। न्यायकर्ता द्वारा विभिन्न प्रमाणों (प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष) के आधार पर सत्य का परीक्षण करते हुए निर्णय दिया जाता था। यह संपूर्ण प्रक्रिया न्यायिक प्रक्रिया कहलाती थी। शासक अपने पुरोहितों व विद्वान मंत्रियों को न्याय करते समय अपने पास रखता था और उनके परामर्शानुसार ही न्याय करता था।[44]

रामायणकालीन न्याय-व्यवस्था

रामायणकाल में न्याय करने की पद्धति बड़ी सरल, सस्ती और तात्कालिक थी। उन दिनों न पेशेवर वकील थे और न अदालती खर्च का ही कोई झमेला था। न्याय तंत्र में कोई जटिलता नहीं थी, क्योंकि मुकदमे का फैसला राजा स्वयं करता था तथा मुकदमे के वादी-प्रतिवादी उसके पास बेरोकटोक पहुँच सकते थे। न्याय निष्पक्ष था तथा मुकदमे का निर्णय शीघ्र किया जाता था। मुकदमेबाजी भी कम होती थी, क्योंकि प्रजा निष्पक्षता एवं शीघ्रता से फैसला करने वाले कठोर शासक से भय खाती थी और कानून के उल्लंघन से दूर रहने में ही अपना कल्याण समझती थी।[45]

प्राचीन भारत में राजा परम्परा से स्थापित राजधर्म के अनुसार न्यायपालन करते थे। तत्कालीन न्याय का एक स्पष्ट सिद्धान्त यह था कि योग्य न्यायाधीशों द्वारा जाँच-पड़ताल कराये बिना अभियुक्तको दण्ड नहीं मिलना चाहिए क्योंकि यह मान्यता प्रचलित थी, कि निरपराध होने पर भी जिन लोगों को मिथ्यादोष लगाकर दण्ड दिया जाता है, उनकी आँखों से जो आँसू निकलते हैं, वे पक्षपातपूर्ण शासन करने वाले शासक के पुत्र एवं धन-धान्य का नाश कर डालते हैं।[46] साथ ही राजा का यह भी कर्त्तव्य था कि भ्रष्ट न्यायाधीशों के कारण या अन्य किसी कारणवश अपराधी व्यक्तिदण्ड पाने से कहीं बच न जाय। असहाय, दरिद्र और साधन सम्पन्न धनी के बीच मुकदमों का फैसला निष्पक्षता से कराने का दायित्व राजा पर ही था। न्याय के उक्तसिद्धान्त श्रीराम द्वारा भरत से चित्रकूट में कुशलक्षेम संवाद के अन्तर्गत पूछे गये प्रश्नों से और भी स्पष्ट हो जाता हैं, जो इस प्रकार है-

'तुम्हारे शासन में कहीं ऐसा तो नहीं होता कि कोई मनुष्य किसी श्रेष्ठ, निर्दोष और शुद्धात्मा पुरुष पर भी दोष लगा दे और शास्त्र ज्ञान में कुशल विद्वानों से उसके विषय में विचार कराये बिना ही, लोभ आदि दोषों से प्रभावित होकर उसे दण्ड दे दिया जाय ?'[47] 'जो चोरी में पकड़ा गया हो, जिसे किसी ने चोरी करते हुए देखा हो, पूछताछ से भी जिसके चोर होने का प्रमाण मिल गया हो तथा जिसके विरुद्ध चोरी का माल बरामद होने जैसे बहुत से सबूत हों, ऐसे चोरों को भी तुम्हारे राज्य में धन के लालच से छोड़ तो नहीं दिया जाता ?'[48] 'यदि धनी और गरीब में कोई विवाद छिड़ा हो और वह राज्य के न्यायालय में निर्णय हेतु आया हो, तो तुम्हारे अमात्य एवं न्यायाधीश धन आदि लोभ से प्रभावित होकर तो ऐसे प्रकरण पर विचार नहीं करते ?'[49]

न्यायाधीशों के लिए उत्तरकाण्ड में 'धर्मपालक' शब्द आया है। कानून और राजनीति के विशिष्ट ज्ञान के कारण ही वे इस पद पर नियुक्तकिये जाते थे। पक्षपात और रिश्वत से बचे रहने की उनसे अपेक्षा की जाती थी। भरत ने माता कौसल्या से कहा था कि राम को वन भेजने वाले को वही पाप लगे, जो पक्षपात करने वाले न्यायाधीश (मध्यस्थ) को लगता है।[50]

राम-राज्य के सर्वोच्च न्यायालय की गतिविधि का परिचय उत्तरकाण्ड में प्राप्त होता है। राजा और न्यायाधीशों के नित्य कर्म से निवृत्त होने के उपरान्त न्यायालय की बैठक सभा भवन में प्रतिदिन प्रातः काल हुआ करती थी। प्रजा के सभी

वर्गों को बिना किसी प्रकार के जाति अथवा लिंग का भेद किये– राजा अथवा न्यायाधीश के समक्ष उपस्थित होकर अपनी शिकायत प्रस्तुत करने का अधिकार था। भगवान राम के न्यायालय में एक कुत्ते का कार्यार्थी के रूप में प्रवेश एवं अपनी व्यथा को सुना कर यथोचित न्याय प्राप्ति का प्रसंग भी उपलब्ध होता है।[51]

जिस आसन पर बैठकर राजा अथवा न्यायाधीश न्याय करता है, वह 'धर्मासन' कहलाता था। सर्वोच्च न्यायालय का अध्यक्ष स्वयं राजा हुआ करता था। इसके अतिरिक्त अन्य न्यायाधीश भी होते थे, यथा पुरोहित वसिष्ठ, धर्मपारग और व्यवहारज्ञ ब्राह्मण मंत्रिगण, परम्परा और लोकाचार के ज्ञाता अनुभवी ऋषिवृन्द, क्षत्रिय अमात्य, सभा के अर्थशास्त्र पारंगत सदस्य, प्रमुख व्यापारी (नैगम) तथा राजा के भाई इत्यादि। इनमें ऋषि–मुनि राजा को धर्म एवं सदाचार सम्बन्धी वादों में परामर्श देते थे। मंत्रिगण अपने शासन–अनुभव के आधार पर यह बतलाते थे कि अमुक फैसला कार्य रुप में परिणत किया जा सकता है अथवा नहीं और उसकी राजनीतिक प्रतिक्रिया क्या होगी ? क्षत्रिय अमात्य कूटनीति में अभ्यस्त थे तथा सामरिक मामलों एवं विदेशनीति से संबंधित प्रश्नों पर अपनी राय देते थे, साथ ही, वे क्षत्रिय जाति के अधिकारों की रक्षा के प्रति भी सजग रहते थे। प्रमुख व्यापारी वाणिज्य–व्यवसाय के मामलों में राजा को परामर्श देते थे तथा वैश्य वर्ग के हितों को सुरक्षित रखते थे। राजा के भाई संभवतः राजकीय विशेषाधिकारों की रक्षा के लिए नियत रहते थे।[52]

सद्धान्तिक रुप से शासक को दण्ड के माध्यम से दुष्टों का दमन करते हुए प्रजा की रक्षा करनी चाहिए, परन्तु इस बात के प्रति सजग रहना चाहिए कि बिना अपराध के कोई व्यक्ति दण्डित न हो। अपराधी मनुष्यों पर जो दण्ड का प्रयोग किया जाता है, वह विधिपूर्वक दिया हुआ दण्ड राजा को स्वर्ग–लोक की प्राप्ति का हेतु होता है। अतः शासक को दण्ड का समुचित प्रयोग करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। ऐसा करने से ही उसे संसार में परम धर्म की प्राप्ति संभव है, इस प्रकार उच्च नीतिगत परामर्श मनु द्वारा अपने पुत्र इक्ष्वाकु को शासनसूत्र संभला कर आध्यात्मिक उन्नति हेतु प्रस्थान करने से पूर्व दिया गया था।[53]

वाल्मीकिरामायण में भगवान राम के दरबार में न्याय–व्यवस्था का स्वरूप एवं महत्व इस प्रसंग से भी स्पष्ट हो जाता है। एक दिन निर्मल प्रभात काल में श्रीराम राजधर्म का पालन (प्रजाजनों के विवादों का निष्पादन) करने के लिए धर्म (न्याय) के आसन पर विराजमान हुए। वह सभा व्यवहार का ज्ञान रखने वाले मंत्रियों, धर्मशास्त्रों का पाठ करने वाले विद्वानों, नीतिज्ञों तथा राजाओं एवं अन्य सभासदों से भरी हुई थी। भगवान श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा– तुम बाहर निकलो और देखों कि कौन–कौन से कार्यार्थी उपस्थित हैं ? तुम उन कार्यार्थियों को बारी–बारी से बुलाना प्रारम्भ करो।' श्रीरामचन्द्र जी का यह आदेश सुनकर लक्ष्मण ने द्वार देश पर आकर स्वयं ही कार्यार्थियों को पुकारा, परन्तु कोई भी वहाँ यह न कह सका कि मुझे यहाँ कोई कार्य है।

कुमार लक्ष्मण ने श्रीराम को किसी कार्यार्थी के उपस्थित नहीं होने की सूचना से अवगत कराया, जिसे सुन कर प्रसन्नचित्त श्रीराम ने उन्हें पुनः उसी कार्य के लिए भेजा। यह सुनकर महाभाग लक्ष्मण ने राज भवन में प्रवेश कर श्रीराम को निवेदन किया–'महाराज! आपके आदेशानुसार मैंने बाहर जाकर कार्यार्थी को पुकारा। इस समय आपके द्वार पर एक कुत्ता खड़ा है, जो कार्यार्थी हो कर आया है।' लक्ष्मण की बात सुनकर श्रीराम ने कहा–'वहाँ जो कार्यार्थी होकर खड़ा है, उसे शीघ्र ही इस सभा के अन्दर ले आओ।'[54]

श्रीराम का यह वचन सुनकर लक्ष्मण ने उस कुत्ते को बुलाया।उसने राजसभा में बैठे हुए श्रीराम की ओर देखा और देखकर इस प्रकार कहा–'राजा ही समस्त प्राणियों का उत्पादक और नायक है। वह सभी के सोते रहने पर भी जागता है। प्रजाओं का पालन करता है। वह सब का रक्षक है। वह उत्तम नीति का प्रयोग करके सब की रक्षा करता है। यदि राजा पालन न करे तो समस्त प्रजाऐं शीघ्र नष्ट हो जाती है, राजा कर्ता, रक्षक और सम्पूर्ण जगत का पिता है। राजा काल और युग है तथा राजा यह सम्पूर्ण जगत है। राजा धर्म की रक्षा करता है। धर्म सम्पूर्ण जगत को धारण करता है, इसीलिए उसका नाम धर्म है। धर्म ने ही समस्त प्रजा को धारण कर रखा है, क्योंकि वही चराचर प्राणियों सहित सारी त्रिलोकी का आधार है।'

धारणात् धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यस्माद् धारयते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरं।।[55]

वह कुत्ता बोला– सर्वार्थसिद्ध नाम से प्रसिद्ध एक भिक्षु है, जो ब्राह्मणों के घरों में रहा करता है। उसने आज अकारण मुझ पर प्रहार किया है। मैंने उसका कोई अपराध नहीं किया था।' कुत्ते की यह बात सुनकर श्रीराम ने एक द्वारपाल भेजकर सर्वार्थ सिद्ध नामक विद्वान भिक्षु ब्राह्मण को

बुलवाया। श्रीराम ने कहा–'ब्राह्मण! आपने इस कुत्ते के सिर पर जो प्रहार किया है, उसका क्या कारण है ? इसने आप का क्या अपराध किया था, जिसके कारण आपने इसे डंडा मारा है ? क्रोध मनुष्य का छद्म शत्रु है, इस पर नियंत्रण रखना चाहिए, मनुष्य को अपने पास विचरने वाले (प्राणियों) एवं लोगों की मन, वाणी, क्रिया और दृष्टि द्वारा भलाई ही करनी चाहिए। किसी से द्वेष न रखे। ऐसा करने से वह पाप से लिप्त नहीं होता। जिसे विनय की शिक्षा मिली हो, उसकी भी प्रकृति नई नहीं बनती है। कोई अपनी प्रकृति को कितना भी क्यों नहीं छुपाये, उसके कार्य में उसकी दुष्टता निश्चय ही प्रकट हो जाती है।' श्रीराम के ऐसा कहने पर सर्वार्थसिद्ध नामक भिक्षु ब्राह्मण ने क्रोध के वशीभूत होकर अपनी मनःस्थिति एवं परिस्थितिवश अपराध हो जाना स्वीकार किया और श्रीराम से उसका उचित दण्ड देने हेतु प्रार्थना की। तब श्रीराम ने सभी सभासदों से उचित दण्ड के विषय में परामर्श किया क्योंकि भली–भाँति दण्ड का प्रयोग होने पर प्रजा सुरक्षित रहती है।[56] राजधर्मों के ज्ञान में परिनिष्ठित वे सभी विद्वान श्रीराम से बोले–'भगवन! ब्राह्मण दण्ड द्वारा अवध्य है, उसे शारीरिक दण्ड नहीं मिलना चाहिए, यही समस्त शास्त्रज्ञों का मत है। उन सभी के ऐसा कहने पर कुत्ते ने श्रीराम से कहा–'यदि आप मेरी बात से संतुष्ट हैं और मुझे इच्छानुसार वर देना चाहते हैं, तो कृपया मेरी बात सुनो। मेरी इच्छानुसार आप इस ब्राह्मण को कालंजर में एक मठ का कुलपति (महन्त) बना दीजिए।' यह सुनकर श्रीराम ने उस ब्राह्मण का कुलपति के पद पर अभिषेक कर दिया।[57]

इस प्रकार वह ब्राह्मण पूजित होकर हाथी पर सवार होकर बड़े हर्ष के साथ रवाना हो गया। तब श्रीराम से मंत्रीगण मुस्कराते हुए बोले– 'महाराज! यह तो इसे वर दिया गया है। शाप या दण्ड नहीं।' तब श्रीराम ने कहा–'किस कर्म का क्या परिणाम होता है, अथवा उससे जीव की कैसी गति होती है, इसका तत्त्व तुम लोग नहीं जानते। ब्राह्मण को मठाधीश बनाने का कारण यह कुत्ता जानता है।'[58]

उस कुत्ते ने कहा–'मैं पिछले जन्म में कालंजर के मठ में कुलपति था। वहाँ यज्ञशिष्ट अन्न का भोजन करता, देवता और ब्राह्मणों की पूजा में तत्पर रहता, दास–दासियों को उनका न्यायोचित भाग बाँट देता, शुभकर्मों में अनुरक्त रहता, देव सम्पत्ति की रक्षा करता तथा विनय और शील से सम्पन्न होकर समस्त प्राणियों के हित साधन में संलग्न रहता था।'[59] 'तो भी मुझे यह घोर अवस्था एवं अधम गति प्राप्त हुई। फिर जो ऐसा क्रोधी है, धर्म को छोड़ चुका है, दूसरों के अहित में लगा हुआ है तथा क्रोधी, क्रूर, कठोर, मूर्ख और अधर्मी है, वह ब्राह्मण तो मठाधीश होकर अपने साथ ही ऊपर और नीचे की सात–सात पीढ़ियों को भी नरक में गिरा कर ही रहेगा। इसलिए किसी भी दशा में मठाधीश का पद ग्रहण नहीं करना चाहिए।'[60]

इन दो सर्गों में तत्कालीन न्यायिक प्रक्रिया का सम्पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। न्यायिक कार्य का महत्व इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि कार्यार्थियों को बुलाने हेतु श्रीराम के दरबार में कोई द्वारपाल अथवा अनुचर नहीं होता था। बल्कि श्रीराम के सर्वाधिक प्रिय एवं विश्वसनीय लक्ष्मण इस दायित्व का निर्वहन करते थे। न्याय के द्वार सभी वर्गों के लिए बिना किसी भेदभाव के खुले हुए थे। ग्रन्थ में न्यायसभा में सभासदों की योग्यता–पात्रता एवं सभापति के आसन (धर्मासन) के संबंध में महत्वपूर्ण एवं रोचक जानकारी मिलती है। दण्ड प्रक्रिया का वास्तविक स्वरूप और न्याय का आसानी से सुलभ होना ही उसे सर्व स्वीकार्य बनाता है। न्यायसभा में जाने पर कार्यार्थी को किस प्रकार अति–विनम्र एवं शालीन रहकर अपनी प्रार्थना प्रस्तुत करनी चाहिए तथा न्यायाधीश का व्यवहार एवं वार्तालाप किस प्रकार का होना चाहिए। वह भी इस प्रसंग से स्पष्ट हो जाता है। 'कार्यार्थी' शब्द का प्रयोग वाल्मीकिरामायण का प्रशासनिक व्यवस्था के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान है। यह शब्द अन्यत्र नहीं मिलता।[61]

राजा का यह कर्त्तव्य था कि वह ऐसा प्रबन्ध करे कि जिससे प्रत्येक कार्यार्थी (शिकायत लेकर आने वाला व्यक्ति) न्यायालय में तुरंत प्रवेश पा सके। राजा नृग ने अपने द्वार पर दो ब्राह्मण कार्यार्थियों को बहुत देर तक ठहराये रखा था। इस अपराध के लिए उन्हें शाप का भागी बनना पड़ा।[62] महाराज राम के पूर्वज राजा निमि ने भी ऐसा ही अपराध किया था। जब वशिष्ठ अपनी शिकायत सुनाने उनके पास आये तब निमि सो रहे थे। तुरंत सुनवाई न होने के कारण वसिष्ठ ने उनको शाप दे दिया।[63] इसके विपरीत 'राम–राज्य' के न्यायालय इस बात के लिए प्रसिद्ध थे कि वहाँ निष्पक्ष और तात्कालिक न्याय प्राप्त होता था, राजा या न्यायाधीश के समक्ष उपस्थित होने की अनुमति तुरंत मिलती थी और स्टाम्प, फीस या वकीलों का कोई बखेड़ा नहीं था। राजा का त्वरित एवं कठोर न्याय शासन लोगों को एक–दूसरे के अधिकारों का सम्मान करने को प्रेरित करता था। सम्पूर्ण जगत में कहीं चोरों या लुटेरों का नाम भी नहीं

सुना जाता था। कोई भी मनुष्य अनर्थकारी कार्यों में हाथ नहीं डालता था। सब लोग सदा प्रसन्न रहते थे। सभी धर्मपरायण थे और श्रीराम पर ही बारम्बार दृष्टि रखते हुए वे कभी एक-दूसरे को कष्ट नहीं पहुँचाते थे।[64] यही कारण था कि लोग मुकदमेबाजी का कम ही आश्रय लेते थे जिसके परिणामस्वरूप राम-राज्य की अदालतों में अधिक काम नहीं था।[65]

दण्ड-व्यवस्था

वाल्मीकिरामायण ने इन कृत्यों को अपराधों की श्रेणी में गिना है-राजद्रोह, झूठी गवाही, कुमारिकाओं पर बलात्कार, पराई स्त्रियों का अपहरण, सार्वजनिक सम्पत्ति का दुरुपयोग, चोरी, डकैती, ब्रह्महत्या, सैनिकों को निर्धारित वेतन न देना, युद्ध में पीठ दिखाना, बालकों, स्त्रियों, वृद्धों एवं राजाओं की हत्या, आग लगाना, जलाशय में विष मिला देना और गुरु स्त्री-गमन।[66]

इन अपराधों का दण्ड यातना मात्र देने से लेकर प्राणदण्ड तक होता था। फाँसी के लिए सवेरे का समय नियत रहता था। लंका में विलाप करते हुए सीता ने कहा था कि दो मास की अवधि पूरी होने पर राक्षसाधम रावण मुझे वैसे ही मृत्यु के घाट उतार देगा जैसे कि रात्रि के अन्त में चोर का वध कर दिया जाता है।[67]

'बंधन'[68] और 'बद्ध'[69] जैसे शब्दों का प्रयोग कारागृहों की ओर संकेत करता है। अंगद ने भयभीत होकर कहा कि मेरे चाचा सुग्रीव क्रूर और निर्दयी हैं, यदि मैं अवधि बीतने के बाद सीता को ढूँढे बिना किष्किन्धा लौटा तो वह या तो मुझे तीव्र यातना देंगे अथवा उम्र कैद में डाल देंगे- उपांशुदण्डेन हि मां बंधनेनोपपादयेत्।[70] जब अंगद जैसा युवराज भी यातनाओं के भय से भयभीत था, तब कोई आश्चर्य नहीं यदि सामान्य कैदियों पर उनका व्यापक प्रयोग किया जाता हो। अशोक वाटिका में विलाप करते हुए सीता ने यातना देने की पद्धतियों का उल्लेख किया था और निश्चय किया था कि मुझे ऐसी कितनी ही यातनाएँ क्यों न दी जाएँ, मैं रावण के वशीभूत न होंगी-

छिन्ना भिन्ना प्रभिन्ना वा दीप्ता वाग्नौ प्रदीपिता।
रावणे नोपतिष्ठेयं किं प्रलापेन वश्चिरम्।।[71]

यहाँ सीता ने शरीर को शूल से छेद डालना या तलवार से दो भागों में काट डालना, कुल्हाड़ी से उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालना, कैदी को आग पर सेकने या जला डालना आदि यातनाओं की ओर संकेत किया है। गला घोंट कर कैदियों को मार डालने का तरीका भी प्रचलित था। सीता की राक्षसी पहरेदारनियों ने सीता का गला घोंटकर उनका काम तमाम कर डालने का विचार कर लिया था।[72]

पुलिस-व्यवस्था

राजमार्गों पर व्यवस्था बनाए रखने के लिए पुलिस कर्मचारियों की नियुक्तिका भी संकेत मिलता है। पुलिस के सिपाही 'दण्ड आयुधधराः' (लाठी से लैस) रहते थे। लंका के रास्तों में हनुमान ने विभिन्न शस्त्रास्त्र धारण किये हुए अनेक सैनिकों को देखा था। क्योंकि कवि ने कुछ सैनिकों को खूँखार शस्त्रों से सज्जित बताया है और दूसरों को दण्डों अर्थात् लाठियों से लैस बताया है।[73]

अतः यह ध्वनित होता है कि ये लाठीधारी (दण्डायुधधर) सैनिक लंका के मार्गों पर पुलिस का काम करने के लिए राज्य की ओर से नियुक्त थे। रावणवध के बाद जब विभीषण जानकी को पालकी में बैठाकर राम के पास लाए, तब अंगा और पगड़ी पहने इन्हीं पुलिसवालों ने अपने हाथों के डण्डों से वानरों और राक्षसों की भीड़ को हटाया था।[74] उधर राम के अयोध्या लौटने की घड़ी में भरत ने यह आदेश जारी किया था कि राजमार्गों पर भीड़-भाड़ न होने देने के लिए सैकड़ों व्यक्तिनैनात किये जाऐं-राजमार्गमसम्बाधं किरन्तु शतशोनराः।[75] स्पष्टतः ये व्यक्तिसड़कों पर व्यवस्था बनाए रखने के लिए नियुक्त पुलिस कर्मचारी थे।

रामायणकालीन न्यायिक प्रशासन के उक्त विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं-

- प्रजा के वाद-विवाद को धर्म पर आधारित विधि के अनुसार सुनकर उनका निपटारा करना राजा का प्रमुख कर्त्तव्य था।
- न्यायालय में कार्यार्थियों (अपराध से प्रताड़ित होने वालों) को न्यायालय (राज-दरबार) में शीघ्र प्रवेश पाने का अधिकार प्राप्त था।
- कार्यार्थी को निःशुल्क न्याय प्रदान किया जाता था।
- मामले की सावधानीपूर्वक जाँच करने के पश्चात ही निर्णय दिया जाता था।
- स्त्री-पुरुष दोनों को न्याय प्राप्त करने का समान अधिकार प्राप्त था।
- धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र पर आधारित विधियों को आधार मानकर न्याय किया जाता था तथा उसी के अनुरुप दण्ड दिया जाता था।

- तत्कालीन न्यायिक प्रशासन में पक्षपात, रिश्वत का कोई भी स्थान नहीं था।
- सम्पूर्ण न्यायिक प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रजा के हित को ध्यान में रखा जाता था।
- न्याय प्राप्ति के अवसर सभी वर्गों को समान रूप से बिना किसी भेदभाव के उपलब्ध होते थे।
- न्यायाधीश विशिष्ट योग्यताओं–क्षमताओं से सम्पन्न एवं सर्वस्वीकार्य व्यक्ति होते थे जिनके निर्णय सन्देह से परे माने जाते थे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. मधुकर श्याम चतुर्वेदी, प्राचीन भारत में राज्य व्यवस्था, अनुसंधान विशद् अध्ययन संस्थान, जयपुर, 1986
2. वाल्मीकिरामायण, उत्तरकाण्ड, 59.2.4–6
3. वही, 59.2.7
4. वही, 59.2.8
5. वही, 59.2.10
6. वही, 59.2.15
7. वही, 59.2.1,2
8. वही, 59.2.3
9. वही, किष्किन्धाकाण्ड, 18.7
10. वही, 18.11
11. डॉ. अशोक कुमार शर्मा, रामायण एवं महाभारतकालीन प्रशासनिक व्यवस्था, पृ. 199
12. वही, पृ. 200
13. वाल्मीकिरामायण, अयोध्याकाण्ड, 100.55–58
14. वही, 100.59
15. डॉ. अशोक कुमार शर्मा, रामायण एवं महाभारतकालीन प्रशासनिक व्यवस्था, पृ. 200–201
16. वही, पृ. 201
17. वाल्मीकिरामायण, अरण्यकाण्ड, 56.15–16
18. वही, किष्किन्धाकाण्ड, 18.25
19. वही, अयोध्याकाण्ड, 109.3
20. डॉ. मधुकर श्याम चतुर्वेदी, प्राचीन भारत में राज्य व्यवस्था, अनुसंधान विशद् अध्ययन संस्थान, जयपुर, 1986
21. वाल्मीकिरामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 18.11, 24
22. वही, 18.7
23. वही, 18.34
24. वही, 18.31–32
25. वही, अरण्यकाण्ड, 6.15,25
26. वही, 18.21
27. वही, सुन्दरकाण्ड, 52.15
28. वही, 36.19–24
29. वही, युद्धकाण्ड, 29.14–15
30. वही, बालकाण्ड, 26.22–25
31. वही, किष्किन्धाकाण्ड, 18.22
32. वही, अयोध्याकाण्ड, 100.29
33. वही, अरण्यकाण्ड, 41.6
34. वही, युद्धकाण्ड, 111.93
35. वही, अरण्यकाण्ड, 74.3–4,28,32,34 एवं उत्तरकाण्ड, 76.4
36. वही, उत्तरकाण्ड, 80.15–16 एवं 81.9
37. वही, अरण्यकाण्ड, 9.3–4
38. डॉ. अशोक कुमार शर्मा, रामायण एवं महाभारतकालीन प्रशासनिक व्यवस्था, पृ. 205–206
39. वाल्मीकिरामायण, किष्किन्धाकाण्ड, 18.19
40. वही, उत्तरकाण्ड, 59.1.5–7
41. डॉ. अशोक कुमार शर्मा, रामायण एवं महाभारतकालीन प्रशासनिक व्यवस्था, पृ. 206
42. वाल्मीकिरामायण, उत्तरकाण्ड, 59.1–2
43. वही, बालकाण्ड, 1.6–12
    अयोध्याकाण्ड, 2.32 एवं 100.55–58
44. डॉ. अशोक कुमार शर्मा, रामायण एवं महाभारतकालीन प्रशासनिक व्यवस्था, पृ. 207–208
45. वही, पृ. 208
46. वाल्मीकिरामायण, 2.100.59
47. वाल्मीकिरामायण, 2.100.56
48. वही, 2.100.57
49. रामायणकालीन समाज, पृ. 282 एवं वाल्मीकिरामायण, 2.100.58
50. रामायणकालीन समाज, शांति कुमार नानूराम व्यास, सत्साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, 1958 एवं वाल्मीकिरामायण, 2.75.58
51. वाल्मीकिरामायण, उत्तरकाण्ड 59 के बाद प्रक्षिप्त सर्ग 1 एवं 2
52. रामायणकालीन समाज, पृ. 283

53. वाल्मीकिरामायण, 7.89.8–10
54. वाल्मीकिरामायण, उत्तरकाण्ड 59 के बाद प्रक्षिप्त सर्ग 1
55. वही, प्रक्षिप्त सर्ग 2 का 7वाँ श्लोक
56. वही, श्लोक 32
57. वही, 33 से 36
58. वही, 40 से 42
59. वही, 43–44
60. वही, 45–47
61. वही, 51–52
62. डॉ. अशोक कुमार शर्मा, रामायण एवं महाभारतकालीन प्रशासनिक व्यवस्था, पृ. 218
63. वही, 7.55.15–17
64. वही, 6.128.99–100
65. वही, 7.59.1.10
66. रामायणकालीन समाज, पृ. 284
67. वही, पृ. 284 एवं वाल्मीकिरामायण, 5.28.7
68. वही, 4.55.10
69. वही, 5.28.7
70. वही, 4.55.10
71. वही, 5.26.10
72. रामायणकालीन समाज, पृ. 285, वाल्मीकिरामायण, 5. 24.41
73. वाल्मीकिरामायण, 5.4.16
74. वाल्मीकिरामायण, 6.114.21 एवं 6.127.10
75. रामायणकालीन समाज, पृ. 284–85

सल्तनतकाल में दक्षिण भारत के स्वतंत्र राज्यों में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विकास

ज्ञानेन्द्र
टी.जी.टी., रा.बा.व.मा. विद्यालय नं. 3, बदरपुर, नई दिल्ली

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश : *दक्षिण भारत में अवस्थित विभिन्न स्वतंत्र राज्यों का सल्तनत काल में सामाजिक एवं आर्थिक विकास हुआ, किन्तु धार्मिक एवं सांस्कृतिक विकास की स्थिति भिन्न-भिन्न रही। उन शासकों ने धर्म एवं संस्कृति के नाम पर न तो जनता को सताया और न ही किसी विशेष धर्म को मानने को बाध्य किया। इसके विपरीत मुस्लिम शासित प्रदेशों ने केवल अपने धर्म का प्रचार एवं प्रसार किया, उसको मानने के लिए लोगों को बाध्य किया, मंदिरों को तोड़ा और उनके स्थान पर मस्जिदों को बनवाया। अपनी संस्कृति को हिन्दुओं पर जबरदस्ती लादा। निश्चय ही यह प्रवृत्ति जनता के हित में न होने के कारण घातक थी, जिसका खामियाजा उन्हें बाद में भोगना पड़ा। फिर भी हिन्दू धर्म का अस्तित्व न मिट सका और दक्षिण भारत के लोग सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से विकास के पथ पर अग्रसर हुए।*

संकेताक्षर : *प्रागैतिहासिक संस्कृति, सल्तनत, सहिष्णु, पल्लिया, हेमाशिपंती, शंकम ।*

दक्षिण भारत में मानव सभ्यता की ऐतिहासिक जड़ें अति प्राचीन काल से विद्यमान रही हैं। फिर भी इस क्षेत्र के व्यवस्थित अध्ययन की शुरुआत सन् 1863 ई. में रॉबर्ट ब्रूसफूट द्वारा की गयी।[1] इसके बाद इस खोज की परम्परा दि टैरा, टी. टी. पैटरसन, कृष्ण स्वामी, अय्यप्पन, बरकिट, सांकलिया, सुब्बाराव, अल्चिन आदि के द्वारा पल्लवित हुई। नवीनतम अनुमान और अन्वेषण के अनुसार लगभग डेढ़ लाख वर्ष पूर्व मद्रास के आस-पास अति प्राचीन प्रागैतिहासिक संस्कृति का समारम्भ हुआ, जिसको प्राचीन प्रस्तर युग के अन्तिम चरण की सभ्यता से तुलनीय माना जाता है।[2] दक्षिण भारत की विभिन्न नदियों- जैसे नर्मदा, कृष्णा, वेनगंगा, पेन्नार में मध्यकालीन पाषाण काल की बस्तियाँ विद्यमान थीं।[3] इस क्षेत्र में परवर्ती पाषाण काल के प्रमाण रेनुगुण्टा, चेरगोण्ड पाल्यम, कर्नूल, नागार्जुन कोंडा तथा वेल्लूर में उपलब्ध हुए हैं।[4] इसी प्रकार ज्यूनर और अल्चिन की खोजों से सुदूर दक्षिण भारत में तिन्नेवेली जिले में परवर्ती प्रस्तर युग के अवशेष मिले हैं।[5]

अशोक के अभिलेखों में भी दक्षिण भारत की प्रजातियों और राज्यों की चर्चा है। यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से अशोक ने उन्हें यथा चेर, चोल, पाण्ड्य राज्यों को स्वतंत्र और सीमांत राज्य का दर्जा उसी प्रकार दिया था जैसा कि 'योन कम्बोज' आदि स्वतंत्र राज्यों को।[6] दक्षिण प्रदेश में मौर्यों के उत्तराधिकारी भृत्य, सातवाहनों में एक सुगठित साम्राज्य की स्थापना की।[7]

दिल्ली सल्तनत की कालावधि की पृष्ठभूमि में समकालीन दक्षिण भारत के स्वतंत्र अस्तित्व बनाने वाले राजवंशों की स्थिति पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि चोल राजवंश, पुनः फल-फूल रहा था। देवगिरि में यादव वंश अपनी ख्याति को बढ़ा रहे थे। सन् 1526 ई. के आस-पास कलीमुल्ला एक अयोग्य शासक के रूप में बहमनी राजसिंहासन पर आरुढ़ हुआ। इसी की अदूरदर्शितापूर्ण नीतियों के चलते बहमनी में विघटन की प्रक्रिया आरम्भ हुई जिसकी परिणति बरार, अहमदनगर, बीजापुर, बीदर तथा गोलकुंडा जैसे नवीन राज्यों के रुप में हुई।

चोल शासन काल में शकों की अधिकता थी, जो गाँवों में रहते थे। भूमि स्वामित्व व्यक्तिगत था। भूमि हस्तान्तरण बिक्री

और दान के द्वारा वैध था। समाज में इन लोगों का विशेष आदर था जो अधिक से अधिक भूमि के स्वामी थे। ग्राम के प्रबंध में मुख्यतया जमींदारों का ही हाथ रहता था। कुछ क्षेत्रों में सामूहिक भूमि स्वामित्व था। अधिकांश किसान भूमिहीन शक थे। सरकारी कागजातों में सभी करदाताओं का नाम दर्ज होता था। भूमिहीन किसानों का कोई लेखा-जोखा नहीं था। शिल्पियों के अधीन भी भूमि होती थी। ग्राम-शिल्पी गाँवों की छोटी-छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे।[8]

धार्मिक समन्वय का वातावरण चोल शासन में बना रहा। यद्यपि वैष्णव और शैव सम्प्रदायों में तनाव की स्थिति भी प्रमाणित होती है। अनेक चोल कालीन मंदिरों पर शैव और वैष्णव देवताओं का मूर्तिगत अंकन समान रुप से किया गया मिलता है। चोल शासन काल में वैष्णव संतों में रामानुज बड़े प्रसिद्ध थे। कांचीपुरम में दर्शन का गहन अध्ययन करने के बाद श्रीरंगम में इन्होंने वैष्णव धर्म का महान केन्द्र खोला। शंकर के मायावाद का खंडन करके इन्होंने विशिष्टाद्वैतवाद दर्शन का प्रचार किया। वर्ण और जाति की सत्ता को स्वीकारते हुए भी उनके द्वारा भक्ति का मार्ग सभी वर्णों और जातियों के लिए खोल दिया गया। ऐतिहासिक साक्ष्यों से विदित होता है कि चोल नरेश जैन धर्म के प्रति भी सहिष्णु थे।[9] जैन धर्म की अपेक्षा बौद्ध धर्म की अवनति थी किन्तु इसके प्रति भी चोल नरेशों का समादर का भाव विद्यमान था। जैन मठें (पल्लियों) को कर मुक्त भूमि मिलती थी।

तन्जौर के बृहदीश्वर मंदिर के निर्माण के लगभग 20 वर्ष बाद राजेन्द्र प्रथम ने अपने राज्य नगर गंगैकोंडचोलपुरम में बृहदीश्वर के नाम से ही एक नये मंदिर का निर्माण कराया। इसी प्रकार ऐरावतेश्वर मंदिर का शिखर पंचतल है जिसमें सबसे ऊपरी तल प्रस्तर के बजाय इष्टिका द्वारा निर्मित है। इस काल में मूर्तिकला भी उत्कृष्ट कला के रुप में परिलक्षित होती है। तन्जौर के बृहदीश्वर मंदिर के निर्माण के पूर्व बने अनेक मंदिरों की मूर्ति सज्जा विरल होते हुए भी मौलिकता के गुण से सम्पन्न है। इन मूर्तियों की वास्तविक संरचना पर मूर्तिकला विधान का व्यापक प्रभाव, मुख्यतया आंगिक विन्यास, भंगिमाओं तथा मुख के भावाभिव्यंजन पर परिलक्षित होता है। दसवीं शताब्दी में चोल मूर्तिकला अपनी विशिष्टताओं के साथ उभर कर आती है। इस समय की मूर्तियों में अपेक्षाकृढ़ता सजीवता झलकती है।

पाण्ड्यकालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विकास

मार्कोपोलो के विवरण से भी उस समय के समाज और जीवन की जानकारी मिलती है। समाज चार वर्णों में विभक्त था। ब्राह्मणों का समाज में उच्च स्थान था। वे प्रायः षट्कर्म करते थे। स्त्रियों की दशा ठीक थी। कन्याओं का विवाह प्रायः 10-11 वर्ष की अवस्था में हो जाता था। दासी-प्रथा प्रचलित थी। कुछ स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति अपनाये हुई थीं। शिक्षा में लोगों की विशेष रुचि थी। साहित्य, व्याकरण, संगीत, नृत्य तथा कला अपने उत्कर्ष पर थी।

पाठशाला, विद्यालय तथा महाविद्यालय की विशेष व्यवस्था थी। मार्कोपोलो ने सामान्य लोगों के रहन-सहन के सम्बंध में लिखा है कि लोग दो बार स्नान करते, घरों को गोबर से लीपते, नंगे बदन घूमते, भूमि पर ही बैठते तथा सोते, छुआछूत का विशेष ध्यान रखते और पान खाते थे। पाण्ड्य जनपद में मिले अभिलेख उस समय के समाज और प्रशासन पद्धति पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। व्यक्तिगत भूमि स्वामित्व की मान्यता होते हुए भी राजकीय अभिलेख में समस्त खेतिहर भूमि और उसके स्वामित्व का उल्लेख होता था। कभी-कभी अधिकारीगण स्वेच्छा से भी शकों से मनमाना धन वसूल करते थे।[10] सिंचाई की व्यवस्था भी सरकारी नियंत्रण में थी और मंदिर के न्यासी तथा सिंचाई अधिकारियों को सिंचाई के साधनों की सुरक्षा आदि पर सतर्क दृष्टि रखनी होती थी। कुछ लोग वैष्णव धर्म के अनुयायी थे, किन्तु अधिकांश लोग शैव धर्म को मानते थे। पाण्ड्य राजाओं में मंदिर बनवाने की बड़ी चाह थी।

देवगिरि के यादव वंश का सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विकास

दक्षिण भारत के इतिहास में यादव वंश का व्यापक प्रभाव रहा है। विशेषकर 12 वीं और 13 वीं सदी में। इनके उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक धारणाएँ हैं किन्तु स्वतः यादव वंश मथुरा के यदुवंशियों से अपना सम्बंध मानता रहा है। वर्ण-धर्म के विरुद्ध 'वीरशैव' और महानुभाव आंदोलन चले थे। किन्तु उसका प्रभाव समाज के प्रचलित परम्पराओं पर बहुत कम पड़ा था।[11]

समाज का निचला वर्ग अपने पुश्तैनी पेशों का ही अनुगमन करता था। छुआछूत की वर्जनशीलता अत्यधिक हो चली थी। कन्याओं के विवाह के लिए 10-11 वर्ष की अवस्था ही उत्तम मानी जाती थी। सती प्रथा केवल क्षत्रिय और

राजवर्ग में प्रचलित थी। सेउश राजा रामचंद्र के मरने पर उसकी पत्नियाँ सती हुई थीं।[12] विज्ञानेश्वर जैसे कुछ तत्कालीन लेखकों के अनुसार कम से कम ब्राह्मण विधवाओं के लिए यह जायज न था, क्योंकि कुछ भी हो, यह एक प्रकार की आत्महत्या ही थी। कल्याणकारी एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए भी मंदिर अब भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण केन्द्र बने रहे। उसमें विश्राम गृहों का संचालन होता था। यहाँ निराश्रय लोगों को निःशुल्क भोजन मिलता था। कुछ मंदिर उच्च शिक्षा के लिए महाविद्यालयों का संचालन करते थे तथा उनके द्वारा प्रशासित सत्रों में गरीब विद्यार्थियों की सहायता की जाती थी।[13]

इस काल के अभिलेखों से पता चलता है कि तत्कालीन मंदिर पूजा लगभग वैसी ही थी जैसी आजकल है। विशेष अवसरों पर संगीत और नृत्य से भी आराधकों का मनोरंजन होता था।[14] ऐसा प्रतीत होता है कि 'महानुभाव' सम्प्रदाय ने राजा रामचन्द्र का भी ध्यान आकृष्ट किया था एवं उसकी रानी भी इस सम्प्रदाय की अनुयायी थी। पंढरपुर के विट्ठल मंदिर में उत्कीर्ण 1273 ई. के अभिलेख से पता चलता है कि तेलंगाना, कर्नाटक, महाराष्ट्र तथा मध्य प्रदेश से यात्री इस मंदिर के दर्शनार्थ आते थे तथा उदारता दिखाने और प्रतिष्ठानों को स्थापित करने में एक-दूसरे से होड़ करते थे।

मन्दिर तथा मठ सांस्कृतिक गतिविधियों के केन्द्र बने। इन केन्दों पर, यादव राजवंश ने पारम्परिक वास्तु और मूर्तिकला को संरक्षण दिया। इस क्षेत्र में 12वीं और 13वीं सदी ई. में कुछ नये प्रयोग भी किए गये जो स्तंभ विन्यास भूमि योजना और शिखर योजना से सम्बन्धित थे। उरुश्रृंगों का प्रयोग प्रायः कोशकों पर किया गया। भित्तिकाओं को अपेक्षाकृत विस्तृत बनाया गया। 13वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में एक नूतन वास्तु शैली का समारम्भ हुआ जिसको हेमाशिपंती कहते हैं।

काकतीयकालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विकास

काकतीयों की शक्ति का उदय कल्याणी के चालुक्यों के राज्य के दौरान हुआ था। कुछ विद्वानों ने इस वंश की उत्पत्ति को पूर्वी चालुक्य नरेश अम्भ द्वितीय (सन् 945-970 ई.) के सहायक कार्कत्य गुड्यान से बताने का प्रयास किया है। काकतीय सम्भवतः दुर्जन वंश से सम्बन्धित थे और शूद्र थे।

कन्याओं का विवाह 10-11 वर्ष की अवस्था में हो जाता था। उन्हें पढ़ने-लिखने की सुविधा भी प्राप्त थी। दासी-प्रथा भी प्रचलित थी। कुछ स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति में संलग्न थीं। प्रायः स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। गुरु तथा वृद्ध लोगों को विशेष सम्मान प्राप्त था। लोगों की शिक्षा की अच्छी व्यवस्था थी। राज्य की ओर से अनेक विद्यालय तथा महाविद्यालयों का निर्माण हुआ।

काकतीय नृप संस्कृत भाषा और साहित्य के बड़े पोषक थे। उनके दानों से जो उन्होंने 'अग्रहार' रुप में दिए-वेद, दर्शन, पुराण, उपनिषद् और षड्दर्शन के अध्ययन-अध्यापन को बड़ा ही प्रोत्साहन मिला। अनेक प्रशस्तिकार कवि भी राजकीय संरक्षण में थे, जिनमें अद्वैत संन्यासिन, नंदी, कवि चक्रवर्ती, सूर कवि, अनंतसूरी, ईश्वर महोपाध्याय विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके प्रशस्ति काव्य साहित्यिक गुणों से भरपूर हैं। अगस्तय विद्यानाथ ने 74 से अधिक संस्कृत ग्रंथों की रचना की, जिनमें केवल 'बाल भारत' विशेष लोकप्रिय हुआ। उनकी अन्य उपलब्ध रचना 'नलकीर्त्तिकौमुदी' है, जो कि एक खण्ड काव्य है।

अधिंकाश लोग खेती-बाड़ी करते थे, अतः ग्रामों में कृषि और सिंचाई की व्यवस्था पर प्रशासन का बड़ा ध्यान रहता था। काकतीय नरेशों को नहर तथा तालाब बनवाने में बड़ी रुचि थी। काकतीय प्रशासन में कर की व्यवस्था सुचारु थी और व्यापारियों को शुल्क आदि में रियायतें भी दी जाती थीं। नमक के उत्पादन पर राजकीय एकाधिकार था। चरागाहों पर भी कर लगाया जाता था। अन्य कर भाड़, कणिका, उपक्षिति, तलारि, पन्नु, बनतेल आदि कहलाते थे। भूमिकर (कृषिकर) इनके अतिरिक्त था। व्यापारिक कर को मुख्यतया 'शंकम' कहते थे।[15]

वैश्णव धर्म के प्रति भी काकतीय नरेशों और उनकी प्रजा की उदार दृष्टि थी। किन्तु जैन धर्म के प्रति लोगों का दृष्टिकोण कुछ उग्र था और अनेक जैन मठ नष्ट कर दिये गये।[16] काकतीय नरेशों द्वारा हनुमकोण्ड, पालमपेट, पिल्ललमरि, नागुलपाद, माचरत्न, गुर्जाला आदि स्थानों पर अनेक मंदिर बनवाये गये, जो शिक्षा और संस्कृति के केन्द्र भी थे। इन मंदिरों की पूजा आराधना में स्थानाधिपति, श्रीकर्ण आदि अधिकारियों के अतिरिक्त भारी संख्या में वार-वनिताएँ, देवदासियाँ और नृत्यांगनाएँ नियुक्त थीं।

मंदिर का वास्तु विधान प्रायः पश्चिमी चालुक्य शैली के अनुवर्तन पर था। यद्यपि उन पर होयसल कला और वास्तु

विधान का भी प्रभाव देखा जा सकता है। काकतीय कला शिल्प में अलंकरण सज्जा में शिल्पी बड़ी चातुरी दिखाते थे। वारंगल का एक महातोरण, जो इन दिनों राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में है, काकतीय शिल्प का पूरा प्रतिनिधित्व करता है।[17]

स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। समाज में वे पूज्य थीं। उस समय वेश्यावृत्ति भी प्रचलित थी। दास तथा दासी भी होते थे। अनेक विद्यालय तथा महाविद्यालय थे, जहाँ विद्यार्थियों को योग्य अध्यापकों के द्वारा शिक्षा दी जाती थी। होयसल अभिलेखों में शासन के उद्देश्य के सम्बन्ध में दुष्ट निग्रह और शिष्ट प्रतिपालन की बात बराबर कही गयी है। राजा ही न्याय का स्रोत था। राज्य के विस्तृत हो जाने पर उसका शासन क्षेत्र पर नियंत्रण की तुलना में अपराधों की संख्या अधिक थी। प्रायः सीमा विवाद, गोहरण की घटनाओं का उल्लेख होयसल अभिलेखों में मिलता है।[18] नये विजित क्षेत्र में सैन्य अधिकारी कठोरता से पेश आते थे। दण्ड धर्मशास्त्र के विधान के अनुसार दिये जाते थे। आर्थिक दण्ड राज्य की आय का अच्छा स्रोत था। व्यापारी और कारीगरों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। उन्हें अपनी सुरक्षा के लिए सैन्य बल रखने होते थे। वर्ण-व्यवस्था लागू थी। ब्राह्मण सर्वत्र पूज्य थे। सेना में महत्वपूर्ण पदों पर ब्राह्मणों की नियुक्तियाँ होती थी। होयसल सम्राट् स्वयं सेना का नेतृत्व करते थे। सेनाधिकारियों को प्रशासन के कार्य भी देखने होते थे। भूमि सम्बन्धी लेखा-जोखा राजकीय अभिलेखागार में सुरक्षित रहते थे। राजा भूमि-दान अग्रहार ब्राह्मणों को करता था तथा वेतन पुरस्कार आदि के रुप में जो भूमि अधिकारियों को देता था, उसे गौड़ कहते थे। राजा के अधीन अपनी कृषि योग्य भूमि भी होती थी, जिससे उसे भारी मात्रा में लाभ होता था। मंदिर वास्तु की अपेक्षा होयसल कला अपने मूर्ति सौष्ठव के लिए प्रसिद्ध है। परम्परा से चली आने वाली मूर्ति शैली होयसल शिल्पियों के हाथों में पड़कर एक अभूतपूर्व संरचनात्मक स्वरुप धारण करती है।

विजयनगर राज्य का सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विकास

तुगलक साम्राज्य के पतन के दिनों में दक्षिण भारत के क्षेत्र दिल्ली सल्तनत से अलग होने शुरु हो गये थे। इसमें सबसे पहले विजयनगर (सन् 1336 ई.) और बहमनी राज्य (सन् 1346-1347 ई.) बने थे। विजयनगर राज्य की स्थापना सन् 1336 ई. में हरिहर और बुक्का नामक दो भाइयों ने की। वैसे तो इतिहासकारों के बीच विजयनगर राजवंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मतभेद हैं। कुछ इतिहासकारों के अनुसार दक्षिण भारत में मुस्लिम सत्ता के विस्तार के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया हुई। उस क्षेत्र के हिन्दुओं ने इस्लामी संस्कृति के प्रभाव से हिन्दू धर्म, समाज और संस्कृति को सुरक्षित रखने का प्रयास किया और इस नयी चेतना के फलस्वरुप विजयनगर राजवंश की स्थापना हुई।

विजयनगर राजवंश में जाति प्रथा का प्रचलन था, किन्तु इसका स्वरुप उत्तरी भारत के समान जटिल नहीं था। मुख्यरुप से ब्राह्मण और शूद्र वर्ग के बीच समाज में विभाजन था, किन्तु क्षत्रिय और वैश्य वर्ग के बीच बहुत अधिक असमानता नहीं थी। वैश्य व्यापार में संलग्न थे। नाई, बढ़ई, जुलाहे, मूर्तिकार, सुनार, लुहार आदि निम्न जाति में आते थे। बाल-विवाह, बहु विवाह, सती प्रथा, दहेज प्रथा, दास तथा दासी का क्रय-विक्रय जैसी कई कुप्रथाएँ प्रचलित थीं। अन्तर्विवाह पर भी विशेष प्रतिबंध नहीं था। ब्राह्मण जाति का स्थान सर्वश्रेष्ठ था।

पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं सदियों में भारत का भ्रमण करने वाले विदेशी यात्रियों ने विजयनगर साम्राज्य के विषय में देदीप्यमान विवरण लिख छोड़े हैं। इसके अनुसार विजयनगर शहर विशाल दुर्गों से घिरा तथा बृहदाकार था। इटली का यात्री निकोली काउन्टी, जिसने लगभग सन् 1420 ई. में यहाँ भ्रमण किया था, लिखता है, नगर की परिधि 60 मी. है। इसकी दीवालें पहाड़ों तक चली गयी हैं तथा उनके अधोभाग घाटियों को परिवेष्टित करती हैं जिनसे इसका विस्तार बढ़ जाता है। अनुमान किया जाता है कि इस नगर में अस्त्र धारण करने के योग्य 90 हजार आदमी हैं। यहाँ का राजा भारत के अन्य सभी राजाओं से अधिक शक्तिशाली है।[19] अब्दुर्रज्जाक जो फारस से भारत आया था सन् 1443 ई. में विजयनगर गया था, लिखता है, "उस देश में इतनी अधिक जनसंख्या है कि कम स्थान में उसका अंदाज देना कठिन है। राजा के कोष में अनेक प्रकोष्ठ हैं जो पिघले हुए सोने के टुकड़ों से भरे हैं। देश के सभी निवासी ऊँच अथवा नीच, यहाँ तक कि बाजार के शिल्पकार तक कानों, गलों, बाँहों, कलाइयों तथा अँगुलियों में जवाहरात और सोने के आभूषण पहनते हैं।"

राज्य की आर्थिक अवस्था की सबसे उल्लेखनीय विशेषता थी, देश के भीतर का तटवर्ती और सामुद्रिक व्यापार।

मालाबार तट पर सबसे महत्वपूर्ण बंदरगाह कालीकट था तथा अब्दुर्रज्जाक के लेखानुसार साम्राज्य में लगभग तीन सौ बंदरगाह थे। इसका मलय, दीपपुंज, बर्मा, चीन, अरब, फारस दक्षिणी अफ्रीका, अबीसीनिया एवं पुर्तगाल के साथ व्यापारिक सम्बन्ध थे। बारबोसा के लेखानुसार दक्षिण भारत के जहाज मालद्वीप में बनते थे। अभिलेख सम्बन्धी प्रमाण से यह सिद्ध होता है कि विजयनगर के शासक जहाजी बेड़े रखते थे तथा पुर्तगीजों के आगमन के पहले वहाँ के लोग जहाज निर्माण कला से परिचित थे।

अधिकांश जनता कृषि पर आश्रित थी। विजयनगर साम्राज्य की कर प्रणाली कठोर थी। राज्य की आय का मुख्य स्रोत भूमि कर था, जिसे सीस्त या राय रेखा कहते थे। लगान वसूली का विभाग आठवन कहलाता था। कर निर्धारण हेतु भूमि को चार वर्गों में बाँट दिया गया था– सिंचित, शस्य, उद्यान और वन। सामान्यतया लगान की दर उपज के 1/3 अंश से 1/6 अंश तक थी। इसका निर्धारण भूमि की श्रेणी और फसल की उत्कृष्टता के आधार पर होता था। अपवाद स्वरूप ब्राह्मण भूमि से उपज का मात्र 1/20 अंश और मंदिरों की भूमि से मात्र 1/30 अंश लगान लिया जाता था। लगान का भुगतान अनाज या नगदी दोनों ही रुपों में किया जा सकता था।

करों का बोझ अधिक था और इनमें विविधता थी। लगान के अतिरिक्त सम्पत्ति, मकान, पशु, उद्योग, व्यवसाय, व्यापार और वाणिज्य पर भी कर लगता था। सामाजिक, सामुदायिक एवं अर्थ धन से प्राप्त धन विजयनगर राज्य की आय के मुख्य स्रोत थे। वैवाहिक समारोह के आयोजन पर भी कर लगता था, जो दोनों पक्षों से लिया जाता था। केवल विधवाओं के पुनर्विवाह की स्थिति में कर नहीं लिया जाता थां। करों की वसूली प्रशासनिक अधिकारियों एवं ठेकेदारों, दोनों ही के द्वारा, की जाती थी।[20] शैव, वैष्णव तथा जैन धर्म उत्कर्ष पर थे। ब्राह्मण, षट्कर्मी थी। धार्मिक कार्यों में कोई रोक–टोक नहीं थी। समस्त कार्य विधि–विधान से किये जाते थे। फिर भी हिन्दू धर्म को प्रोत्साहन दिया जाता था। इसी कारण अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ।

मध्यकालीन दक्षिण भारत के इतिहास में विजयनगर साम्राज्य के सांस्कृतिक योगदान को विशेष महत्व हासिल है। दो शताब्दियों से कुछ अधिक समय तक विजयनगर का राज्य दक्षिण की राजनीति में अपना प्रभाव बनाये रखने में सफल रहा। इस राज्य के शासकों ने सांस्कृतिक जीवन के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया। हिन्दू शासकों की सत्ता के अधीन होने के कारण यह राज्य हिन्दू धर्म और संस्कृति का केन्द्र रहा। विजयनगर के शासकों ने विशेषकर हिन्दू धर्म और संस्कृति को विशेष प्रोत्साहन दिया।

विजयनगर के शासकों ने स्थापत्य कला के विकास में भी प्रशंसनीय योगदान दिया। दक्षिण भारत में मंदिर शैली का चरमोत्कर्ष विजयनगर के शासकों के काल में ही हुआ। इस शैली के उत्कृष्ट उदाहरणों में देवराय द्वितीय द्वारा निर्मित हजारा मंदिर और कृष्णदेव राय द्वारा निर्मित विट्ठल स्वामी के मंदिर का नाम लिया जा सकता है। विजयनगर शैली के भवन तुंगभद्रा नदी से दक्षिण क्षेत्र में फैले हुए हैं। इनमें कांचीपुरम का एकाम्रनाथ नामक मंदिर तथा ताड़पत्री स्थित रामेश्वर मंदिर अपने सुन्दर गोपुरों के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। श्रीरंग स्थित शेषगिरि मंडप में प्रस्तुत घोड़ों की मूर्तियाँ अपनी सुन्दरता के लिए प्रसि) हैं। विजयनगर की इस शैली को आगे चलकर मदुरा के शासकों द्वारा प्रोत्साहित किया गया। विजयनगर के शासकों द्वारा अनेक महलों और राजप्रसादों का निर्माण किया गया। जिनमें कुछ के अवशेष साम्राज्य की राजधानी विजयनगर (हम्पी) में देखे जा सकते हैं। इन भवनों की दीवारों पर चित्रण के सुन्दर उदाहरण देखे जा सकते हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसमें विभिन्न देशों के रहन–सहन को दर्शाया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विजयनगर साम्राज्य के सामाजिक जीवन के विविध क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति हुई। बहमनी राज्य का सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विकास दक्षिण भारत में तुगलक साम्राज्य से पृथक् होने वाला दूसरा बड़ा राज्य बहमनी था। मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल में निरन्तर विद्रोह और अशान्ति की स्थिति ने दक्षिण भारत के तुर्क सरदारों को भी स्वतंत्र सत्ता ग्रहण करने की प्रेरणा दी। तुगलक साम्राज्य का प्रशासन चलाने के लिए पश्चिमी और दक्षिणी प्रान्तों में ऐसे सैनिक सरदारों की नियुक्ति की गयी थी जो 'अमीराने सदा' कहलाते थे।[21] ये लगभग 100 गाँवों के प्रशासक थे। प्रशासन की वित्त और सैनिक शक्ति पर इनका पूरा अधिकार था। बहमनी राज्य में कुल 14 सुलतानों ने शासन किया।[22] ये सभी साधारण प्रतिभा के व्यक्ति थे। इनमें से किसी भी सुलतान को हम उच्च कोटि के राजनीतिज्ञों में नहीं रख सकते। इसमें संदेह नहीं कि इनमें से कुछ सुलतान सामरिक प्रकृति के थे और उनमें एक कुशल सेनानायक के गुण विद्यमान थे, परन्तु उनकी

सफलता का कारण उनका रण कौशल उतना नहीं था जितना कि हिन्दुओं का पतन। इस राजवंश में हिन्दुओं का अत्यधिक नैतिक पतन हुआ। इसके फलस्वरुप बहमनी के मुस्लिम शासकों को अत्यधिक सफलता प्राप्त होती गयी। बहमनी राज्य के अधिकतर सुलतान धर्मान्ध तथा असहिष्णु थे और हिन्दुओं के रक्तपात करने तथा उनकी सम्पत्ति को छीनने में लेश मात्र भी संकोच नहीं करते थे। वर्ण व्यवस्था प्रचलित थी, किन्तु ब्राह्मण लोग हिकारत की निगाहों से देखे जाते थे। उन्हें अपनी जीविका चलाने के लिए धर्म-कर्म छोड़कर व्यापारिक वृत्ति अपनानी पड़ी। स्त्रियों की दशा अच्छी नहीं थी। वे पूर्णतः असुरक्षित थीं, अतः वे प्रायः घरों में ही रहती थीं। कभी-कभी वे सामन्तों तथा अधिकारियों की कुदृष्टि का शिकार होती थीं। वेश्यावृत्ति एवं दासी प्रथा जोरों पर थी। कोई स्त्री विधवा का जीवन नहीं जीना चाहती थी, अतः सती प्रथा प्रचलित थी। हिन्दुओं की बड़ी दुर्दशा थी। उनको पूजा-पाठ करना मुश्किल था। बात-बात पर वे दंड के भागी होते थे। उनकी जमीन जायदाद प्रायः जब्त कर ली जाती थी। हसन गंगू भी,जो बड़ा ही योग्य तथा प्रतिभाशाली शासक था, हिन्दुओं के प्रति उदार और सहिष्णु नहीं हो सका। उसके अधिकांश उत्तराधिकारी चरित्रहीन तथा निर्दय शासक थे। परन्तु इतना पतित होने पर भी दक्षिण भारत में वे इस्लाम धर्म का उतना प्रचार न कर सके जितना कि उत्तरी भारत में हुआ था।

यद्यपि बहमनी राज्य के सुलतान निरंकुश तथा निर्दयी थे परन्तु वे अपनी प्रजा के हित का हमेशा ध्यान रखते थे। कृषकों को सिंचाई की पूरी सुविधा प्राप्त थी और उनके हितों की हर प्रकार से रक्षा की जाती थी। अकाल के समय राज्य, प्रजा की हर प्रकार से सहायता करता था। व्यापारियों की स्थिति सामान्य थी। सुनार, लुहार, बढ़ई, धोबी, कुम्हार, नाई आदि अपने-अपने पेशों में संलग्न थे।

दक्षिण भारत में अवस्थित विभिन्न स्वतंत्र राज्यों के संदर्भ में अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि लगभग सभी राज्यों में सामाजिक एवं आर्थिक विकास हुआ, किन्तु धार्मिक एवं सांस्कृतिक विकास की स्थिति भिन्न-भिन्न रही।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *एनशिएंट इंडिया सं. 9, पृ. 53 तथा सांकलिया : जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, भाग 22, 1957, पृ. 2*
2. *श्रीवास्तव, बलराम, दक्षिण भारत, वाराणसी, 1992, पृ. 38*
3. *द बर्थ ऑफ इंडियन सिविलाइजेशन, पृ. 54-55*
4. *शेषाद्रि, एम., प्री हिस्टॉरिक एंड प्रोटो हिस्टॉरिक मैसूर, लंदन, 1956, पृ. 207-210*
5. *एनशिएंट इंडिया, सं. 12, पृ. 14-20*
6. *गणार, वा.रा., अशोक के अभिलेख, नाथे पब्लिकेशन प्रा. लि., नई दिल्ली, पृ. 58*
7. *गोपालाचारी, के., अर्ली हिस्ट्री ऑफ द आन्ध्र कन्ट्री, मद्रास, 1941, पृ. 29*
8. *शास्त्री, के. ए. नीलकंठ, चोलाज, मद्रास, 1955, पृ. 567, 574*
9. *श्रीवास्तव, बलराम, दक्षिण भारत, वाराणसी, 1992, पृ. 470*
10. *एनुअल रिपोर्ट ऑन एपिग्राफी, 1922, भाग 2, परिच्छेद 33, 1913*
11. *श्रीवास्तव, बलराम, दक्षिण भारत, वाराणसी, 1992, पृ. 512*
12. *याजदानी, जी., दकन का प्राचीन इतिहास, नई दिल्ली, 1977, पृ. 544*
13. *खान, जी. एच., तसगाँव ताम्रपत्र - सोर्सेज ऑफ दि मैडिवल हिस्ट्री ऑफ दकन : वाल्यूम 3, पृ. 15*
14. *याजदानी, जी., दकन का प्राचीन इतिहास, नई दिल्ली, 1977, पृ. 541*
15. *श्रीवास्तव, बलराम, दक्षिण भारत, वाराणसी, 1992, पृ. 515, 523*
16. *भंडारकर, आर. सी., अर्ली हिस्ट्री ऑफ दक्कन, बम्बई 1884, पृ. 712*
17. *मूर्ति, शिवराम, इंडियन स्कल्पचर, कलकत्ता, 1933, पृ. 127*
18. *श्रीवास्तव, बलराम, दक्षिण भारत, वाराणसी, 1992, पृ. 542*
19. *मजुमदार, राय चौधरी, भारत का बृहत् इतिहास, भाग 5, मद्रास, 1994, पृ. 98*
20. *अहमद, इमत्याज, मध्यकालीन भारत : एक सर्वेक्षण, पटना, 2003, पृ. 160*
21. *इमत्याज अहमद - मध्यकालीन भारत : एक सर्वेक्षण, पटना, 2003, पृ.164*
22. *हबीब, मोहम्मद, निज़ामी, खलिक अहमद, दिल्ली सल्तनत, भाग 2, मद्रास, 1994, पृ. 209-237*

मोहन राकेश के नाटक : उद्देश्य एवं दर्शन

डॉ. किरन
प्रवक्ता, जी.एस.एम. कॉलेज, सकीट, एटा (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश : *मोहन राकेश हिन्दी के सर्वथा मौलिक, अद्वितीय, अभिनव नाटककार हैं। उनके नाटकों में भाषा और भावों का मनमोहक मणिकांचन संयोग है। नाट्यकला की दृष्टि से सर्वथा सफल कृतियों में मोहन राकेश की गहन जीवन-दृष्टि एवं पावन उद्देश्य सन्निहित है। पात्रों के जीवनादर्श दर्शनीय एवं अनुकरणीय हैं। पावन प्रेम वस्तुतः लौकिक होते हुए भी अलौकिक होता है। यह प्रेम वासना से सर्वथा दूर एक श्रेष्ठ संस्कार होता है, जो जीवन का श्रृंगार है। इस आपा-धापी के समय में जहाँ जीवन अनेक प्रकार की कुण्ठाओं तनावों, संत्रासों से भरा हुआ है, वहाँ विशुद्ध प्रेम ही उपकारक है। प्राकृतिक परिवेश से दूर जाना, नश्वर सांसारिक वैभव के संजाल में फँसना, जीवन की सबसे बड़ी भूल है, जिसका निराकरण अनिवार्य है। यह मोहन राकेश के नाटकों का सहज सन्देश है।*

संकेताक्षर : *नाटक, मोहन राकेश, जीवनदर्शन ।*

साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति नाटककार भी किसी विशेष उद्देश्य की प्रतिष्ठा के लिए नाट्य-रचना में प्रवृत्त होता है। नाटक सामाजिक जीवन की सजीव प्रतिलिपि है। वह मनुष्य के सामाजिक जीवन की जटिल समस्याओं, इनकी कार्य संकुलता से भरी जिन्दगी, अनसुलझी गुत्थियों एवं प्रच्छन्न मनोभावों को रंगमंच पर प्रस्तुत करने का एक सशक्त माध्यम हैं। इसीलिए नाटक अपने युग का बेरोमीटर कहा जाता है।[1] इस प्रकार नाटक का उद्देश्य जीवन की मीमांसा के माध्यम से किसी आदर्श की प्रतिष्ठा करना अथवा समाज की यथार्थ गतिविधियों, वास्तविक तथ्यों एवं समस्याओं का विश्लेषण करते हुए उनके समाधान की दिशा में संकेत देना है।

भरतमुनि के अनुसार जो धर्मावलम्बी हैं, उन्हें कर्तव्य-पालन की शिक्षा देना जो कर्म प्रिय हैं, उन्हें उनके अनुकूल कर्म-सामग्री प्रदान करना, जो उद्धत हैं उन्हें विनयशील बनाना और जो विनीत हैं उन्हें संयम के नियमों से परिचित कराना नाटक का उद्देश्य है-

"धर्मो धर्म प्रवृत्तानां, कामो कामोपसेविनाम्।
निग्रहो दुर्विनीतां, विनीतानां यमक्रिया।।"[2]

इसके अतिरिक्त कायरों को साहसी बनाना, वीरों को उत्साही बनाए रखना, अज्ञानियों को ज्ञान देना, एवं ज्ञानियों को महाज्ञानी बनाना भी नाटक का उद्देश्य है-

"क्लीवानां धार्ष्ट्यजननमुत्साहः शूरमानिनाम्।
अबुधानां विबोधश्च, वैदुष्यं विदुषामपि।।"[3]

नाटक प्रसन्न एवं शान्त लोगों को आनन्द प्रदान करता ही है, आर्त, क्लान्त, शान्त एवं सन्तृप्त लोगों के सभी प्रकार के कष्टों को दूर करता है।"[4] मुंशी प्रेमचन्द ने साहित्य के उद्देश्य के विषय में कहा है- "जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक एवं मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति व गति पैदा न हो, हमारा सौन्दर्य-प्रेम न जागृत हो, वह साहित्य

कहलाने का अधिकार नहीं है।"[5] प्रेमचन्द जी का यह कथन साहित्य की विशेष विधा नाटक पर भी चरितार्थ होता है। नाटककार नाटक में अनेक उद्देश्यों का एक साथ निर्वाह करता है। वह मानसिक बल-विकास के साथ ही आत्मिक प्रेम-सौन्दर्य का आस्वादन कराने में भी प्रवीण होता है।

यथार्थ में नाटक ऐसी साहित्य-विधा है, जिसका सम्बन्ध लोक-जीवन से होता है। सोद्देश्यता नाटक की अपरिहार्य अनिवार्यता होती है। नाटककार अपने नाटकों के माध्यम से सामाजिक मूल्यों एवं उच्चादर्शों को प्रतिष्ठित कर राष्ट्र के अभ्युदय एवं समाज के विकास हेतु सर्वोत्तम प्रयत्न करता है। नाटककार सीधा उपदेश न देकर व्यंजना-शक्ति का आश्रय लेकर पाठक-प्रेक्षक के मानस-पटल पर उसके बिम्ब प्रस्तुत करता है। मोहन राकेश का 'आषाढ़ का दिन नाटक इसके प्रमाण है। यहाँ नाटककार ने पुरूष की अहंवृत्ति की विवशतापूर्ण स्थितियों की मार्मिक व्यंजना कराई है, वहीं नायक कालिदास के अन्तर्द्वन्द्व के माध्यम से यह व्यंजित किया है कि राज्याश्रय प्राप्त कर लेने पर साहित्यकार की प्रतिभा शनैः शनैः कुण्ठित होने लगती है।

कालिदास के प्रति अनन्य निष्ठा एवं हार्दिक प्रेमानुभूति से अनुप्राणित मल्लिका की विरह प्रवण कारुणिक दशा को जीवन्त करना नाटक का विशेष उद्देश्य है। जब माता अंबिका भावनाओं की अतल गहराइयों में आन्दोलित होती पुत्री मल्लिका को भावी जीवन की सम्भाव्य विभीषिकाओं और आवश्यकताओं से साक्षात्कार कराने का प्रयत्न करती है, तब प्रत्युत्त में मल्लिका उससे इस प्रकार कहती है- "मैं जानती हूँ माँ कि अपवाद होता है। तुम्हारे दुःख को भी जानती हूँ फिर भी मुझे अपवाद का अनुभव नहीं होता। मैंने भावना में भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह सम्बन्ध और सब सम्बन्धों से बड़ा है। मैं वास्तव में अपनी भावना से ही प्रेम करती हूँ जो पावित्र है, कोमल है, अनश्व है।"[6] मल्लिका के भावातिरेक पूर्ण उत्तर को सुनकर अंबिका का क्षोभ एवं वेदना इन शब्दों में सामने आती है- "और मुझे ऐसी भावना से वितृष्णा होती है। पवित्र, कोमल और अनश्वर!... जिसे तुम भावना कहती हो, वह केवल छलना और आत्मप्रवंचना है। तुमने भावना में भावना का वरण किया है।.... मैं पूँछती हूँ भावना में भावना का वरण क्या होता है ? उससे जीवन की आवश्यकताएँ किस प्रकार पूरी होती है।"[7] अंबिका की यथार्थ जीवन-दृष्टि उद्देश्य को आधार प्रदान करती है। आत्मकेन्द्रित कालिदास प्रेयसी मल्लिका के आग्रह अनुरोध को स्वीकार कर उज्जयिनी तो चला जाता है, किन्तु राजसी यश और वैभव प्राप्त कर लेने के बाद मल्लिका को भुला बैठता है। भावना के प्रवाह में बहने वाली नारी-जीवन-संघर्ष के कठोर साक्षात्कार का सामना अकेले ही करती है। उसकी भावुकता जीवन-संघर्ष की चरम परिणिति बन जाती है। दूसरी ओर कालिदास वैभव-विलास में आकण्ठ निमग्न होकर प्रियंगुमंजरी से विवाह कर अपनी मस्ती में डूबा रहता है। यहाँ नाटककार नारी के निश्छल प्रेम और समर्पण के दुःखद परिणाम के मार्मिक अन्द्र्द्वन्द्व का साक्षात्कार कराने के उद्देश्य में पूर्ण सफल हुआ है। नाटककार ने कालिदास के माध्यम से एक कलाकार के अन्तर्द्वन्द्व का साक्षात्कार कराने के उद्देश्य में पूर्ण सफल हुआ है। नाटककार ने कालिदास के माध्यम से एक कलाकार के अन्तर्द्वन्द्व की उद्देश्य-पूर्ति का कार्य भी सम्पन्न किया है। उनका यह कथन इस तथ्य का सकेतक है 'कालिदास मेरे लिए एक व्यक्ति नहीं' हमारी सृजनात्मक शक्तियों का प्रतीक है। नाटक में यह प्रतीक उस अन्तर्द्वन्द्व को संकेतित करने के लिए है, जो किसी भी काल में सृजनशील प्रतिभा को आन्दोलित करता है। व्यक्ति कालिदास को उस अन्तर्द्वन्द्व से गुजरना पड़ा या नहीं यह बात गौण है, मुख्य बात यह है कि हर काल में बहुतों को उससे गुजरना पड़ा है और हम आज भी इससे गुजर रहे हैं.. .. सृजनात्मक प्रतिभा के लिए इससे अच्छा नाम मुझे नहीं मिला।"[8]

अपने मूल प्राकृतिक परिवेश से कटकर कालिदास की काव्य-प्रतिभा कुण्ठित हो जाती है, राज्याश्रय, पद, प्रतिष्ठा और वैभव उन्हें यश तो प्रदान करता है, लेकिन वे अपने मूल उद्देश्य से भटक जाते हैं। उनका यह कथन इस तथ्य का प्रमाण है- "लोग सोचते हैं कि मैंने उस जीवन और वातावरण में रहकर बहुत कुछ लिखा है, परन्तु मैं जानता हूँ कि मैंने वहाँ रहकर कुछ नहीं लिखा। जो कुछ लिखा है वह यहाँ के जीवन का संचय था।"[9] इस प्रकार नाटककार ने साहित्यकार की सृजनात्मक प्रतिभा के परिवेश से कटकर क्षीण हो जाने के तथ्य का प्रदर्शन कर अपने उद्देश्य को चरितार्थ किया है।

'लहरों के राजहंस' में नाटककार ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के माध्यम से आधुनिक मानव के संकटबोध का साक्षात्कार कराया है। नन्द के द्विधा-ग्रस्त व्यक्तित्व में आधुनिक बोध व्याप्त है। नन्द की आधुकिता इसलिए और बलवती हो जाती है कि उसकी उलझन का कोई समाधान नहीं हो पाता। 'श्यामांग' का चरित्र भी उलझन, तनाव और जीवन

के प्रति दृष्टि के माध्यम से आधुनिक बोध की व्यंजना कराता है। अपने विशेष चिन्तन के फलस्वरूप ही वह सर्वत्र अकेला अनुभव करता है। वह भ्रम और छलावे से परिपूर्ण है। उसका व्यक्तित्व भ्रमित, उन्मादग्रस्त और अनिश्चय से अनुप्राणित है। इसीलिए वह आधुनिकता का अभिव्यंजक है। यथार्थ में यह नाटक आधुनिक मानव की नियति का अन्वेषण करता है। नन्द का यह कथन उल्लेख्य है–"लगता है मैं, चौराहे पर खड़ा नंगा व्यक्ति हूँ जिसे सभी दिशाएँ लील लेना चाहती हैं और अपने को ढकने के लिए उसके पास कोई आवरण नहीं।"[10] नन्द द्वारा प्रयुक्त शब्दावली आधुनिक बोध की ओर इंगित करती है। नन्द और सुन्दरी के अतिशय बोध का प्रमाण है। इस प्रकार नाटककार ने घर की खोज और व्यक्तित्व की खोज के माध्यम से अपनी उद्देश्य पूर्ति का सशक्त प्रयास किया है।

'आधे अधूरे' नाटक में प्रारम्भ से अन्त तक टूटन, जलन, अकेलापन, आक्रोश, विषाद, अस्वीकार और तीखी कडुवाहट भरी हुई है। सभी पात्र–परोक्ष रूप से स्थितियों की भयावहता और बेचारगी के माध्यम अपने अस्तित्व के लिए संघर्षशील हैं। नाटक की प्रधान पात्र सावित्री घर और दफ्तर में निजी बोझ से दबी–टूटी दिखाई देती है। पति महेन्द्र नाथ जिन्दगी की लड़ाई हार चुके की मनोवृत्ति, संघर्ष करने में असमर्थ, खोखला, पलायनवादी और कुण्ठित व्यक्तित्व का प्रतीक है। बड़ी लड़की बिन्नी घुट्न, पलायन और बड़बोलेपन से पीड़ित है। छोटी लड़की किन्नी खालीपन, खोखलेपन और विरोधाभास में जीती हैं। पुत्र अशोक कटते हुए सम्बन्धों एवं टूटते जीवन–मूल्यों का प्रतीक है। इस प्रकार नाटककार ने सभी पात्रों को विडम्बनाओं और पीड़ादायी स्थितियों में जीते दिखाता है। सबका जीवन ऊब, शून्यता, अजनबीपन, अलगाव की स्थितियों में व्यतीत होता है। सभी चरित्र मध्यवर्गीय संस्कारशीलता और नैतिकता के पुराने बंधनों को तोड़ते हैं। नाटक आधुनिक नगरों में संघर्षरत मध्यवर्गीय परिवार के संघर्ष, विद्रोह और दयनीय चेतना को व्यंजित करता है। इस प्रकार यहाँ समकालीन विवशताएँ जीवन्त हो उठी हैं। स्त्री का यह कथन आधुनिक परिवार की विकृति, मनःस्थिति और परिस्थिति का मार्मिक साक्ष्य प्रस्तुत करता है–"और वही महेन्द्र जो दोस्तों के बीच दब्बू–सा बना हलके–हलके मुसकराता है, घर आकर दरिंदा बन जाता है। पता नहीं, कब किसे नोंच लेगा, कब किसे फाड़ खायेगा ! आज वह ताव में अपनी कमीज को आग लगा लेता है। कल वह सावित्री की छाती पर बैठकर उसका सिर जमीन से रगड़ने लगता है। बोल, बोल,बोल, चलेगी उस तरह कि जैसे मैं चाहता हूँ? मानेगी वह सब कि जो मैं करता हूँ? पर सावित्री पर फिर भी नहीं चलती। वह सब नहीं मानती। वह नफरत करती है इस सबसे–इस आदमी के ऐसा होने से। वह एक पूरा आदमी चाहती है अपने लिए एक पूरा–पूरा आदमी।"[11]

यह हताशा और मानसिक क्षोभ बीस वर्ष तब असफल वैवाहिक जीवन व्यतीत करने वाली नारी के अन्दर ही व्याप्त नहीं है, उसकी बेटी के भाग्य में भी प्रतिध्वनित होता है, जो अपने पति का घर छोड़कर माता–पिता के घर लौट आती है, लेकिन उसे यह घर नहीं, साँपों की बांबी जैसा दिखता है, जैसा हमेशा था–"ऐसा भी होता है क्या कि.... दो आदमी जितना ज्यादा साथ रहें, एक हवा में साँस लें, उतना ही ज्यादा अपने को एक–दूसरे से अजनबी महसूस करें।"[12] निस्सन्देह मोहन राकेश 'आधे–अधूरे' नाटक के माध्यम से आधुनिक जीवन की विसंगतियों के बोध को उनकी समस्त कटुता, विवशता और अर्थहीनता के साथ प्रदर्शित करने के अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल रहे हैं।

विचार शब्द चिन्तन, विमर्श और तत्वार्थ–चिन्तन का बोधक है।[13] यथार्थ में जो कुछ मन में सोचा गया अथवा सोचकर निश्चित किया जाये, वही विचार है।[14] 'बृहद हिन्दी कोश' ने किसी विषय पर गम्भीरता के साथ सोचना अर्थ किया है।[15] मनोवैज्ञानिकों का मत है कि किसी तत्व (वस्तु) का कोई अभी अंग जो स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है– विचार कहलाता है।[16] लालजी शुक्ला के अनुसार विचार, मन की वह प्रक्रिया है जिसमें हम पुराने पूर्व अनुभवों को, वर्तमान समस्याओं को हल करने के प्रयोग में लाते हैं।[17] अतः चिन्तन–प्रक्रिया द्वारा उपलब्ध तत्व ही विचार कहलाता है। इस प्रकार समस्या, लक्ष्य प्राप्ति या उद्देश्य पूर्ति हेतु किया गया चिन्तन ही वस्तुतः विचार है। यह विचार तत्व नाटकीय उपादानों में अधिक महत्वपूर्ण है। विचार की भाववाचक संज्ञा ही वैचारिकी ही जाती है।

वैचारिकी जितनी महान् और शाश्वत होगी, नाटक उतना ही अधिक प्रभावी, स्थाई और महान् होगी। मोहन राकेश की वैचारिकी विशेष उल्लेखनीय है। उनकी गहन वैचारिक–दृष्टि उनके साहित्य में समाहित है। उनकी चिन्तना में गहराई है, दृष्टि में पैनापन है और आलोच्य विषयों की गहरी छानबीन करने की प्रवृत्ति है। इसीलिए

उन्हें तार्किक और सूक्ष्मद्रष्टा कहा जाता है। उनकी बौद्धिक जागरूकता के सभी कायल थे। उनका साहित्य उनकी लेखकीय ईमानदारी का परिचायक है। अपनी सुदृढ़ वैचारिकी के फलस्वरूप ही वे अपने विचारों, आचरण एवं व्यवहार में भी पर्याप्त मौलिक रहे और नाट्य-शिल्प के प्रयोक्ता कहलाए। उन्होंने नाटक की प्रस्तुति, मंचीय आवश्यकता और वस्तु-विन्यास के अभिनव प्रयोग किए। यह सब उनकी सुदृढ़ वैचारिकी के कारण ही संभव हो सका। विविध नाट्य-प्रयोग उनकी गहन वैचारिकी के परिणाम हैं। प्रखर बौद्धिकता ने उन्हें बार-बार नित-नए प्रयोगों के लिए प्रेरित किया। भारतीय संस्कृति का गहन अनुशीलन करने के कारण ही उनक लेखन में भारतीय व्याप्त है। उनकी भारतीय आरोपित नहीं है, अपितु वह उनके दृढ़ संस्कारों का परिणाम है। उनका समन्वयवादी व्यक्तित्व उनकी वैचारिकी के अनुरूप संवेदनशीलता एवं सूक्ष्म अन्तदृष्टि से परिपूर्ण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *विजय कान्तधरदुबे : साठोत्तरी हिन्दी नाट्क, पृ. 46*
2. *आचार्य भरतमुनि : नाट्यशास्त्र, प्रथम अध्याय, श्लोक, 1/109*
3. *वही, श्लोक 1/110*
4. *वही, श्लोक 1/114*
5. *मुशी प्रेमचन्द्र : साहित्य का उद्देश्य, पृ. 13*
6. *मोहन राकेश : आषाढ़ का एक दिन, पृ. 23*
7. *वही, पृ. 33*
8. *मोहन राकेश : लहरों के राजहंस की भूमिका, पृ. 10.16*
9. *मोहन राकेश : आषाढ़ का एक दिन पृ. 96*
10. *मोहन राकेश : लहरों के राजहंस, पृ. 192*
11. *मोहन राकेश : आधे-अधूरे, पृ. 317*
12. *वही, पृ. 260*
13. *कालिदास : कुमारसम्भव, 5/42*
14. *वामन शिवराम आप्टे : संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ. 929*
15. *कालिप्रसाद तथा अन्य खसंपा.ऋ वृहद् हिन्दी कोश, पृ. 1250*
16. *Dictionary of Pshychology, P. 228*
17. *लालजी शुक्त : सरल मनोविज्ञान, पृ. 228*

माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर का वर्ण संप्रत्यय

डॉ. मनोज कुमार भारी
व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, बॉदीकुई ,दौसा

डॉ. विश्राम मीना
व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, बॉदीकुई, दौसा

shodhshree@gmail.com

शोध सांराश : *गोलवलकर के अनुसार हिंदू समाज का पतन आत्मविस्मृति, जिससे सभी प्रकार की स्वार्थपरायणता और इनके कारण विभिन्न भेद, भेदों से समाज का विघटन हुआ। उनके अनुसार हिंदू राष्ट्र के उत्थान के लिए हिंदू समाज का उत्थान होना आवश्यक है। आत्मग्लानि दूर करने के लिए आत्मबोध जगाना पड़ेगा, स्वार्थपरायणता के स्थान पर निःस्वार्थ भाव का निर्माण करना पड़ेगा। सभी भेदों को भुलाकर एकात्मकता का भाव जाग्रत कर एकात्म, एकरस, समरस हिंदू समाज का निर्माण करना पड़ेगा। गोलवलकर आज के चातुर्वण्य रुप व जन्मतः असमानता के कडे आलोचक रहे। उनके अनुसार 'सवर्णो के मन के क्षुद्र भाव का नाम अस्पृश्यता है जो एक मानसिक विकृति है एवं मानसिक सुधार संस्कारों द्वारा ही संभव हैं। उनको यह स्वीकार्य नहीं था कि वर्णव्यवस्था तथा जातिव्यवस्था के कारण हमारा पतन हुआ और हम पारतंत्र्य में चले गए । जाति भेद कभी भी इसका कारण नहीं रहा।*

संकेताक्षर : *वर्ण संप्रत्यय, हिन्दू राष्ट्र, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, अस्पृश्यता, सर्वोदय समाज, विषमतामूलक चातुर्वण्य जातिव्यवस्था, वर्णभेद, दलित व महादलित।*

राष्ट्र की राजनीति, राष्ट्र का समाज विचार, राष्ट्र की अर्थनीति आदि विषयों सहित दार्शनिक विचारक माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर ने राष्ट्र जीवन के प्रायः सभी पहलुओं पर विचार प्रकट किये। गोलवलकर का जीवन यज्ञ 'यह हिन्दू राष्ट्र है' – मंत्र का विस्तारशः प्रकटीकरण है। ''यह हिन्दू राष्ट्र है और हिन्दू समाज उसका पुत्ररुप समाज है, हिन्दू समाज के उत्थान में राष्ट्रोत्थान है, उसके पतन में राष्ट्र का पतन है''– उनकी राष्ट्रवादी धारणा थी। गोलवलकर के अनुसार हिंदू समाज का पतन आत्मविस्मृति, जिससे सभी प्रकार की स्वार्थपरायणता और इनके कारण विभिन्न भेद, भेदों से समाज का विघटन हुआ।

उनके अनुसार हिंदू राष्ट्र के उत्थान के लिए हिंदू समाज का उत्थान होना आवश्यक है। आत्मग्लानि दूर करने के लिए आत्मबोध जगाना पड़ेगा, स्वार्थपरायणता के स्थान पर निःस्वार्थ भाव का निर्माण करना पड़ेगा। सभी भेदों को भुलाकर एकात्मकता का भाव जाग्रत कर एकात्म, एकरस, समरस हिंदू समाज का निर्माण करना पड़ेगा, इस महान लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जन्म हुआ। इस लक्ष्यप्राप्ति हेतु साधन रुप संघशाखा है, इस पर उनकी एकांतिक श्रद्धा थी। गोलवलकर ने आदर्श समाज की स्थिति, वर्णव्यवस्था, जातिव्यवस्था, अस्पृश्यता, वनवासी बांधवों की स्थिति, समाज धारणा में धर्म का स्थान, समाज को उन्नत दिशा में ले जाने में धर्माचार्यो का योगदान, जातिभेद और राजनीति, भेदों को दूर करने के उपाय, दरिद्रनारायण की उपासना इन विषयों पर अपना चिंतन स्पष्ट शब्दों में समाज के सामने रखा।

आदर्श समाज स्थिति का सपना अनेक तत्वविदों, समाजशास्त्रियों, मनीषियों ने रखा हैं। आधुनिक काल में कार्ल मार्क्स ने समतायुक्त, शोषणमुक्त, शासनविहीन समाज का सपना रखा। महात्मा गांधी ने अहिंसा और सत्य पर आधारित सर्वोदय समाज का सपना देखा। डॉ. अंबेडकर ने स्वातंत्र्य, समता, बंधुता और न्याय पर आधारित समाज रचना का सपना देखा।

गोलवलकर ऐसा कोई काल्पनिक आदर्श समाज का चित्र नहीं रखते। वे कहते हैं कि हमारे यहाँ समाज जीवन के भाव के अनुसार ही युग की कल्पना रखी गई है- सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग। इनमें से प्रत्येक में समाज की विशेष स्थिति होती है। सतयुग में सब समान थे, संपत्ति सबकी थी, जिसमें से आवश्यकतानुसार लेकर सब सुख का जीवन व्यतीत करते थे। धर्म चारों अंगों से समाज में व्याप्त था .... मनुष्य 'नायं हन्ति न हन्यते' के भाव के अनुसार पूर्ण शांति व्यवहार करता है, यह सतयुग की कल्पना है।[1]

गोलवलकर जन्मतः असमानता को विषमता नहीं मानते। वे कहते हैं कि एक ही चैतन्य का यह विविधतापूर्ण आविष्कार है। उनके अनुसार – ''आत्मा का आधार ही वास्तविक आधार है, क्योंकि आत्मा सम है, सब में एक ही जैसी समान रुप से अभिव्यक्त है। सब का एक ही चैतन्य है, इस पूर्णता के आधार पर ही प्रेमपूर्ण व्यवहार, व्यक्ति को परमात्मा का अंग तथा विश्व को परमेश्वर का व्यक्त रुप मानकर विशुद्ध प्रेम यही वह अवस्था है।"[2] गोलवलकर समरस सामाजिक जीवन का एक श्रेष्ठ दार्शनिक आधार प्रस्तुत करते हैं। जो असमानता उत्पन्न होती है उसका भेद मानना, विषमता मानना गलत है, इसको और अधिक स्पष्ट करते हुए वृक्ष के दृष्टांत से वे कहते हैं – एक वृक्ष लीजिए, जिसमे शाखाएँ, पत्तियाँ, फूल और फल सभी कुछ एक दूसरे से भिन्न रहते हैं किन्तु हम जानते है कि ये सब दिखाने वाली विविधताएँ केवल उस वृक्ष की भाँति-भाँति की अभिव्यक्तियाँ हैं। यही बात हमारे सामाजिक जीवन की विविधताओं के संबंध में भी है, जो इन सहस्रों वर्षो में विकसित हुई हैं।[3] सब प्रकार की असमानता, शोषण, अन्याय कलियुग की पहचान हैं। ''आर्थिक, राजनीतिक, वैचारिक आदि सभी आधारों पर लोग संघर्ष के लिए तैयारी कर रहे हैं। आत्मौपम्य बुद्धि कम हो गई है। धर्म की कमी के कारण उत्पन्न आज दुःख, दैन्य और अशांति से परिपूर्ण जीवन ही रह जाता हैं।''[4]

गोलवलकर के संदर्भ में जानबूझकर एक गलत अवधारणा फैलाई गई है कि गोलवलकर विषमतामूलक चातुर्वर्ण्य के पक्षधर थे। गोलवलकर का कहना है कि 'समाज एक जीवित वस्तु है, मानव-शरीर रचना जीवन के विकास का सर्वोत्तम रुप है और इसलिए यदि किसी जीवमान स्वरुप की रचना करनी हो, तो वह उसके ही अनुरुप होनी चाहिए। समाज रचना भी यदि जीवमान मानव के अनुरुप ही की, तो वह निसर्ग के अनुकूल होने के कारण अधिक उपयुक्त होगी।'[5] चातुर्वर्ण्य के आज के भेदभावजनक रुप के भी वे कडे आलोचक रहे। गोलवलकर के अनुसार – "अपने मूल रुप में उस समाजव्यवस्था में घटकों के मध्य बड़े-छोटे अथवा ऊँच-नीच की भावना का कोई स्थान नहीं था। समाज के संबंध में यह भावना रखी गई कि वह उस सर्व शक्तिमान परमात्मा का चातुर्दिक अभिव्यक्त स्वरुप है जो सभी के लिए अपनी-अपनी क्षमता एवं पद्धतियों से पूजनीय है। यदि ब्राह्मण विद्यादान के द्वारा बड़ा हो जाता है, तो शत्रुओं का नाश करने से क्षत्रिय भी समान प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है। वैश्य भी कम महत्व का नहीं जो कृषि और व्यापार के द्वारा समाज को सुस्थिर रखता है अथवा शूद्र भी कम नहीं है जो अपने कलाकौशल से समाज की सेवा करता है। इन सबके परस्पर एक दूसरे पर निर्भर रहने तथा साथ-साथ परस्पर के तादात्मय भाव से उस पूर्वकालीन समाजव्यवस्था का निर्माण हुआ था।"[6] उनके अनुसार एकात्मकता का साक्षात्कार करें, सेतु हिमालय सारे राष्ट्र को महान, श्रेष्ठ, दैवी चैतन्यमय व्यक्तित्व के रुप में देखें और उसके अंग होने के नाते अपने को एक समझें, सब अंगों की पवित्रता पर विश्वास करें।"[7] वे कहते है – मानवी समाज जीवन में निसर्गतः जो असमानता होती है उसे हावी नहीं होने देना यही बुद्धिमानी है। इस असमानता की व्यवसाय निश्चिती, उदरभरण के साधन की निश्चिती, परस्पर सहयोग द्वारा दूर की जा सकती है। 'मानव प्राणी को उच्चतम सामंजस्य में रहने की योग्यता प्राप्त' करनी पड़ेगी।' यह एक लंगड़े और अंधे के सहयोग के समान है। लंगडे आदमी को टांग मिली है और अंधे को ऑख। सहयोग की भावना असमानता की कटुता दूर कर देती है। व्यक्ति और समाज के संबंध का हमारा दृष्टिकोण संघर्ष का न होकर सभी व्यक्तियों में उस एक सत्य का विराजमान होने के बोध से उत्पन्न सामंजस्य और सहयोग का है।"[8]

गोलवलकर ने 'वर्णव्यवस्था' और 'जातिव्यवस्था' ऐसे शब्द प्रयोग किए हैं। 'वर्णभेद' और 'जातिभेद' ये आज के शब्द हैं। आज इसका स्वरुप 'अधोमुखी विपर्यस्त है। गोलवलकर को यह स्वीकार्य नहीं है कि वर्णव्यवस्था तथा जातिव्यवस्था के कारण हमारा पतन हुआ और हम पारतंत्र्य में चले गए । यह कथन 'इतिहास शुद्ध' नहीं हैं। गोलवलकर का तर्क इस प्रकार है –"गत सहस्र वर्षो में जब हमारा राष्ट्र विदेशियों के आक्रमण का शिकार बना, एक भी उदाहरण ऐसा नहीं मिलता, जिससे यह सिद्ध हो सके कि

हमारे राष्ट्र की जिस फूट ने विदेशी आक्रांताओं को सहायता की उसके मूल में यह जातिभेद था। मुहम्मद गोरी के द्वारा दिल्ली के हिंदू राजा पृथ्वीराज की पराजय का कारण जयचंद था, जो उसका जातिबंधु था। जिस व्यक्ति ने जंगलों में राणा प्रताप का पीछा किया, वह मानसिंह भी उनकी जाति का ही व्यक्ति था। शिवाजी महाराज का भी विरोध उनकी जाति के लोगों द्वारा हुआ। जाति भेद कभी भी इसका कारण नहीं रहा।" [9] हमारे लोगों ने उन भीषण आक्रमणों का दृढ़ता एवं वीरता से सतत एक हजार वर्ष तक सामना किया और उसके द्वारा विनष्ट होने के स्थान पर अंत में हम शत्रु की समस्त शक्तियों को कुचल कर उसे पूर्ण रुप से नष्ट करने में सफल हुए।"[10]

इसका यह अर्थ निकालना कि आज जिस अवस्था में वर्णभेद, जातिभेद है उसे बनाए रखना चाहिए, समाज के लिए आवश्यक है, बिल्कुल गलत होगा। गोलवलकर की यह अवधारणा नहीं थी। आज तो केवल विकृति ही बची है। इसलिए उसे समाप्त करना ही उचित होगा। गोलवलकर के शब्दों में, "निस्संदेह आज जाति-व्यवस्था सभी प्रकार से भ्रष्ट हो गई है। मैंने एक बार किसी से कहा था कि नया मकान बनाने के लिए पुराना मकान कई बार तोड़ना पड़ता है। आज जो विकृत बनी हुई समाज रचना है उसको यहाँ से वहाँ तक तोड़-मरोड़ कर सारा ढेर लगा देंगे। उसमें से आगे चलकर जो विशुद्ध रुप बनेगा सो बनेगा। आज तो सब का एकरस ऐसा समूह बना कर, अपने विशुद्ध राष्ट्रीयत्व का संपूर्ण स्मरण हृदय में रखकर, राष्ट्र के नित्य चैतन्यमय व सूत्रबद्ध सामर्थ्य की आकांक्षा अंतःकरण में जागृत रखनेवाला समाज खड़ा करना है।"[11] अस्पृश्यता को परिभाषित करते समय गोलवलकर का कथन है- 'सवर्णो के मन के क्षुद्र भाव का नाम अस्पृश्यता है।" दूसरे शब्दों में अस्पृश्यता एक मानसिक विकृति है। मानसिक सुधार संस्कारों द्वारा ही संभव हैं। संस्कार एकात्मता का, एकरसता का, भ्रातृभाव का, सेवाभाव का निरंतर करना चाहिए। दुर्भाग्यवश आज हरिजन (दलित) के नाम पर राजनीति करने वाले संकीर्ण मनोवृत्ति, ध्येय के स्वार्थी राजनीतिक दल/समूह अस्तित्व में आ गए हैं। वे दलितों को अपनी सत्ता का माध्यम बनाए रखना चाहते है "दलित व महादलित" जैसे शब्द इसी स्वार्थी प्रवृत्ति के परिचायक है।[12]

अस्पृश्यता की रुढी को उन्होंने तीन खेमों में बाँटा। एक है सवर्ण समाज जो अस्पृश्यों को अस्पृश्य कहता है। दूसरा है अस्पृश्यता का शिकार बना अस्पृश्य समाज जो खुद को अस्पृश्य समझता है और तीसरा है धार्माचार्यो का वर्ग जो इस रुढ़ी को धार्मिक मान्यता प्रदान करता है। उनके अनुसार जनसामान्य के मन में घर किए बैठी इस घातक परंपरा को निकालने का काम धर्माचार्यो का हैं। गोलवलकर ने इन तीनों मोर्चो पर ऐतिहासिक कार्य करके समाज में समरसता लाने का प्रयास किया। विश्व हिंदू परिषद के माध्यम से गोलवलकर ने अस्पृश्यता का कलंक मिटाने का प्रयास किया। इस संदर्भ में प्रयाग (1966) उड्डपी (1969) सम्मेलन का काफी महत्व है। प्रयाग के सम्मेलन में परधर्म में गए हिंदुओं के घर वापसी का प्रस्ताव पारित किया गया और "न हिन्दू पतितो भवेत्" की उद्घोषणा की गई। उड्डपी का सम्मेलन 'अस्पृश्यता धर्म सम्मत नहीं- 'हिंदवः सोदराः सर्वे' उद्घोषणा से विख्यात है। उड्डपी सम्मेलन में सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पारित कर संपूर्ण हिंदू जगत् का आह्वान किया गया कि वे श्रध्देय व धर्मगुरुओं के निर्देशानुसार अपने समस्त धार्मिक व सामाजिक अनुष्ठानों से अस्पृश्यता को निकाल बाहर करें। समस्त हिन्दू-समाज को अविभाज्य एकात्मकता के सूत्र में पिरोकर संगठित करने एंव स्पृश्य-अस्पृश्य की भावना व प्रवृत्ति से प्रेरित विघटन को रोकने के उद्देश्य की प्राप्ति हेतु विश्व भर के हिन्दूओं को अपने पारस्परिक व्यवहार एकात्मकता एंव समानता की भावना को बरकरार रखना चाहिए।

उनके अनुसार कुछ बातों पर हमें विशेष ध्यान देना होगा। अस्पृश्यता केवल अस्पृश्यो का ही प्रश्न नहीं है। कौन कहाँ जन्म लेता है यह किसी के वश की बात नहीं है। अस्पृश्यता, सवर्णो के संकुचित मनोभावना का नामकरण है। अतएव अस्पृश्यता समाप्त करने का तात्पर्य उस संकुचित भावना को समाप्त करना है। जो अस्पृश्यता मानते हैं वे धर्माचार्यो को मानते हैं, अतएव धर्माचार्यो के माध्यम से इस प्रश्न को सुलझाया जा सकता है। उनके अनुसार अस्पृश्य बंधुओं को खुद को अस्पृश्य या हीन-दीन नहीं समझना चाहिए, संघर्ष या आंदोलन से अस्पृश्यता समाप्त नहीं होगी, आंदोलन तथा संघर्ष से केवल पृथकता ही बढ़ेगी, एकात्मकता, समरसता निमार्ण नहीं होगी। उनके अनुसार अस्पृश्य जातियों को मन-मस्तिष्क संबंधी गुणों में आनुवांशिक रुप से अक्षम मानना तथ्यों का विडंबना पूर्ण उपहास है। इतिहास साक्षी है कि गत एक हजार वर्षो के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षो में ये तथाकथित अस्पृश्य ही अग्रणी रहे हैं। महाराणा

प्रताप, गुरु गोविंदसिंह और छत्रपति शिवाजी की सेनाओं के सर्वाधिक पराक्रमी कट्टर योद्धाओं में यही लोग रहें हैं। दिल्ली तथा बीजापुर की विद्रोही शक्तियों के विरूद्ध छत्रपति शिवाजी के कुछ अति महत्त्वपूर्ण युद्धों में हमारे इन्हीं शूरवीर और साहसी बंधुओं के मानव आपूर्ति एवं नेतृत्व प्रदान किया था।[13] अपने आध्यात्मिक जगत् में रैदास, चोखामेला जैसे बंधुओं का योगदान भी अतीव श्रेष्ठ है। उनका स्पष्ट कथन यह था कि अस्पृश्यता के मूलाधार को पहचान कर तत्संबंधी उपाय-योजना करने से ही अस्पृश्यता का समूलोच्चाटन किया जा सकेगा।

यद्यपि गोलवलकर समाज द्वारा पीछे धकेल दिए गए बन्धुओं के आर्थिक, राजनीतिक उत्थान को अत्यावश्यक मानते थे किन्तु इस संबंध में उनका सुस्पष्ट अभिमत यह था कि यह कार्य शासकीय योजनाओं अथवा राज्य-शक्ति या राजनीतिक दलों द्वारा कदापि संभव नहीं है। इसका कारण यह है कि इन माध्यमों के द्वारा यह तो संभव है कि अपने समाज का अस्पृश्य कहा जाने वाला यह वर्ग आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से शेष समाज के समकक्ष आ जाए किन्तु उससे तथाकथित स्पृश्य और अस्पृश्य कहे जाने वाले समाज-बन्धुओं के मध्य विद्यमान भावनात्मक खाई को घटाया नहीं जा सकेगा। उलटे वह उनके मध्य विघटन और अलगाव की ही वृद्धि करेगा। अतः उनका कहना था कि वास्तविक ह्रदय परिवर्तन एवं सच्ची एकात्मकता प्रस्थापित करने हेतु स्वतः स्फूर्त श्रम-साध्य कार्य को दैनन्दिन जीवन के व्यवहार में परिलक्षित करना होगा तथा उसके लिए आध्यात्मिक, नैतिक एवं सामाजिक स्तर पर सुनियोजित प्रयास करने होंगे। अस्पृश्य कहे जाने वाले समाज-बन्धुओं का जातीय आधार पर आरक्षण देने की व्यवस्था के संबंध में रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए गोलवलकर का मत था कि सुदीर्घ काल तक ऐसा आरक्षण संबंधित जन-समाज के लिए ही अहितकर होता है क्योंकि यह प्रक्रिया उनमें स्वावलम्बनहीनता बढ़ा कर उन्हें परावलम्बी बना देता है। इसके साथ ही इससे संबंधित वर्ग में निहित स्वार्थ का दुर्गुण बढ़ कर वह अपने-आपको देश के शेष जन-समाज से पृथक समझने की घातक दुर्भावना से ग्रस्त हो जाता है। अस्पृश्यता निवारण के लिए गोलवलकर रचनात्मक और संस्कारयुक्त कार्य-योजना के पक्षधर थे। उन्हें राजनीतिक दलों और राजनेताओं की आन्दोलनात्मक कार्यपद्धति कतई स्वीकार नहीं थीं। उनका सुनिश्चित मत था कि उक्त कार्यपद्धति का उद्देश्य अस्पृश्यता-निवारण न होकर प्रायः अपना निहित राजनीतिक स्वार्थ सिद्ध करना होता है। दूसरे, उससे समाज में विघटनकारी प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है।

समाज में चातुर्वर्ण्य, जातिव्यवस्था, अस्पृश्यता का जो चित्र दिखता है वह सामाजिक समरसता के लिए अत्यंत बाधक है। गोलवलकर इस सामाजिक रोग का जड़ से निर्मूलन चाहते थे। चातुर्वर्ण्य की वे शास्त्रीय चिकित्सा करते हैं। आज उसकी कोई उपयुक्तता नही रही, यह भी बताते हैं। आज सर्व प्राथमिक आवश्यकता समाज में एकात्मक भाव जगाने की है। इसी भाव-जागरण से समाज में समरसता निर्माण होगी ऐसा उनका विश्वास था। गोलवलकर का मार्ग अन्य सभी मार्गों से अलग था। जो लोग सामाजिक संघर्ष के रास्ते पर चल रहे थे, या जो लोग हरिजन उद्धार के रास्ते पर चल रहे थे उन्होंने या तो गोलवलकर को समझा नही या जानबूझकर उनके बारे में गलत-फहमियाँ निर्माण की। इतिहास जब निरपेक्ष भाव से जाति निर्मूलन अभियान का लेखा-जोखा लेगा तब उसे यह मान्य करना पड़ेगा कि गोलवलकर की भूमिका समाज के सार्वत्रिक और सार्वकालिक कल्याण की थी।

सामाजिक संरचना की उपादेयता को स्पष्ट करने के लिए गोलवलकर ने ऐतिहासिक सच्चाई को समाज के सम्मुख रखा और यह घोषणा की कि संसार के लोगों ने जो प्रयोग किए हैं, वे भी धीरे-धीरे व्यक्ति-स्वातंत्र्य सामूहिकीकरण के सामंजस्य की अनिवार्यता अनुभव करने लगे हैं। अतः अखिल मानव समाज को इस संरचना का पालन करना होगा। वैज्ञानिक आधार पर इससे उत्कृष्ट सामंजस्य की व्यवस्था और कोई नहीं हो सकती। अपने राष्ट्र के मंत्रद्रष्टा मनीषियों ने इसी संरचना की व्यवस्था और व्याख्या की थी। इस संरचना में ऊँच-नीच, भेदभाव अथवा पृथकता के लिए कहीं भी स्थान नहीं है। पृथकता की भावना को हमें दूर करना होगा। इस प्रकार गोलवलकर का चिंतन हमेशा समग्र रहा एवं चिंतन का मूलाधार शाश्वत, सनातन सत्य एवं अध्यात्म विचार रहा। यद्यपि उनका चिंतन हिन्दू समाज के संदर्भ में चलता रहा, फिर भी उसमें वैश्विकता थी। मानव जाति के व्यापक संदर्भ में वे अपने विचार प्रकट करते थे। विचारों का प्रकटीकरण अनुभूति के आधार पर होने के कारण खोखले शब्द, शुष्क तर्कवाद, प्रतिपक्ष के खण्डन में आनन्द यह उनकी विशेषता कभी नहीं रही। सत्य को समाज के सामने रखते समय वे हमेशा निर्भय रहे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्री गुरुजी समग्र खण्ड 2(सुरुचि प्रकाशन, केशवकुंज, झंडेवाला, नई दिल्ली, 2004 ; पृष्ठ 95
2. पूर्वोक्त, पृष्ठ 98
3. पूर्वोक्त, पृष्ठ 96
4. पूर्वोक्त, पृष्ठ 95
5. पूर्वोक्त, पृष्ठ 125
6. गोलवलकर, माधवराव सदाशिवराव : विचार नवनीत (ज्ञानगंगा प्रकाशन, भारती भवन, जयपुर, संवत् 2053 ; पृष्ठ 109
7. श्री गुरुजी समग्र खण्ड 2(सुरुचि प्रकाशन, केशवकुंज, झंडेवाला, नई दिल्ली, 2004 ; पृष्ठ 102
8. गोलवलकर, माधवराव सदाशिवराव : विचार नवनीत ; ज्ञानगंगा प्रकाशन, भारती भवन, जयपुर, संवत् 2053 ; पृष्ठ 26-27
9. श्री गुरुजी समग्र खण्ड 11(सुरुचि प्रकाशन, केशवकुंज, झंडेवाला,नई दिल्ली, 2004 ; पृष्ठ 116
10. पूर्वोक्त, पृष्ठ 116-117
11. श्री गुरुजी समग्र खण्ड 4; सुरुचि प्रकाशन, केशवकुंज, झंडेवाला,नई दिल्ली, 2004 ; पृष्ठ 32-33
12. श्री गुरुजी समग्र खण्ड 11: सुरुचि प्रकाशन, केशवकुंज, झंडेवाला,नई दिल्ली, 2004 ; पृष्ठ 337-339
13. पूर्वोक्त, पृष्ठ 341

 ISSN 2277-5587

राजस्थान मे जनजातिय मौताणा लोक प्रथा; एक मानवशास्त्रीय अध्ययन

केशव पारीक
शोधार्थी, भारतीय मानवविज्ञान सर्वेक्षण, पश्चिमी क्षेत्रीय केन्द्र, उदयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सांराश : *प्रस्तुत शोध जयपुर व इसके आस पास के क्षेत्र मे जनजातियो कि मौताणा लोक प्रथा पर किया गया है। प्राथमिक आंकड़ों का संग्रहण जयपुर से ही किया गया व द्वितीय आंकडो का संग्रहण सर्वेक्षण के पुस्तकालय से किया गया है। अनुसंधान के उद्देश्य जनजातिय मौताणा लोक प्रथा को पहचानना, मौताणा लोक प्रथा के जरिये सामाजिक न्याय एवं जनजातिय कानून को समझना, मौताणा लोक प्रथा के आदिम स्वरुप का वर्तमान स्वरुप के साथ तुलनात्मक अध्ययन करना थे। अनुसंधान प्रविधियो में अवलोकन, अनुसूची, साक्षात्कार लिये गये। जनजातिय समाज में अप्राकृतिक मृत्यु या प्राकृतिक मृत्यु हो जाने पर मृतक के घर या संबधी द्वारा ली जाने वाली क्षतिपूर्ति राशि या जो नुकसान हुआ है उसकी भरपाई को ही मौताणा प्रथा या मौताणा लेना कहा जाता है। बदलते परिवेश व आर्थिक आधुनिकीकरण के फलस्वरुप मौताणा लोक प्रथा में भी परिवर्तन आया है तथा इसमे नये आयामो का प्रवेश हुआ है।*

संकेताक्षर : *जनजाति, प्रथाये, चढोंतरा, सामाजिक नियन्त्रण, सामाजिक मध्यस्थ, प्रथाये ।*

मानव विज्ञान अपने युग का सर्वोच्च एवं सूक्ष्म मानववादी विज्ञान बन चुका है जो विभिन्न संस्कृतियो के तुलनात्मक अध्ययन के साथ साथ मानव समाज की विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर भी प्रकाश डालता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 342 के अनुसार राष्ट्रपति किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के सबंध में और जहां वह राज्य है वहां उसके राज्यपाल से परामर्श करने के पश्चात् लोक अधिसूचना द्वारा उन जनजातियो या जनजाति समुदायो अथवा जनजातियो या जनजाति समुदायो के भागो या उनमे यूथो को विनिर्दिष्ट कर सकेगा जिन्हे इस संविधान के प्रयोजनो के लिए यथा स्थिति उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के संबंध मे अनुसूचित जनजाति समझा जाएगा। भारत मे अनुसूचित जनजाति की संख्या जनगणना 2011 के अनुसार 10.45 करोड है। प्रतिशत के आधार पर भारत की सम्पूर्ण जनसख्या का 8.6 प्रतिशत है। इस प्रतिशतता मे पुरुष अनुसूचित जनजाति का प्रतिशत 5. 25 प्रतिशत है। स्त्री अनुसूचित जनजाति का प्रतिशत 5.20 प्रतिशत है ।जनगणना 2011 के आधार पर लिगांनुपात 990 है जो भारत के लगांनुपात 943 से काफी ज्यादा है। अनुसूचित जनजाति की साक्षरता दर 59 प्रतिशत है। इसमे पुरुष जनजाति का प्रतिशत 68.5 प्रतिशत है। स्त्री जनजाति का प्रतिशत 49.4 प्रतिशत है। जनजाति विभाग की रिर्पोट के अनुसार 700 से ज्यादा जनजातिया भारत मे उपस्थित है। जिसमे पंजाब ,हरियाणा,पुडुचेरी मे जनजातिय जनसंख्या शून्य है तो मध्यप्रदेश मे इनकी सख्या सर्वाधिक है ।राजस्थान मे कुल 9238534 अनुसूचित जनजाति हैं। जिसमे 8693123 ग्रामीण व 545411 शहरी भाग मे निवास करती है। इस जनसख्या मे पुरुष जनजाति 4742943 व महिला जनजाति 4495591 है ।राजस्थान अनुसूचित जनजाति का लिंगानुपात 948 है ।जो भारत के अनु. जनजाति लिगांनुपात 990 से कम है ।सम्पूर्ण भारत मे मीना जनजाति की जनसख्या 3800002 है जो मुख्यतः राजस्थान व मध्यप्रदेश मे फैली हुई है। सम्पूर्ण भारत मे 700 से ज्यादा जनजातियॉ विधमान है। अकेले राजस्थान मे अनुसूचित जनजाति 12 प्रकार की पाई जाती है। जिनमे 1. भील 2. भील मीना 3. डामोर 4. धानका 5. गरासिया 6. कथौडी 7. कोकना 8. कोलीधोर या कोल्चा या

कोल्घा 9. मीना 10. नायकडा या नायका 11. पटेलिया 12. सहरिया है। राजस्थान मे जनजातियो का घनत्व दक्षिणी भाग मे सर्वाधिक है जिनमे उदयपुर, डूंगरपुर,बांसवाडा, प्रतापगढ इत्यादि जिले आते है। इसके अलावा जनजातियो का घनत्व पूर्वी दक्षिण पूर्वी भाग मे भी पाया जाता है।प्रत्येक जनजाति अपने आप मे विशिष्ट होती है। जनजातियो का रहन सहन, खानपान, आदतें, भाषा, प्रथाये, सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक के तत्व, वेशभूषा, व्यवहार पद्धति,भोजन प्रथा, विवाह, नातेदारी संबंध, राजनीतिक तत्व, कानून व व्यवस्था विशिष्ट होते है। उपरोक्त सभी तत्वो का महत्व जनजातियो मे होता है। जनजातियों में अनेक प्रथाये विकसित है । इन प्रथाओं को समय समय पर अलग अलग माध्यम से लोगो तक पहुचायां जाता है। इस शोध पत्र से राजस्थानी जनजातियों मे प्रचलित मौताणा लोक प्रथा के बारे में बताया गया है।

शोध के उद्देश्य

1 जनजातिय मौताणा लोक प्रथा को पहचानना

2 मौताणा लोक प्रथा के जरिये सामाजिक न्याय एवं जनजातिय कानून को समझना

3 मौताणा लोक प्रथा के आदिम स्वरुप का वर्तमान स्वरुप के साथ तुलनात्मक अध्ययन करना

4 इस प्रथा के आर्थिक स्वरुप को जानना

प्रविधियों का चयन

मेरे अध्ययन की प्रकृति एवं प्रश्नों के आधार पर आंकड़ें संकलन हेतु मैंने निम्न प्रविधियों का संकलन किया है– अवलोकन, अनुसूची, साक्षात्कार, ज्ञान की प्राप्ति या किसी समस्या के उपयुक्त समाधान के लिये संबंधित घटनाओं एवं परिस्थितियों का वास्तविक अध्ययन अत्यंत आवश्यक होता है। प्रत्येक अध्ययन एक संपूर्ण कार्य प्रणाली से संबंधित होता है। आंकड़ों का संकलन सामाजिक अनुसंधान में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

शोध क्षेत्र

जयपुर जिला राजस्थान के पूर्वी भाग में 26°23' से 27°51' उत्तरी अक्षांश एवं 74°55' से 76° से 50' पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। जयपुर के पूर्व व उत्तर का क्षेत्र अरावली श्रेणियों से सुसज्जित है। जिले की समुद्रतल से ऊँचाई 122 से 183 मीटर है। जिले का कुल भौगोलिक क्षेत्र 11,117.8 वर्ग किलोमीटर है।जयपुर की स्थापना कच्छवाहा वंश के महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय द्वारा 18 नवम्बर, 1727 में की गई थी। विषय चयन तथा उसके अनुरुप अध्ययन तकनीक का चयन कर लेने के उपरान्त अध्ययनकर्ता के समक्ष सबसे बड़ी समस्या अध्ययन स्थल के चयन की रह जाती है। इस लिए मैने अध्ययन के लिए जयपुर व इसके आसपास के क्षेत्र को चुना।

मौताणा लोक प्रथा का परिचय

समाजिक न्याय शब्द में दो मुख्य आधारी शब्द उपस्थित है। प्रथम, समाज अर्थात लोगो का समूह या मानव का समूह जबकि न्याय से तात्पर्य सामाजिक संरचना को नियत्रित रखने की प्रविधि से लगाया जा सकता है। अर्थात सम्पूर्ण रुप से हम कह सकते है कि सामाजिक न्याय एक ऐसी प्रकिया या प्रविधि है जिसमे सामाजिक सरंचना के नियत्रण के लिए प्रयुक्त की जाने वाली प्रकिया सम्मिलित होती है। इन सभी न्यायिक व्यवस्थाओ का कोई लिखित सग्रंह नही होता। यह प्रथाये जनजातिय सास्कृतिक तत्वो मे अर्न्तनिहित होती है जिसे एक पीढी दूसरी पीढी को समाजीकरण की प्रकिया के दौरान स्थानान्तरित करती है। सभी जनजातिय प्रथाओ का स्थानान्तरण लगभग इसी प्रकार से सम्पन्न होता है । कई बार प्रथाये अपना मूल स्वरुप को भी इस स्थानान्तरण के दौरान खो देती है। इन प्रथाओ का स्वरुप समय के साथ आधुनिकीकरण, शहरीकरण, सस्कृतिकरण, स्थानीयकरण जैसी अनेक प्रकियाओ के कारण बदल जाता है। मूल स्वरुप के बारे मे अनेक दन्तकथाये सुनाई पडती है।मौताणा लोक प्रथा भी जनजातियो की लोक प्रथा है। यह लोक प्रथा इसलिए सुनाई पडती है,क्योकि यह प्रथा सभी जगह व्याप्त नही है, दूसरा इसका जनजातिय सबंध होने के कारण इसे हम लोक प्रथा कह सकते है। इस प्रथा का मूल लक्ष्य सामाजिक न्याय करना है। इससे सामाजिक व्यवस्था का मूल स्वरुप बना रहता है। यह प्रथा सामाजिक नियन्त्रण के लिए बनाई गयी थी।

मौताणा लोक प्रथाः उत्पति एंव आधार

जनजातिय समाज मे अप्राकृतिक मृत्यु या मृत्य हो जाने पर मृतक के घर या संबधी द्वारा ली जाने वाली क्षतिपूर्ति राशि या जो नुकसान हुआ है उसकी भरपाई को ही मौताणा प्रथा या मौताणा लेना भी कहा जाता है। इस प्रथा की उत्पति को देखे तो ऐसा कहा जाता है कि आदिम समय मे

आदिम सामाजिक व्यवस्था पाई जाती थी । इस समाज में कोई शास्त्रीय कानून व्यवस्था नही पाई जाती थी। न्याय के उद्देश्य की पूर्ति के लिए समाज के सभी सदस्य एक स्थान पर बैठकर आपस में मिल जुलकर पारम्परिक या जनजातिय नियमो को आधार बनाकर अपराध को तय करते है तथा दण्ड को सुनिश्चित किया जाता है। इन सभी प्रकियाओं में समाज के मुखिया का विशिष्ट स्थान होता है। यह मध्यस्थ का कार्य भी करता है और पंरम्परा निर्वाह का कार्य भी करता है। यह व्यवस्था पीडित परिवार को हानि स्वरुप मुआवजे की रकम दिलाने मे मदद करती है। उपरोक्त परिभाषा में अप्राकृतिक मृत्यु पर राशि प्रदान करने की बात कही गयी है परन्तु धीरे धीरे इस लोक प्रथा का आधार स्त्री या पुरुष की प्राकृतिक या अप्राकृतिक मृत्यु, पालतु पशु या पक्षी की मृत्यु, वाहन दुर्घटना या बिजली गिरने से मृत्यु, जीव जन्तु के काटने से मृत्यु इत्यादि अनेक आधार मौताणा के हो सकते है। कई बार तो प्राकृतिक मृत्यु को अप्राकृतिक मानकर मौताणा प्राप्त किया जाता है। यहा हम कह सकते है कि मौताणा के अनेक आधार हो सकते है। जनजातिय मौताणा लोक प्रथा का मूल लक्ष्य यह है कि जनजातिय समुदाय द्वारा पीडित पक्ष को आर्थिक सहायता प्रदान करें तथा अपराधी को कठोर दण्ड दिया जाए जिससे उसे गलती का अहसास हो एवं जनजातिय सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखा जाए तथा जनजातिय स्वच्छ परम्परा को विकसित किया जाए।

मौताणा प्रथा में आदिम व आधुनिक परिवर्तन

इस प्रथा के आदिम रुप को जनजातिय सामाजिक स्वरुप के आधार पर ही समझा जा सकता है। परंम्परागत रुप से इस प्रथा मे अप्राकृतिक विभिन्न रुप से हुई मृत्यु को कारण माना जाता है। यह मृत्यु मानव और पशु दोनो में से किसी की भी हो सकती है। कई बार ये अनजाने मे हुआ कार्य होता है तो कभी ये जानबूझकर किया गया कार्य या हत्या भी हो सकती है। सरल समाज हो या वर्तमान समाज दोनों में ही इस कार्य को अपराध माना जाता है। जनजातिय समाज में किसी प्रकार कि दण्ड प्रकिया का प्रावधान नही होता है, इस हेतु इस समाज में अपराध को कम करने के लिए या नियंन्त्रित करने के लिए समुदाय के वृद्वजनो का एक समूह न्याय व्यवस्था को संभालता है। इनका चुनाव वरिष्ठता के आधार पर किया जाता है। यह समूह निर्णय लेने और मध्यस्थता कराने का कार्य करता है। सरल समाजो मे इनका निर्णय सर्वमान्य होता है। वास्तव मे यह प्रथा इन्ही के इर्द गिर्द चलायमान होती है। इस समूह में पॉच से सात लोग होते है। इनमे सबसे बुजुर्ग इनका मुखिया होता है। इस प्रथा कि बात करे तो घटना होने के बाद हर्जाने को तय किया जाता है। यह कार्य मुखिया समूह द्वारा किया जाता है। इसमे धन,जमीन,पशु या अनाज को हर्जाने के रुप में तय किया जाता है। इस दौरान यदि दूसरा पक्ष किसी भी प्रकार से हर्जाना देने मे असक्षम हो तो उस पक्ष के सहगोत्रीय लोगो से यह राशी प्राप्त की जाती है। यदि यह भी यह राशी ना दे तो या किसी प्रकार का विवाद पैदा करे तो समाज के लोग जो कि उस पीडित पक्ष कि ओर से है एक कार्य करते है जिसे चढोंतरा कहा जाता है, इसे हमला करना भी कहते है। इसमें समाज के लोग आरोपी पक्ष के लोगो को घेर कर खडें हो जाते है तथा उन पर दबाव डालते है। इस कार्य में कई बार समाज के लोगो को समाज से कुछ समय के लिए दूर भी जाना पड जाता है।सरल समाजो का यह कार्य बडा विचित्र है क्योंकि इसमें पीडित पक्ष को अपराध तय करने का पूरा मौका दिया जाता है जबकि आरोपी पक्ष को बचाव का न तो मौका दिया जाता है न ही उसकी किसी भी प्रकार कि कोई बात सुनी जाती है। दोष निवारण का कोई भी मौका दूसरे पक्ष को नही दिया जाता है।

बदलते परिवेश व आर्थिक आधुनिकीकरण के फलस्वरुप मौताणा लोक प्रथा में भी परिवर्तन आया है तथा इसमे नये आयामो का प्रवेश हुआ है । अब मौताणा में एकमुश्त राशि प्राप्त की जाती है तथा इस धनराशी को तुरन्त से तुरन्त प्राप्त करने के लिए कई प्रकार के असंवैधानिक कार्य किए जाते है।इसको हम वह प्रकिया भी बोल सकते है जिसमें अनौपचारिक दण्ड व्यवस्था अपनाई जाती है। मौताणा लोक प्रथा में यह सुनिश्चित नही है कि धनराशी कितनी होगी। यह धनराशी कभी कुछ हजारो में तो कभी ये लाखो रुपयों तक भी पहुँच जाती है। आजकल इस कार्य में कई सामाजिक मध्यस्थों का समावेश भी हो गया है। यही पीडित पक्ष की और से आरोपी पक्ष से राशि प्राप्त करता है। आर्थिक लाभ को देखते हुए वर्तमान में इसमे मध्यस्थों कि संख्या बहुत ज्यादा हो गयी है। अब पीडित पक्ष तक राशि इनसे होकर गुजरती है। यहा सीधे सीधे दो नुकसान है। पहला पीडित पक्ष को मुआवजे की राशि कम मिलती है व दूसरा आरोपी पक्ष को ज्यादा राशि चुकानी पड़ती है। यहा सबसे ज्यादा लाभ बिचोलियो का होता है। यहा एक बात और देखी गयी कि यदि आरोपी पक्ष आर्थिक रुप से

कमजोर हो तो उसके साथ बहुत ही बुरा बर्ताव किया जाता है । आरोपी पक्ष पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिये जाते है। यहाँ तक कि उसे गांव से भी निकाल दिया जाता है।

इस प्रथा से इन लोगो का जीवन दुष्कर हो जाता है। इन्हें कई प्रकार के सामाजिक अपमान सहन करने पड़ते है। इसके साथ ही चढोतरा प्रथा के कारण आरोपी पक्ष के साथ हाथापाई और बदसलूकी भी की जाती है।इससे इस प्रथा का स्वरुप पहले जैसा नही रहा है। इसमे नकारात्मकता का समावेश हो चुका है। वर्तमान में मध्यस्थो ने अपने आर्थिक लाभ को सर्वोपरी रखते हुये तथा मौताणा प्रथा की आड़ में इससे जुडे व्यक्तियों के साथ किसी भी प्रकार शारीरिक और मानसिक हानि करने से नही चूकते है। यह लोग हर उस प्रयास में लग जाते है, जिससे इन्हें मौताणा प्राप्त हो । इन बाहरी लोगो के आगमन के कारण यह प्रथा अपने वास्तविक स्वरुप में खो सी गयी है । इन्ही तत्वों ने इस प्रथा का अलग रुप लोगो के सामने रखा है जिससे इसकी मौलिकता खोती जा रही है। शिक्षा के अभाव के कारण एवं सरल मानसिकता के चलते जनजातिय समाज इन बाहरी तत्वों का पुरजोर विरोध नही कर पा रहा है। इस कारण यह प्रथा अन्यायोचित दिशा की ओर अग्रसर हो रही है।

निष्कर्ष

जनजातिय मौताणा लोक प्रथा की उत्पति के विषय में ज्यादा तथ्य उपस्थित नही है। जो सम्बधित तथ्य है वो दन्तकथा मात्र ही है। बदलते समाजीकरण व सवैधानिक उपचारो के कारण जनजातिय सरल कानून व्यवस्था की जरुरत इतनी नही रह गयी है। इन सरल या जनजातिय समाजो में आज भी जनजातिय सरल कानूनो का प्रसार बहुतायत में है। इसका जो कारण प्रतीत होता है वह शिक्षा का अभाव, सवैधानिक कानूनो के प्रति हतोत्साहित रवैया हैं। जनजातिय समाजो को समाजीकरण के कारण यह प्रथायें प्राप्त हुई है। इस कारण ये समाज इन प्रथाओं को अपनत्व की भावना से देखता है और इस प्रथा को अपने से जोड़कर देखता है।आदिम व वर्तमान मौताणा प्रथा के स्वरुप पर ध्यान डाला जाए तो पता चलता है कि यह प्रथा आर्थिक फायदे में सिमट कर रह गयी है। इसका मूल लक्ष्य जो कि स्वच्छ जनजातिय विकसित परम्परा था, वो कही खो सा गया है। इसमे व्याप्त मध्यस्थों एवं उनके आर्थिक लाभो के कारण इसका स्वरूप बिगड़ गया है। आदिम और आधुनिक प्रथा स्वरुप परिवर्तन से पता चलता है कि पंरम्परावादी समाज में यह सामाजिक नियन्त्रण के लिए आवश्यक था तथा आधुनिकीकरण व आर्थिक फायदे को मध्य में रखने के कारण यह सरल समाज नियन्त्रण की प्रथा न रहकर केवल धन प्राप्त करने की प्रथा बनकर रह गयी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 *जाट एल. आर.,(2013) दक्षिणी राजस्थान के जनजातिय समुदाय में मौताणा, राजस्थान जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी, राजस्थान*

2 *नवल,मदन लाल,(1997) अनुसूचित जातियों एंव जनजातियों (राजस्थान के सन्दर्भ में) ब्रिलियन्ट पब्लिशर्स, नई दिल्ली*

3 *पति,आर. एल.,जैन, (1990) ट्राईबल डवलेपमेन्ट इन इन्डिया, आशिष पब्लिशर्स, नई दिल्ली*

4 *जैन, चन्द (1974) वनवासी भील और उनकी संस्कृति, जयपुर पब्लिशर्स, जयपुर राजस्थान*

5 *हसनैन, नदीमः जनजातिय भारत, "जवाहर पब्लिशर्स एडं डिस्ट्रीब्यूटर्स" नई दिल्ली 2010 पृष्ठ संख्या 11*

6 *डॉ दुबे, सत्यनारायण, "शरतेन्दु": लोक साहित्य की रुपरेखा, "शारदा पुस्तक" भवन इलाहाबाद 2009 पृष्ठ संख्या 3*

6 *हसनैन, नदीमः भारतीय मानव विज्ञान, "जवाहर पब्लिशर्स एडं डिस्ट्रीब्यूटर्स" नई दिल्ली 2007 पृष्ठ संख्या 121*

7 *श्रीवास्तव, ए.आर.एन. तथा आनन्द कुमार सिन्हा : सामाजिक अनुसंधान, "के.के. पब्लिकेशन" इलाहाबाद 1999पृष्ठ संख्या 16*

महाकवि माघ रचित शिशुपालवधम् महाकाव्य का वैशिष्ट्य

डॉ. विजय सिंह मीना
पोस्ट डॉक्टरल फैलो, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश : *माघ ने 'शिशुपालवधम्' में किरातार्जुनीयम् की पद्धति को अपनाया ही नहीं, अपितु अलंकृति और विद्वत्ता प्रदर्शन में उससे आगे निकल जाने का प्रयास भी किया है। परिणामतः उत्तरवर्ती काव्यों में कृत्रिमता बढ़ती ही गई है। माघकाव्य में प्राकृतिक वर्णन प्रचुर मात्रा में हुआ है। प्रकृति चित्रण में वर्ण्यवस्तु के अनुरूप वातावरण और उसके समस्त अंगों का स्वाभाविक वर्णन देखने को मिलता है। उन्होंने श्रृंगार के संयोगपक्ष का विस्तृत वर्णन किया है। राजनीति विषयक पदों के प्रयोग भी महाकाव्य में मिलता हैं। महाकाव्य में प्रसंगानुसार सामरिक ज्ञान, ज्योतिषशास्त्र, पशु विद्या, संगीत शास्त्र का वर्णन है।*

संकेताक्षर : *वृहत्त्रयी, अलंकृत शैली, प्रकृति चित्रण, सर्गबन्ध।*

संस्कृत साहित्य के काव्य जगत् में वृहत्त्रयी के अन्तर्गत शिशुपालवधम् का अन्यतम स्थान है। किरातार्जुनीयम् में जीवन की नानाविध सम-विषय, ऋतुकुटिल परिस्थितियों का हृदयावर्जक चित्रण है। भारवि वृहत्त्रयी के प्रथम कवि और अलंकृत काव्यधारा के परिष्कृत पुरोधा हैं। भारवि कालिदास के परवर्ती कवि हैं। अतएव माघ उनसे सर्वागतः प्रभावित है। किरातार्जुनीयम् एवं शिशुपालवधम् दोनों ही महाकाव्य महाभारत के अलग-अलग पर्वों से सम्बन्धित है।

'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य महाभारत के वनपर्व की एक छोटी घटना पर आधारित एक मात्र कृति है जो अठरह सर्गों में उपनिबद्ध है। भारवि ने अपनी कृति में भौगोलिक एवं राजनैतिक स्थिति का विस्तृत विवेचन किया है। महाकवि माघ की एक मात्र रचना 'शिशुपालवधम्' महाकाव्यम् है।

संस्कृत साहित्य के काव्यकारों में माघ का उत्कृष्ट स्थान रहा है। यही कारण है कि उनके द्वारा विरचित 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य को संस्कृत की वृहत्त्रयी में विशिष्ट स्थान मिला है। महाकवि 'माघ' ने काव्य के 20वें सर्ग के अन्त में प्रशस्ति के रूप में लिए हुए पाँच श्लोकों में अपना स्वल्पपरिचय अंकित कर दिया है जिसके सहारे तथा काव्य में यत्र-तत्र निबद्ध संकेतों से तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर कविवर माघ के जीवन की रूप रेखा अर्थात् उनका जन्म समय, जन्म स्थान को जाना जा सकता है।

प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने प्रशस्तिरूप में लिखे इन पाँच श्लोकों की व्याख्या नहीं की है। केवल वल्लभदेव कृत व्याख्या ही हमें देखने को मिलती है। इसी प्रकार 15 वें सर्ग में प्रथम 39वें लोक के पश्चात् द्वयर्थक 34 श्लोक रखे गये हैं। इसके पश्चात् 40वाँ श्लोक है। यहीं से मल्लिनाथ ने उनकी व्याख्या नहीं की है उसी प्रकार प्रशस्ति के पाँच श्लोकों को भी प्रक्षिप्त मानकर मल्लिनाथ ने व्याख्या नहीं की है। किन्तु मल्लिनाथ के पूर्ववर्ती टीकाकार वल्लभदेव ने उन 34 लोकों तथा कविवंश वर्णन के पाँच श्लोकों की टीका लिखी है।

अतः वल्लभदेव से पूर्ववर्ती होने के कारण यह विश्वास किया जाता है कि कविवंश वर्णन के आदि में जो ''अधुना कविमाघों

निजवंशवर्णन चिकीर्षुराहु'' लिखा है, वह सत्य है अर्थात् अन्य द्वारा लिखा हुआ यह कविवंश वर्णन नहीं है। ''कविवंशवर्णन के पाँच श्लोक प्रक्षिप्त है'– वह कहना केवल कपोल कल्पना है। कवि द्वारा लिखे हुए वंश–वर्णन के पाँचवें श्लोक में स्पष्ट लिखा हुआ है कि दत्तक के पुत्र माघ ने सुकवि–कीर्ति को प्राप्त करने की अभिलाषा से 'शिशुपालवधम्' नामक काव्य की रचना की है।[1]

'भोज–प्रबन्ध' में उनकी पत्नी प्रलाप करती हुई कहती हैं कि जिसके द्वार पर एक दिन राजा आश्रय के लिए ठहरा करते थे आज वही व्यक्ति दाने–दाने के तरस रहा है। क्षेमेन्द्रकृत 'औचित्य विचार–चर्चा' में पं. महाकवि माघ का अधोलिखित पद्य माघ की उक्त दशा का निदर्शक है–

बुभुक्षितैत्यकिरणं न भुज्यते
न पीयते काव्यरसः पिपासितैः।
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं
हिरण्यमेवार्जयन्हिफलः क्रियाः।।

उक्त वाक्य से ऐसा प्रतीत होता है कि दरिद्रता से धैर्यहीन हो जाने के कारण अत्यन्त कातर हुए माघ की यह उक्ति है। कविवर माघ 120 वर्ष की पूर्ण आयु प्राप्त करके सन् 880 ई. के आसपास दिवंगत हुए साथ ही उनकी पत्नी सती हो गई। इनकी अन्तिम क्रिया तक करने वाला कोई व्यक्ति इनके परिवार में नहीं था। 'भोजप्रबन्ध' ''प्रबन्धचिन्तामणि'' तथा ''प्रभावकचरित'' के अनुसार भोज की जीवितावस्था में दिवंगत हुए, क्योंकि भोज ने ही माघ का दाह संस्कार पुत्रवत् किया था।

माघ का स्थिति काल

माघ के समय निर्धारण के प्रमाण भी मिलते हैं, जिनकी सहायता से हम उनका समय जान सकते हैं। नवीं शती के आनन्दवर्धन (840 ई.) ने अपने ध्वन्यालोक (2 उद्योत्) में माघ के दो पद्यों को उद्धृत किया है। प्रथम पद्य है– 'रम्याइतिप्राप्तवतीः पताकाः' (3153) तथा द्वितीय है– 'त्रासाकुल' परिपतन् परितो निकेतान्।' (5126) इस प्रकार माघ निःसन्देह आनन्दवर्धन (850 ई.) के पूर्ववर्ती है।

आनन्दवर्धन द्वारा माघ के श्लोक उद्धृत किए जाने के कारण माघ आनन्दवर्धन के पूर्ववर्ती भी हो सकते है या समकालीन भी हो सकते हैं क्योंकि यशोलिप्सा के कारण माघ स्थिर रूप में किसी एक स्थान पर न रहे पाये हों उन्होंने निश्चित रूप से उत्तर भारत में कश्मीर तक भ्रमण किया था जिसका प्रमाण काव्य के प्रथम सर्ग का नारद मुनि की जटाओं का वर्णन है। यहीं पर सम्भव है ध्वन्यालोक में उद्धृत लोकों को किसी काव्योष्ठी में श्री आनन्दवर्धन ने माघ के मुख से सुने हो और वे उत्तम होने के कारण आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में उन्हें उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है।

माघ का काल प्रायः 8वीं और 9वीं शताब्दियों के बीच स्थिर होता है। इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। भोज प्रबन्ध के अनुसार माघ भोज के समकालीन थे, क्योंकि भोज प्रबन्ध में माघ के सम्बन्ध में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि एक बार माघ ने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दान कर दी थी। निर्धन स्थिति में उन्होंने एक श्लोक की रचना की। जिसे उन्होंने राजा भोज के सभा में भेजा था। वह श्लोक इस प्रकार है–

''कुमुदवनमपत्रि श्री मदम्भोजखण्डे,
मुदति मुद मूलूकः प्रीतिमारचक्रवाकः।
उदयमहिमरि मयाति शीतां शुरस्तं
हतविधिलीसतानां ही विचित्रो विपाकः।।''

जब राज सभा में उक्त श्लोक को पढ़कर सुनाया गया तो भोज अत्यन्त प्रसन्न हुए उन्होंने माघ की पत्नी को बहुत सा धन देकर विदा किया माघ की पत्नी जब वापस लौट रही थी, तो रास्ते में बालक माघ की दानशीलता की प्रशंसा करते हुए उससे भी कुछ माँगने लगे। माघ की पत्नी ने सारा धन याचकों में बाँट दिया। जब पत्नी रिक्तहस्त घर पहुँची तो माघ को चिन्ता हुई कि अब कोई याचक आया तो उसे क्या देंगे ?

डॉ. कीलहार्न को राजपूताने के वसन्तगढ़ नामक स्थान से वर्मलात नामक किसी राजा का 682 विक्रमी अर्थात् 625 ई. का शिलालेख प्राप्त हुआ था। इसके प्राप्तिकर्ता के अनुसार ये वर्मलात और श्री वर्मल एक ही थे और ये ही माघ के पितामाह सुप्रभदेव के आश्रयदाता थे। इस दृष्टि से सुप्रभदेव का समय 628 ई. के आस–पास और उनके पौत्र माघ का अनुमानित समय 650–757 वि.स. से 757 वि. सं. (700) के बीच हो सकता है।''[3] अन्य विद्वानों ने भी इस विषय पर प्रभूत अन्वेषण एवं विचार किया है तदानुसार इनका स्थिति–काल सातवीं शती ईसवी के उत्तरार्द्ध में माना जाना चाहिए। इसके मत के प्रत्यायक कुछ वाह्य प्रमाणों का सारांश इस प्रकार है– आनन्दवर्धन (850 ई.) ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में शिशुपालवधम् के दो श्लोक उद्धत किए हैं।[4]

ISSN 2277-5587

शिशुपालवध (1992) का एक पद्य, जिसमें माघ ने श्लेष द्वारा राजनीति की तुलना व्याकरण शास्त्र से की है स्पष्ट रूप से व्याख्या के दो प्रथित ग्रन्थों, वृत्ति (काशिकावृत्ति) 650 ई. और 'न्यास' (सम्भवतः जिनेन्द्रबुद्धि विरचित 'न्यास' या 'विवरण-पंजिका' समय 700 ई.) का संकेत करता है। इस मत की पुष्टि में एम. एस. भण्डार ने कुछ अन्य प्रमाण भी उपस्थित किए हैं। उनका मत है माघ अपने काव्य के अनेक लोकों में न्यासकार (जिनेन्द्रबुद्धि) के ही विचारों को प्रकट करते प्रतीत होते हैं। नीचे उद्धत किए जा रहे न्यासकार के इन वाक्यों की छाया शिशुपालवधम् के एक श्लोक में मिलता है।

माघ का पाण्डित्य

संस्कृत साहित्यकोश में महाकवि माघ एक जाज्वल्यमान नक्षत्र के समान हैं जिन्होंने अपनी काव्यप्रतिभा से संस्कृत जगत् को चमत्कृत किया है। ये एक ओर कालिदास के समान रसवादी कवि हैं तो दूसरी ओर भारवि सदृश विचित्रमार्ग के पोषक भी। कवियों के मध्य महाकवि कालिदास सुप्रसिद्ध हैं तो काव्यों में माघ अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं-

'काव्येषु माघः कवि कालिदासः।'

माघ अलंकृत शैली के पण्डित कवि माने जाते हैं। जहाँ काव्य के आन्तरिक तत्त्व की अपेक्षा वाह्य तत्त्व शब्द और अर्थ के चमत्कार देखे जा सकते हैं। इनकी एकमात्र कृति 'शिशुपालवधम्' जिसे महाकाव्य भी कहा जाता है, वृहत्त्रयी में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। किसी विद्वान् ने इसके महत्त्व के विषय में कहा है- 'मेघ माघे गतं वयः। माघ विद्वानों के बीच पण्डित कवि के रूप में भी सुप्रसिद्ध हैं। समीक्षकों का कहना है कि माघ ने भारवि की प्रतिद्वन्दिता में ही महाकाव्य की रचना की क्योंकि माघ पर भारवि का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। भले ही माघ ने भारवि के अनुकरण पर अपने महाकाव्य की रचना की हो लेकिन माघ उनसे कहीं अधिक आगे बढ़ गए हैं इसीलिए कहा जाता है,

''तावद भा भारवेभीति यावन्माघस्यनोदयः।''

माघ जिस शैली के प्रवर्तक थे उनमें प्रायः रस, भाव, अलंकार काव्य वैचित्य बहुलता आदि सभी बातें विद्यमान थी। माघकवि की कविता में हृदय और मस्तिष्क दोनों का अपूर्व मिश्रण था। माघकाव्य में प्राकृतिक वर्णन प्रचुर मात्रा में हुआ है। इनके काव्य में भावगाम्भीर्य भी है। 'शिशुपालवधम्' में कतिपय स्थलों पर भावागाम्भीर्य देखकर पाठक अक्सर चकित रह जाते हैं। कठिन पदोन्योस तथा शब्दबन्ध की सुश्लिष्टता जैसी महाकाव्य में देखने को मिलती है वैसी अन्यत्र बहुत कम काव्यों में मिलती है। इनके काव्य को पढ़ते समय मस्तिष्क का पूरा व्यायाम हो जाता है।

माघ के प्रकृति चित्रण में भी उनका वैशिष्ट्य देखने को मिलता है। यद्यपि माघ ने सरोवर, वन, उपवन, पर्वत, नदी, वृक्ष, सन्ध्या, प्रातः रात्रि, अन्धकार आदि प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण उद्दीपन के रूप में किया है फिर भी वह इतना सजीव और हृदयस्पर्शी है कि कोई भी पाठक उसमें डूब जाता है। शिशुपालवधम् का नौंवी और ग्यारहवीं सर्ग इस दृष्टि से अवलोकनीय'' है। सन्ध्याकाल में पश्चिम दिशा नये कदम के समान लाल बादलों से आच्छादित हो गयी है और समस्त दिग्मण्डल भी सूर्य रश्मियों में परिव्याप्त हो गया हे।[6] इसी प्रकार ग्यारहवें सर्ग में कवि प्रातः काल का वर्णन करते हुए लिखता है-

''अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादा बहुल
मधुपमालाकज्जलेन्दी वरोक्षी।
अनुपतित विरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती
रजनिमचिरजाता पूर्वसन्धा सुतेव।।''[7]

अर्थात् रात्रि की विदाई पर ऊषा उसका अनुगमन करती हुई ऐसी शोभायमान हो रही है जैसे वह रजनी की सद्यः प्रसूता कन्या हो। यहाँ रक्तकमलों की पंक्तियों की तुलना ऊषारूपी नायिका की हथेली से और पंखुड़ियों की तुलना उसकी अंगुली से की गयी है।

इस प्रकार माघ के प्रकृति चित्रण में वर्ण्यवस्तु के अनुरूप वातावरण और उसके समस्त अंगों का स्वाभाविक वर्णन देखने को मिलता है। अन्य कृतियों की अपेक्षा माघ के प्रकृति चित्रण में यह वैशिष्ट्य देखने को मिलता है कि उन्होंने काव्यशास्त्रीय दृष्टि का पूर्ण निर्वाह करते हुए उसे जन सुलभ बनाने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। माघ का शृंगार वर्णन भी उच्चकोटि का है। उन्होंने शृंगार के संयोगपक्ष का ही विस्तृत वर्णन किया है। वियोगपक्ष का नहीं। संयोग शृंगार का वर्णन भी उन्होंने आलम्बन के रूप में ही किया है। शिशुपालवधम् के सातवें सर्ग में इस प्रकार के अनेक सन्दर्भ दिखायी पड़ते हैं।

यहाँ केवल 'व' और 'र' वर्णों का प्रयोग कर कवि ने अपने वर्णनचातुर्य को प्रदर्शित किया है। इसके अतिरिक्त अनेक अनुलोम-प्रतिलोम प्रयोग विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके

एकक्षरपादः[8] सर्वतोभद्र[9] गामुत्रिका[10] बन्धःमुरजबन्ध[11] और यर्थवाची[12] तथा चतुरर्थवाची[13] आदि जटिलतम चित्रबन्धों की रचना तत्कालीन कवि समाज की परम्परा की द्योतक है। शिशुपालवधम् के उन्नासवें सर्ग में यही शब्दार्थ कौशल दिखायी पड़ता है। जिस प्रकार आकाश में वृहस्पति और शुक्र के साथ चन्द्रमा सुशोभित होता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी बलराम और उद्धव के साथ सुशोभित हुए संभावन में पहुँचे।

माघ ने राजनीति विशयक परिभाषिक शब्दों का भी स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है जिनसे उनका कुशल राजनीतिज्ञ होना प्रकट होता है। सन्धि, विग्रह, यान, आसन, षड्गुण तीन शक्तियाँ-प्रभु, मन्त्र, उत्साह इत्यादि राजनीति विषयक पदो के प्रयोग महाकाव्य में मिलते हैं। बलराम जी कहते हैं कि अपनी उन्नति और शत्रु की अवनति होने पर युद्ध करना चाहिए, यही राजनीति है जिसे स्वीकार कर पुरुष अधिकाधिक बोलने वाले बन जाते हैं।

माघ के दर्शन विषयक उद्धरणों से प्रतीत होता है कि वे एक बहुत बड़े दार्शनिक भी थे। भारतीय दर्शन के प्रायः सभी अंगों का उन्हें विस्तृत ज्ञान था। आस्तिक तथा नास्तिक दोनों ही दर्शनों का समन्वय उनमें था। भगवान श्रीकृष्ण को विद्वान जन्म और मृत्यु से रहित प्राणियों पर कृपा करने की इच्छा से मानव अवतार लेने वाले पाँच क्लेशों और पाप तथा पुण्यक फलों से रहित ईश्वर, परमपुरुष आदि पुरुष इत्यादि कहते हैं। महाकवि माघ को वेदान्तदर्शन का अपूर्वज्ञान था। उन्होंने अद्वैतवेदान्त के तत्त्वों का प्रतिपादन शिशुपालवधम् में अनेक स्थानों पर किया है। चौदहवें सर्ग में भीष्म भगवान् श्रीकृष्ण का गुणगान करते हुए कहते हैं-

''ग्राम्यभावमहाहातुमिच्छवो योग मार्गपतितेन चेतसा।
दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये यं विशति वशिनं मुमुक्षवः।।''[14]

यहाँ माघ ने भीष्म के द्वारा श्रीकृष्ण के प्रति वेदान्तदर्शन का स्पश्ट स्वरूप स्थापित किया है। मोक्ष प्राप्ति के लिए वेदान्त ही एकमात्र मार्ग है। श्रीकृष्ण के ध्यानमात्र से ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। इसी प्रकार अन्यत्र भी वेदान्त के उदाहरण शिशुपालवधम् में दिखायी पड़ते हैं। महाकवि माघ ने नारद के मुख से श्रीकृष्ण के लिए निर्गुण बाह्य के स्वरूप का प्रतिपादन करवाया है। नारद कहते हैं कि मोक्ष की इच्छा करने वालों को आपकी ही शरण में जाना पड़ता है। आप जैसे परमपुरुष को प्राप्त कर मृत्यु से छुटकारा मिलता है, इसके सिवाय दूसरा कोई मार्ग नहीं है। वहाँ पहुँचकर पुनः इस संसार में वापस आना नहीं पड़ता है।[15] महाकवि माघ का सामरिक ज्ञान भी उच्चकोटि का था द्वितीय सर्ग में समुद्रमन्थन के पौराणिक आख्यान की चर्चा इनके सामरिक ज्ञान को प्रकट करती है-

''अमृतं नाम यत्सन्तो मन्त्रजिह्वोषु जुह्वति।
शौभैव मन्दरक्षुब्ध भितामत्मोधिवर्णना''[16]

विद्वान लोग अग्नि में जो हवन करते हैं वहीं अमृत होता है। मन्दराचल रूपी मथनी द्वारा मथे गए समुद्र से निकले हुए अमृत की चर्चा केवल शोभामात्र के लिए की गयी है। यहाँ ज्ञात होता है कि माघ का सामरिक ज्ञान अत्यन्त प्रौढ़ था। इसके अतिरिक्त औपम्य विधान द्वारा निशाद ब्राह्मण इत्यादि उपाख्यानों द्वारा और युद्ध सम्बन्धी वर्णनों में उनका सामरिक ज्ञान का पता चलता है। महाकवि माघ ज्योतिषशास्त्र में भी प्रवीण थे। तृतीय सर्ग में श्रीकृशण के रथारुढ़ होने का वर्णन करते हुए वे कहते हैं-

''राज सम्पादकमिष्टसिद्धेः सर्वासुदिश्वप्रतिधिद्गमार्गम्।
महारथः पुष्यरथं क्षिप्रं क्षपानाथ इवाधिरुढः।''[17]

सुदर्शन चक्र को धारण करने वाले भगवान श्रीकृष्ण इच्छापूर्ति करने वाले सभी दिशाओं में बिना बाधा के चलने वाले और पूर्ण वेग से चलने वाले पुष्य नामक रथ पर ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे- इच्छापूति करने वाले सब दिशाओं में यात्रा हेतु प्रशस्त और क्षिप्रनामक पुष्य नक्षत्र में स्थित चन्द्रमा सुशोभित हो रहा है।

यहाँ पर पुष्पनामक रथ की उपमा पुण्य नक्षत्र से दी गई है जो ज्योतिषशास्त्र में इष्टसिद्धि का सम्पादक है। प्रस्तुत पद्य में माघ ने ज्योतिष विषयक पुष्य नक्षत्र की चर्चा कर अपने ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान का परिचय दिया है। इसी प्रकार प्रथम सर्ग के अन्तिम पद्य में भी नारद द्वारा शिशुपाल के वध के लिए दिए गये सन्देश के प्रत्युतर में भी माघ के ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान परिलक्षित होता है।

महाकाव्य के परिशीलन से यह भी पता चलता है कि माघ पशु विद्या में भी महारथी थे। इन्होंने यथास्थान हाथियों, घोड़ों, ऊँटों, साड़ों इत्यादि का वर्णन कर पशु विद्या से भी अपना सम्बन्ध दर्शाया है। मजबूत कवच वाले पीठ से सटाकर बांध गये रस्से वाली, चालीस वर्ष की अवस्था से युक्त हाथी प्रलयकाल में वायु द्वारा गति देने से पर्वतों की बड़ी-बड़ी चैनों के समान चल पड़े। गज शास्त्र के अनुसार हाथियों की पूर्ण आयु 120 वर्ष होती है जिसमें 12 दशायें होती हैं अतः चतुर्थी दशा वाले हाथी की आयु 40 वर्ष होती

ISSN 2277-5587

है। इस प्रकार यहाँ हाथियों के आयु सम्बन्धी सूक्ष्मज्ञान को माघ ने बताया है। इसी प्रकार शिशुपालवधम् में अन्य पशु पक्षियों से सम्बन्ध ज्ञान का भी परिचय प्राप्त होता है। संगीत के बिना जीवन नीरस माना जाता है।[18] अतः माघ ने अन्य शास्त्रों के साथ–साथ संगीतशास्त्र को भी आवश्यक माना जाता है। प्रथम सर्ग में नारद की वाणी का वर्णन करते हुए माघ कहते हैं–

''रणादिभराघट्टनया नभस्वतः पृथभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः।
स्फुटीभवद्ग्रमविशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणं महती मुहुर्मुहुः।''[19]

महाकवि माघ शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित होने के साथ ही व्यवहारिकता की ओर भी पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है वे कहते हैं कि मनुष्य को न तो भाग्य के भरोसे रहना चाहिए और न ही पुरुषार्थ पर अहंकार करना चाहिए। जिस प्रकार सुकवियों के लिए शब्द और अर्थ दोनों आव यक होते हैं उसी प्रकार जीवन में भाग्य और पुरुषार्थ दोनों का अवलम्बन करना चाहिए–

''नालम्बते दैष्टिकतां न निर्षादति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते।।''[20]

इस प्रकार माघ के पाण्डित्य का विवेचन करने से यहीं निष्कर्ष निकलता है कि माघ प्रतिभा के धनी थे शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित थे, प्रत्येक विषय का सूक्ष्म ज्ञान उन्हें था, उन्होंने काव्य के आवश्यक पहलुओं पर ध्यान दिया एवं उन्हें जीवन से जोड़ने का भी प्रयास किया। वे कवि एवं सहृदय पाठक दोनों के लिए आदर्श रहे हैं। इनकी रचना में चमत्कार गेयता, अलंकार रस तथा व्यावहारिक जीवन के अनुभव प्राप्त होते हैं।

माघ का कर्तृत्व

'एक श्चन्द्रस्तमोहन्ति' उक्ति के अनुसार महाकवि माघ की कीर्ति उनके एकमात्र उपलब्ध महाकाव्य 'शिशुपालवधम्' पर आधारित है, जिसका बृहत्रयी और पंचमहाकाव्य में विशिष्ट स्थान है। 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य के अतिरिक्त माघ की अन्य रचनाएं प्राप्त नहीं होती। यद्यपि सुभाषित ग्रन्थों में माघ के नाम से कुछ फुटकर पद्य भी मिलते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि माघ की और भी रचनाएं रही होंगी जो कालान्तर में नष्ट हो गयी। माघ के नाम से जिन ग्रन्थों में उनके पद्य मिलते हैं उनका सन्दर्भ अधोलिखित हैं–

''बुभुक्षितैव्यकिरण न भुज्यते पिपासितैः
काव्यरसो न पीयते।
विधया केनचिदुद्धतं, कुलं हिरण्यमेववार्जय
निष्फलाः क्रियाः।।''

'शिशुपालवधम्' महाकाव्य 20 सर्गों में विभक्त है जिसमें 1650 पद्य हैं। माघ ने महाभारत को आधार बनाकर अपनी मौलिक कल्पनाओं द्वारा इस महाकाव्य की रचना की है। इसके अन्तर्गत रस, गुण, अलंकारिक काव्य तत्त्वों का एक विशाल संदेह दिखायी पड़ता है। संस्कृत समीक्षकों में माघ के प्रति यह भी धारणा प्रचलित है कि महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य के निर्माण से पूर्व भारवि कृत ''किरातार्जुनीयम्'' का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया होगा और उन्हें (भारवि) परास्त करने के लिये ही 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य की रचना की होगी।

''तावद् भा भारवेभीति यावन्याघस्य नोदयः'' उक्ति का भी ही तात्पर्य है क्योंकि ''किरातार्जुनीयम्'' और ''शिशुपालवधम्' के अध्ययन से महाकवि माघ पर भारवि का स्पश्ट प्रभाव दिखायी पड़ता है। अतएव शिशुपालवधम् महाकाव्य लिखने का प्रेरणास्त्रोत भारवि का किरातार्जुनीयम् भी माना जा सकता है। इस प्रकार महाकवि माघ का एकमात्र उपलब्ध ग्रन्थ 'शिशुपालवधम्' प्राप्त होता है लेकिन महाकवि माघ की कृति सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य जगत एवं समीक्षकों के समक्ष अमरकृति बन गयी।

लौकिक संस्कृत भाषा में काव्य–रचना का आरम्भ महर्षि वाल्मीकि से हुआ। इन्होंने राम को नायक बनाकर आदिकाव्य 'रामायण' की रचना की। महर्षि वाल्मीकि ने जिस काव्यपद्धति का आरम्भ किया था उसे कुछ काल तक सर्गबन्ध रचना कहा जाता रहा। बाद में इसे ही महाकाव्य कहा गया। अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि संस्कृत में 'महाकाव्य' विद्या की कल्पना का मूल 'आदिकाव्य' 'वाल्मीकि रामायण' है।

महाकाव्य को विधा के रूप में प्रतिष्ठापित करने वाले आचार्यो की लम्बी परम्परा रही है। जिसमें आचार्य भामह, दण्डी, रूद्रट मम्मट, विश्वनाथ और जगन्नाथ इत्यादि प्रमुख हैं। लक्ष्यग्रन्थ पहले बना तत्पश्चात् लक्षणग्रन्थ का निर्माण हुआ। आदिकाव्य 'रामायण' तथा कालिदास के काव्यों का अध्ययन करने के पश्चात् समालों–चकों ने महाकाव्य के शास्त्रीय स्वरूप को तथा आलंकारिको ने उसके लक्षण को अपने अलंकार ग्रन्थों में प्रस्तुत किया।

आचार्य रूद्रट ने काव्यांलंकार[21] में आचार्य दण्डी द्वारा

निर्दिष्ट काव्यलक्षणों कुछ विस्तार से दुहराया है। शिशुपालवधम्' में श्रीकृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर के राज सूय यज्ञ में चेदि नरेश शिशुपाल के वध का वर्णन है। इसमें वर्णनों की प्रचुरता को देखकर यदि इसे वर्णन प्रधान महाकाव्य कहे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। विषय प्रधान काव्य के अन्तर्गत भी यदि इसको लिया जाय तो भी असंगत नहीं होगा। वास्तव में यह काव्य विषय प्रधान ही प्रतीत होता है। 'शिशुपालवधम्' में प्रसंगानुसार कहीं-कहीं दुर्जनों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा की गई है। सात्यकि ने भगवान् श्रीकृष्ण और शिशुपाल के व्याजु से क्रमशः प्रशंसा और निन्दा की है।[22] सज्जन और दुर्जन के गुण दोषों को सोलहवें सर्ग में बताया गया है।[23] महाकाव्य में यज्ञ का भी विवरण मिलता है।

इस प्रकार देखा जा सकता है माघ ने 'शिशुपालवधम्' में किरातार्जुनीयम् की पद्धति को अपनाया ही नहीं, अपितु अलंकृति और विद्वत्ता प्रदर्शन में उससे आगे निकल जाने का प्रयास भी किया है। परिणामतः उत्तरवर्ती काव्यों में कृत्रिमता बढ़ती ही गई है। अब कालिदास की भावतरलता या भावनोत्कटता, भारवि की विचार प्रवणता और माघ का पाण्डित्यपूर्ण कल्पनाविलास, माघोत्तरवर्ती काव्यों में नहीं मिलता अब केवल श्लेवादि शब्द प्रधान्य की ही प्रधानता उनमें दृष्टिगोचर होती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *श्रीशब्दरम्यकृतसर्ग समाप्ति लक्ष्य लक्ष्मीपते चरितकीर्तन-मात्रचारू। डॉ. रामहेब साहू, तस्यात्मजः सु कविकीर्तिदु राशयाऽदः काव्यं व्यधात शिशुपालवधाभिधानम्।। संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. 73*
2. *संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. रादेव साहू, पृ. 74*
3. *Kilhorn-Journal of the Royal Asiatic Society 1908, P. 409*
4. *शिशुपालवधम्, 3/53 एवं 5/26*
5. *शिशुपालवधम्, 2/112*
6. *शिशुपालवधम्, 9/7*
7. *शिशुपालवधम्, 11/40*
8. *वही, 19/3*
9. *वही, 19/27*
10. *वही, 19/46*
11. *वही, 19/29*
12. *वही, 19/116*
13. *वही, 19/96*
14. *शिशुपालवधम्, 14/64*
15. *शिशुपालवधम, 1/32*
16. *शिशुपालवधम् 2/107*
17. *वही, 3/22*
18. *शिशुपालवधम् 5/10, 12/9, 12,58*
19. *वही, 1/10*
20. *शिशुपालवधम् 2/88*
21. काव्यालंकार, आचार्य रूद्रट, 16/19
22. शिशुपालवधम् 16/29
23. वही, 16/21-24

ISSN 2277-5587

भारतीय राजनीति में 1989–2014 तक साझा सरकारों का युग: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

मनु सिंह
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश : *भारत को दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र कहा जाता है। सन् 1952 में वयस्क मताधिकार के आधार पर देश में पहले आम चुनाव हुए थे। लोकतंत्र, आज के विश्व में सर्वाधिक लोकप्रिय विचारधारा, सर्वाधिक व्यापक शासन व्यवस्था एवं राजनीतिक संस्था है। भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी सफलता है कि इसका स्थिर एवं व्यापक संविधान तथा मजबूत लोकतांत्रिक संस्थाएं। 1977 ई. के लोकसभा चुनावों के परिणाम स्वरुप भारत में पहली बार केन्द्र में सत्ता परिवर्तन हुआ और कांग्रेस के स्थान पर जनता पार्टी की सरकार स्थापित हुई। नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनाव के बाद हम पुनः अल्पमत (मिलीजुली सरकार) सरकार की तरफ बढ़ने लगे। 1991, 1996, 1998, 1999, 2004, 2009 मिली जुली सरकारों का दौर रहा है। 2014 में पुनः सरकार से गठबन्धन सरकारों का युग समाप्त सा होने लगा है। इस शोध पत्र में गठबन्धन की सरकारों की कार्यप्रणाली एवं लोकतांत्रिक मूल्यों के उत्थान–पतन का अध्ययन करने का प्रयास किया जायेगा।*

संकेताक्षर : *संविदा राजनीति, संसदीय व्यवस्था, साझा सरकार, लोकतंत्र, त्रिशंकु लोकसभा।*

भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था संक्रमण के ऐसे दौर से गुजर रही है, जहाँ जमीनी सच्चाई देश को 2014 के आम चुनाव के पूर्व तक गठबन्धन की राजनीति की ओर धकेल रही थी। 1977 से अब तक पांच बार मध्यावधि चुनाव हुए हैं। जिनका प्रमुख कारण गठबंधनों का असफल होना रहा है। गठबंधन सरकार की चाहें संवैधानिक और राजनीतिक हलकों में कितनी ही आलोचना क्यों न की जावें, एकदलीय प्रभुत्व की जड़ता को गठबंधन ने ही तोड़ा है। 1977 से लेकर अब तक दस बार केन्द्र में संविदा–सरकारें बन चुकी हैं। संविदा–राजनीति ने प्रान्तीय–नेतृत्व को विस्तार दिया है। केन्द्रीय राजनीति क्षेत्रीय दलों की मोहताज बनी। यही कारण है कि अब तक बनी संविदा–सरकारों ने केन्द्र के स्तर पर पांच साल का कार्यकाल अभी तक कभी पूर्ण नहीं किया है। कुर्सी के लिए समझौते किये जाते हैं, सुशासन और स्थिर शासन के लिए नहीं।[1]

साझा सरकार का सामान्य अर्थ है एक से अधिक दलों द्वारा मिली–जुली सरकारों का गठन करना एवं शासन का संचालन करना। संसदीय व्यवस्था में केन्द्रीय स्तर और राज्य स्तर पर व्यवस्थापिका के लोकप्रिय सदन (लोकसभा/विधानसभा) के चुनाव होते हैं। लेकिन जब लोकप्रिय सदन के चुनाव में किसी एक राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होता, त्रिशंकु लोकसभा या त्रिशंकु विधानसभा की स्थिति बनती है तब राजनीतिक दलों और दलीय नेताओं के बीच गठबंधन को जन्म देने की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है और जो गठबन्धन राज्य के प्रधान को अपने बहुमत से आश्वस्त कर देता है, उस गठबंधन के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाता है और गठबन्धन का नेता प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री मिलीजुली सरकार का गठन करता है। मिलीजुली सरकार का नाम प्राप्त करने के लिए सरकार में कम–से–कम दो दलों की भागीदारी आवश्यक है। ऑग के अनुसार, "मिलीजुली सरकार एक ऐसे सहयोगी प्रबन्ध का नाम है जिसमें विभिन्न राजनीतिक दलों के सदस्य

सरकार के गठन या मंत्रीमण्डल के निर्माण के लिए एक हो जाते हैं।"[2] सुभाष कश्यप के अनुसार, "मिलीजुली सरकार राजनीतिक समुदायों तथा शक्तियों का गठजोड़ है जो अस्थायी और कुछ विशिष्ट प्रयोजनों के लिए होता है। राजनीतिक दलों का यह मिलन सरकारों के निर्माण या उनकी रक्षा करने के लिए बनाया जाता है। जिन दलों के सहयोग के फलस्वरुप संयुक्त सरकारों का निर्माण होता है। वे एक बुनियादी राजनीतिक कार्यक्रम पर एक होते हैं।"[3]

साझा सरकारों के सामान्य लक्षण निम्नलिखित हैं :

- मिलीजुली सरकार में कम-से-कम दो भागीदार होते हैं। भागीदार दलों की संख्या इससे अधिक हो सकती है।
- भागीदार दल गठबन्धन की राजनीति को कुछ प्राप्ति के लिए अपनाते हैं।
- गठबन्धन एक अस्थायी प्रबन्ध होता है।
- मिलीजुली सरकार का गठन समझौते के आधार पर होता है, इसमें कठोर सिद्धान्तवादी राजनीति के लिए कोई स्थान नहीं होता।
- मिलीजुली सरकारें यथार्थवाद पर आधारित होती हैं।[4]

गठबन्धन सरकारों के उदय के निम्नलिखित कारण हैं :

- किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत न मिलना।
- केन्द्र व राज्यों के मध्य कटुता का उदय होना ।
- दल-बदल की राजनीति – मिलीजुली सरकारों के उदय का एक अन्य प्रमुख कारण दल-बदल भी रहे हैं। जैसे- 1967 के आम चुनाव में एक वर्ष के भीतर ही 438 बार सदस्यों ने दल बदल किया।
- कांग्रेस का विरोध करना – मिलीजुली सरकारों के उदय का एक प्रमुख कारण कांग्रेस के एकाधिकार को समाप्त करके कांग्रेस से सत्ता छीनना था।[5] वर्तमान में भाजपा का विरोध करने के लिए गठबन्धनों का बनना जारी है।
- उन नेताओं ने मिलीजुली सरकारों के गठन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है, जिन्हें शासनकाल में सत्ता सुख प्राप्त नहीं हुआ था ताकि सत्ता की प्राप्ति हो सके।[6]

मिलीजुली सरकारों के प्रमुख प्रकार इस प्रकार हो सकते हैं:

- **एक दल की प्रधानता वाला गठबन्धन** – इस गठबन्धन में एक राजनीतिक दल की प्रधानता होती है तथा एक या एक से अधिक छोटे राजनैतिक दल उस प्रमुख दल के साथ जुड़ जाते हैं।
- **लगभग समान शक्तिशाली दो परस्पर विरोधी गठबन्धन** – इस स्थिति में सामान्यताया जनता ही निर्णय देती हैं कि किस गठबन्धन को सत्ता प्राप्त होगी। कुछ अर्थो में दो गठबन्धनों की यह स्थिति द्विदलीय के समान कार्य करती है।[7]
- **निषेधात्मक आधार पर गठित अनेक राजनीतिक दलों का गठन** – यह अनेक राजनीतिक दलो का ऐसा गठबन्धन होता है जिसमें भागीदार दल किसी अन्य राजनीतिक दल को अपने समान और शक्तिशाली शत्रु मानते है और इस शक्तिशाली शत्रु को सत्ता से दूर करने के लिए गठबन्धन की राजनीति को अपनाते हैं।
- **राष्ट्रीय सरकार** – इस राष्ट्रीय सरकार का गठन राष्ट्रीय संकट का सामना करने के लिए किया जाता है लेकिन अभी तक किसी राष्ट्रीय सरकार का गठन नहीं हुआ है।

भारत के संसदीय इतिहास में मिलीजुली सरकारों का प्रयोग लगभग असफल रहा है। भारत में राज्यों में 1967 के पश्चात् तथा केन्द्र में 1990 के दशक में गठबन्धन सरकारों का अनुभव अत्यधिक कटु रहा है। इन सरकारों ने अनिश्चितता तथा अस्थिरता का वातावरण उपस्थित किया है। केन्द्र में 1977 में पहली बार मिली जुली सरकार बनी तब से अब तक केन्द्र में 10 मिली जुली सरकारें बन चुकी हैं। इनमें से प्रत्येक की संक्षिप्त विवेचना इस प्रकार है:

1. **मोरारजी देसाई सरकार (1977):** 1977 में केन्द्र में पहली बार मिली जुली सरकार का गठन हुआ। चुनाव के बाद श्री मोराजी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार बनी थी। ढाई वर्ष बाद जब सरकार के विरुद्ध सदन में अविश्वास का

प्रस्ताव लाया गया तो काफी संख्या में सदस्यों के दल बदल के कारण प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने अविश्वास के प्रस्ताव पर मतदान होने से पूर्व ही त्यागपत्र दे दिया। जनता पार्टी से दल बदल कर जाने वाले लोगों ने अन्य दलों से मिलकर एक संयुक्त दल बनाया जिसके नेता चरण सिहं बने।

2. **श्री चरण सिहं के नेतृत्व में मिली जुली सरकार:** 28 जुलाई 1979 को चरण सिहं सरकार ने पद ग्रहण किया इस सरकार को 20 अगस्त को लोकसभा में विश्वास मत प्राप्त करना था, लेकिन जब यह स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस लोकसभा के पटल पर सरकार का समर्थन नहीं करेगी, तब चरण सिहं ने प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया।

3. **वी. पी. सिंह के नेतृत्व में मिली जुली सरकार (1989):** 1989 के लोकसभा के आम चुनाव में कांग्रेस पार्टी की भारी पराजय हुई और राष्ट्रीय मोर्चा और उसके अन्य घटकों को सदन में आवश्यक बहुमत नहीं मिल पाया। लोकसभा में विभिन्न दलों की स्थिति इस प्रकार थी कुल स्थान 545 चुनाव हुए 525, कांग्रेस 191, अन्ना डी. एम.के. 11, राष्ट्रीय मोर्चा 143, भाजपा 88, दोनों वामपंथी पार्टियां 50, स्वतंत्र व अन्य 59। इस प्रकार सदन में कोई भी दल अकेले सरकार बनाने में सक्षम नहीं था।[8]

4. **चन्द्रशेखर के नेतृत्व वाली मिली-जुली सरकार :** चन्द्रशेखर सरकार तो वी.पी सिहं सरकार की तुलना में ज्यादा कमजोर थी क्योंकि इसका निर्माण दल-बदल के आधार पर हुआ था। जन स्वी ति प्राप्त नहीं थी। कांग्रेस नेतृत्व से मतभेद हो जाने से कांग्रेस-ई ने समर्थन वापस ले लिया तथा चन्द्रशेखर सरकार का पतन हो गया।[9]

5. **पी. वी नरसिम्हा राव के नेतृत्व वाली अल्पमत सरकार :** चन्द्रशेखर की सरकार के पतन के बाद 1991 में लोकसभा के आम चुनाव हुए और इस चुनाव में भी किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। अल्पसंख्यक सरकार को 1993 में बहुसंख्यक सरकार में परिवर्तित कर लिया और इस प्रकार मिली-जुली राजनीति की अस्थिरता से मुक्ति पायी।

संविदा-सरकारों का कार्यकाल (1977 से अद्यतन)[10]

क्र.सं.	नेतृत्व(नेता)	शपथ	अवसर	कुल दिवस	समर्थन	लोकसभा अध्यक्ष
1	मोरारजी देसाई (जनता पार्टी)	24 मार्च 1977 (छठी लोकसभा)	1	856	संगठन कांग्रेस/जनसंघ / भालोद /संयुक्त समाजवादी दल/कांग्रेस फोर डेमोक्रेसी	श्री के.एम. हेगड़े
2	चौधरी चरण सिहं (जनता -एस)	28 जुलाई 1979 (छठी लोकसभा)	1	170	कांग्रेस का बाहरी समर्थन	श्री के.एम. हेगड़े
3	विश्वनाथ प्रताप सिहं (राष्ट्रीय मोर्चा)	(02 दिसम्बर 1989 (नवीं लोकसभा)	1	343	वामपंथी दलों का संयुक्त मोर्चा तथा भारतीय जनता पार्टी का बाहरी समर्थन	श्री रवि राय
4	चन्द्र शेखर (जनता -एस)	10 नवम्बर 1990 (नवीं लोकसभा)	1	223	कांग्रेस का बाहरी समर्थन	श्री रवि राय
5	अटल बिहारी वाजपेयी (भारतीय जनता पार्टी)	16 मई 1996 (ग्यारहवीं लोकसभा)	1	16	शिवसेना/अकाली दल तथा हरियाणा विकास पार्टी	श्री पी.ए. संगमा
6	एच.डी.देवगौड़ा (जनता दल)	01 जून 1996 (ग्यारहवीं लोकसभा)	1	324	संयुक्त मोर्चा/जनता दल/ तेलगूदेशम/ असम गण परिषद/ कांग्रेस(एस) द्रमुक /कांग्रेस का बाहरी समर्थन	श्री पी.ए. संगमा
7	अटल बिहारी वाजपेयी (भारतीय जनता पार्टी)	19 मार्च 1998 (बारहवीं लोकसभा)	2	413	18 दलों का गठबन्धन तृणमूल कांग्रेस, तेलगूदेशम और राष्ट्रीय लोक दल का बाहरी समर्थन	श्री जी.एम.सी. बालयोगी
8	अटल बिहारी वाजपेयी (भारतीय जनता पार्टी)	13 नवम्बर 1999	1	1512	24 दलों का गठबन्धन (एन.डी.ए)	श्री जी.एम.सी. बालयोगी तथा मनोहर गजानन जोशी (11 जून 2002 से 2 जून 2004 तक
9	डॉ. मनमोहन सिहं (कांग्रेस)	22 मई 2004 (चौदहवीं लोकसभा)	1	1825	यू.पी.ए तथा वामपंथी दलों का बाहरी समर्थन	अध्यक्ष-श्री सोमनाथ चटर्जी उपाध्यक्ष- श्री चरणजी अत्वाल
10	डॉ. मनमोहन सिहं (कांग्रेस)		2	अद्यतन	कांग्रेस एवं अन्य सहयोगी दल	श्रीमती मीरा कुमार

6. **1996 के बाद बनी संयुक्त मोर्चे की मिली–जुली सरकारें** : 1996 के चुनावों के बाद अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में मिली–जुली सरकार का गठन किया गया लेकिन लोकसभा में आवश्यक बहुमत की पुष्टि न होने के कारण 13 दिन में ही इसका पतन हो गया। बाद में देवगौड़ा के नेतृत्व में 13 दलों की मिली–जुली सरकार बनी परन्तु वह भी असफल रही। तब इन्द्र कुमार गुजराल के नेतृत्व में पुनः संयुक्त मोर्चा की सरकार बनी।

7. **भाजपा के नेतृत्व में गठबन्धन सरकार** : 1998 में 12वीं लोकसभा के आमचुनाव हुए। इस बार भाजपा के श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में अनेक दलों के साथ मिलकर एक बार फिर मिली–जुली सरकार बनी। यह सरकार भी लगभग प्रत्येक मोर्चे पर विफल रही।

8. **1999 के तेरहवीं लोकसभा के चुनाव और मिली–जुली सरकार** : राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन को स्पष्ट बहुमत मिला। इस गठबन्धन में छोटे–बड़े 24 दल सम्मिलित थे तथा अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में पुनः संविदा या मिली–जुली सरकार का गठन हुआ।

9. **डॉ. मनमोहन सिहं के नेतृत्व में गठबन्धन सरकार (22 मई 2004 से 22 मई 2014 तक)** : चुनाव के बाद कांग्रेस के नेतृत्व में यूनाइटिड प्रोग्रेसिव एलांयस (यूपीए) ने डॉ. मनमोहन सिहं के नेतृत्व में मिली–जुली सरकार का गठन किया गया तथा लोकसभा में 'राजग' ने प्रमुख विपक्षी दल की भूमिका निभाई।

13वीं, 14वी एवं 15 वीं लोकसभाः तुलनात्मक विवेचन[11]

दल	प्राप्त स्थान 1999	प्राप्त स्थान 2004	प्राप्त स्थान 2009
कांग्रेसगठबन्धन(यू.पी.ए.)	137	222	262
भारतीय जनता पार्टी गठबन्धन (एन.डी.ए.)	302	186	157
अन्य तीसरा मोर्चा चौथा मोर्चा(यू.एन.पी.ए.) एवं अन्य	104	135	124

इस प्रकार 11वीं लोकसभा चुनाव से लेकर 15वीं लोकसभा चुनाव तक मिली–जुली सरकारो का ही बोलबाला रहा है।

राजनीति में साझा सरकारों का प्रभाव निम्नलिखित रुप में देखा जा सकता हैः

- **अस्थायित्व** : गठबन्धन सरकारों का सबसे बड़ा दोष यह है कि सरकार का अस्तित्व सदैव दांव पर लगा रहता है।
- **सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का उदारीकरण** : जब तक एकदलीय सरकार का प्रभुत्त्व रहा उसमें सामूहिक उत्तरदायित्व व्यक्तिगत जिम्मेदारी के सिद्धान्त का समन्वित रूप से पालन किया गया। गठबन्धन सरकारों में इन सिद्धान्तों का कभी भी पालन नहीं कियाा गया।
- प्रशासकीय नेतृत्व ने राजनीतिक नेतृत्व को आच्छादित कर दिया है। बिहार, बंगाल तथा उत्तर प्रदेश के राज्यपालों ने सलाहकार परिषद का गठन किया तथा उसमें उच्चपदीय प्रशासकीय अधिकारियों की नियुक्ति कर दी।[12] इस प्रकार राजनैतिक नेतृत्व के ऊपर प्रशासकीय नेतृत्व की स्थापना हो गई।
- **राष्ट्रपति पर अत्यधिक भार** : राज्यों में इतनी शीघ्रता से राष्ट्रपति शासन लगाया जाता रहा है उससे राष्ट्रपति कार्यालय पर कार्य का बोझ अत्यधिक बढ़ता रहा है।

निष्कर्षत :गठबन्धन सरकारों के भविष्य के सम्बन्ध में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। तथापि यह तो निश्चित है कि न्यूनाधिक रुप से जनता ने संवैधानिक साधनों द्वारा राजनीतिक शक्ति की भागीदारी के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है। वर्तमान में राजनीतिक वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर सदैव पहुँच सकते हैं कि नीतिगत मामलों के कारण गठबन्धन असफल हुआ किन्तु यह ठीक उसी प्रकार है जैसा कि किसी डॉक्टर द्वारा यह घोषणा करना कि मरीज की मृत्यु हृदय घात के कारण हुई है तथापि यह तथ्य है कि कुछ गठबन्धन सरकारें स्थायी तथा प्रभावशाली सिद्ध हुई है।

संवैधानिक सरकार के संदर्भ में मिली–जुली सरकारों का उद्‌भव अत्यधिक सुखद नहीं रहा है। इसके कारण सरकार में अस्थायित्व, अकुशलता तथा प्रशासन में भाई–भतीजावाद की प्रवृत्ति बढ़ती है। भारत में गठबन्धन सरकार के चलाने की नीति अभी उतनी विकसित नहीं हुई है, जितनी कि विश्व के कई अन्य देशों में हुई है। फिर भी यह सर्वविदित है कि गठबन्धन सरकार कमजोर सरकारें होती हैं और कठोर निर्णय लेने में सक्षम नहीं होती है। अंत में वर्तमान में राजग सरकार, जो नरेन्द्र मोदी सरकार है के बाद पुनः एक बार गठबन्धन सरकारें अपने अंतिम चरणों में है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *इंदा, उम्मेद सिहं, "संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा", कल्पज पब्लिकेशन्स, दिल्ली–2010, पृ –175–178*
2. *फड़िया, डॉ. बी.एल, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2016, पृ 641*
3. *कश्यप तथा गुप्त : राजनीति कोश, पृ 57*
4. *फड़िया, डॉ. बी.एल., भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन, पब्लिकेशन्स, आगरा, 2016, पृ 642*
5. *यू. बक्शी,"द इण्डियन सुप्रीम कोर्ट एण्ड पॉलिटिक्स," ईस्टर्न बुक कम्पनी, देहली 1980 पृ 81*
6. *डॉ. राजीव नैयर, "वाजपेयी विजिट एण्ड यू.एस रिलेशन्स,:स्ट्रटेजिक एनेलिसिस" 24 दिसम्बर 2000, पृ 1721*
7. *पी.बोस, "पॉलटिक्स ऑफ इण्डिया ।सिन्स इन्डिपेन्डेन्स," ऑरियन्टल, लॉगमैन, हैदराबाद, 1990 पृ 113*
8. *पाण्डेय, डॉ. जय नारायण, भारत का सविधान, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, 2014, पृ 471*
9. *इंदा, उम्मेद सिहं, "संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा", कल्पज पब्लिकेशन्स, दिल्ली–2010, पृ –180*
10. *इंदा, उम्मेद सिंह,"संसदीय व्यवस्था में परिवर्तन की दिशा", कल्पज पब्लिकेशन्स, दिल्ली,2010, पृ 177–188*
11. *शर्मा, रितु, "इण्डियाज आटोनोमी एण्ड अमेरिकन फॉरेन असिस्टेंसः पॉलिटिक्स ऑफ इनईवेशन", स्ट्रेटिसिक एनालिसिस, अक्टूबर 1991, पृ 731*
12. *राजस्थान पत्रिका 8, जुलाई, 1999*

महाभारत काल की दूत एवम गुप्तचर व्यवस्था

नीलम जुनेजा
व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, सूरतगढ

shodhshree@gmail.com

शोध सांराश : *महाभारत भारत का एक विशाल महाकाव्य है । राजनीतिक विचारों एवं प्रशासनिक संस्थाओं के लिये इसकी महती उपयोगिता है। महाभारत काल में शासन व्यवस्था के सुचारु संचालन मे दूतो व गुप्तचरों का स्थान बहुत महत्वपूर्ण था। दूतो का कार्य अन्तर्राज्यीय (अन्तर्राष्ट्रीय) सम्बन्धों को कायम करना, सन्धि–समझौते हेतु वार्ता करना, राजा का सन्देश दूसरे राज्यों में पहुंचाना, दूसरे राज्यों की सूचनाओं को एकत्रित करना इत्यादि था। गुप्तचरों का कार्य राज्य की आन्तरिक व बाह्य सूचनाओं को गुप्त तरीके एकत्रित करना व उसकी जानकारी राजा को देना ताकि आने वाली समस्या का निराकरण समय पर किया जा सके व राज्य को संकट से सुरक्षित रखा जा सके। दोनों पदों के लिए प्रशासन की और से कुछ नियम थे ।उसमें गुणों व योग्यता के आधार पर निष्ठावान व्यक्तियों को इन पदों पर नियुक्त किया जाता था। इनके कार्य, कार्य –पद्धति, गुणो इत्यादि का वर्णन इस शोध पत्र में किया गया है।*

संकेताक्षर : *दूत, गुप्तचर, अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति, प्रियवंद, वाग्मी, यथोक्तवादी, पाखण्डी, संकेत, क्षुधा ।*

भारत में प्राचीन काल से ही शासन व्यवस्था मे दूत व गुप्तचर व्यवस्था रही है। अन्तर्राज्यीय (अन्तर्राष्ट्रीय) सम्बन्धों में प्राचीन काल में भारत के राज्यों में कूटनीतिक सम्बन्ध कायम थे। इस कार्य हेतु दूतो व गुप्तचरों की नियुक्ति की जाती थी। अन्तर्राज्य सम्बन्धों में जिन 6 गुणों व 4 उपायों का प्रयोग होता था उसमें दूतों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। दूत वह थे जो अन्य शत्रु व मित्र राज्यों के यहां जाकर अपने राजा के हित साधन का कार्य करते थे और गुप्तचर वह थे जो राज्य व राज्य से बाहर अन्य राज्यों में जाकर गुप्त सूचनाऐं एकत्रित करते थे और उसकी सूचना राजा को देते थे। दूत को राजा का मुख व गुप्तचरों को राजा का नेत्र माना जाता था। दूत प्रकाश में व गुप्तचर छिप कर अपने कार्य को सिद्ध करते थे। दोनों का संक्षिप्त उल्लेख निम्न प्रकार है :

दूत : राजा का एक महत्वपूर्ण अधिकारी था। सन्धि व विग्रह दोनों ही कार्य दूत के अधीन रहते थे। दूत के द्वारा राजनीति में संलग्न लोगों को मिलाया भी जाता था और वह मिले हुये लोगों को अलग भी करता था। कामन्दक ने उसे एक कूटनीतिज्ञ अधिकारी माना है जो अपने अन्य राजा के सम्बन्ध सुनिश्चित करता था।[1]

दूत अपने राजा का संदेश दूसरे राजा के अधिकारियों तक पहुंचाता था। अन्तर्राज्यी सम्बन्धों की स्थापना, सन्धि–विग्रह के निर्णयों मे दूत का महत्वपूर्ण भाग होता था। युद्ध काल में दूसरे राज्यों में सन्देश लेकर जाना भी उसका कार्य था। दूत राजा के प्रति वफादार होते थे, भविष्य के कार्यक्रमों को निर्धारित करने के लिये इसे भेजा जाता था। प्राचीन भारत के सभी राज शास्त्रियों ने दूत की आवश्यकता व उपयोगिता को स्वीकार किया है। महाभारत जो भारत का सबसे बड़ा महाकाव्य है उसमें भी दूतों के सन्दर्भ में विस्तृत जानकारी मिलती है जैसे – दूतो की योग्यता, गुण, नियुक्ति, कार्य, दूतो का वर्गीकरण इत्यादि।

दूतों की योग्यता एवम गुण : महाभारत के उद्योगपर्व[2] में दूतों के 8 गुण बनाये गये है– अस्तब्ध, अकलीव, अदीर्घ, सूत्र, सानुकोश, श्लक्ष्ण अहार्यमन्य, निरोध व उदार वाक्य। शान्ति पर्व [3] में सात गुणों का उल्लेख मिलता है– कुलीन, शील,

 ISSN 2277-5587

सम्पन्न, वाग्मी (वाचाल) दक्ष, प्रियवंद (प्रिय वचन बोलने वाला) यशोक्तवादी (सन्देश को ज्यों का त्यो कह देने वाला)। श्री कृष्ण दूत के लिये धर्मशील, शुचि सम्पन्न कुलीन, अप्रभत होना आवश्यक मानते है। महाभारत मे गुणों के साथ- साथ यह भी उल्लेख है कि अगर दूत स्वामी की आज्ञा था विरोध या मनमानी करता है, वह वध्य होता है।[4]

दूतों का वर्गीकरण :

प्राचीन साहित्य व महाभारत मे दूतों के तीन वर्ग (भेद) किये गये है - निसृष्टार्थ, परिमितार्थ, सन्देशहर।

निसृष्टार्थः जिसे सन्धि-विग्रह करने के पूर्ण अधिकार हो उसे निसृष्टार्थ कहते है जैसे श्री कृष्ण पाण्डवों की तरफ से कौरवों की सभा में दूत बन कर गये उन्हे सन्धि विग्रह का पूर्ण अधिकार था।[5]

परिमितार्थ : जिस दूत को किसी विशेष परिमिति या विशेष कार्य के लिये भेजा जाये वह परिमितार्थ दूत होते थे।

सन्देशहरः ये दूत केवल राजा का सन्देश दूसरे शासन देश में ले जाते थे।

दूतो के कार्य : दूत को कार्यो मे कई कार्य थे जैसे

- अपने स्वामी की बात को विरोधी पक्ष के समक्ष भली प्रकार प्रस्तुत करना।
- सन्धि प्रस्ताव
- युद्ध टालने का प्रयास
- गुप्त रुप से शत्रु पक्ष के विचारों को जानना ताकि आगे की कार्यवाही की जा सके।
- अपने राजा की प्रशंसा व विपक्षी राजा के कार्यो की निन्दा करना

दूतों के विशेषाधिकार : महाभारत काल के दूतों को कई विशेषाधिकार भी प्राप्त थे जैसे- शत्रु राजाओं द्वारा उन्हें सम्मानित किया जाता था। जैसे उद्योग पर्व के प्रसंग से पता चलता है पाण्डव दूत श्रीकृष्ण को दुर्योधन ने यथाविधि सम्मानित किया था।[6] दूतों का वध नहीं किया जाता था भीष्म ने निर्देश दिया था 'आपात काल में भी दूत का वध नहीं करना चाहिये। दूत का वध करने वाला राजा अपने मन्त्रियों सहित नरकगामी होता है।[7] दूत की अवध्यता को स्पष्ट करते हुये भीष्म ने यह भी कहा 'जो राजा दूत का वध करता है उनके पुत्रों को भ्रूण हत्या का फल भोगना पड़ता है।[8] लेकिन महाभारत में कहीं-कही दूत की विषम परिस्थितियों में वध करने का उल्लेख भी मिलता है। जैसे अपने स्वामी की कही हुई बात के विपरीत बात करना इत्यादि।

इससे स्पष्ट होता है कि महाभारत काल मे दूत का पद अन्तर्राज्यीय (अन्तर्राष्ट्रीय) नीति के सम्बन्धों में शासन व्यवस्था में अत्यन्त महत्वपूर्ण था उन्हें बड़े सम्मान के दृष्टिकोण से देखा जाता था।

गुप्तचर व्यवस्थाः

महाभारत काल में दूतों की भांति गुप्तचरों का भी भारतीय राजनीति में अत्यन्त महत्व था। प्रशासनिक कार्यो में राजा की और से गुप्त सूचनाओं को एकत्रित करने के लिये इन्हें नियुक्त किया जाता था । गुप्तचर कों राजा का नेत्र कहा गया है। महाभारत में कथन है कि राजा के चार चक्षु है। वे गुप्तचरों की आंखों से देखते है।[9] उनके द्वारा राज्य के आन्तरिक व बाह्य समाचार व भेदो को जानकार उसके निराकरण के उपाय किये जाते थे। वेद व्यास जी ने गुप्तचरों के सन्दर्भ मे कहा है राष्ट्र के आंतरिक व बाह्य समाचारों को जानकार ही राजा को कोई कार्य करना चाहिये।[10] एक-एक कार्य के लिये तीन-तीन गुप्तचरों की नियुक्ति की जानी चाहिये जो आपस में एक दूसरे को ना जानते है। उनके प्रतिवेदनों की जांच करनी चाहिये। महाभारत में यह भी उल्लेख है 'राजा को गुप्तचर रुपी नेत्रों से यह जानकारी रखनी चाहिय कि मेरे शत्रु, मित्र तथा तटस्थ नगर, कब क्या करना चाहते है।[11]

गुप्तचरों के गुण : प्राचीन साहित्यों व महाभारत में गुप्तचरों के गुणों का उल्लेख मिलता है । भीष्म ने कहा है 'ऐसे लोगों को गुप्तचर नियुक्त करना चाहिये जो क्षुधा, त्रास, और श्रम सहन करने में सक्षम हो तथा जिन की सम्यक परीक्षा ली जा चुकी हो। स्वामी निष्ठारहित व्यक्तियों को इस पद नियुक्त नहीं करना चाहिये।[12] कामन्दक ने गुप्तचरों के सन्दर्भ में कहा है 'गुप्तचरों को दूसरों की बातों को मन के अन्दर निहित तत्वों को जानने में समर्थ होना चाहिये। वे संकेतों को समझाने वाला, स्मृतिशाली, मधुरभाषी, शीघ्रगामी, विपतियों व कठिन परिस्थितियों को झेलने वाला 'समर्थ, क्षिप्रकारी और प्रत्युत्पन्नमति हो।[13]

गुप्तचरों की नियुक्ति व नियुक्ति स्थल : प्राचीन काल में गुप्तचरों की नियुक्ति अस्थाई, अल्पकालिक व अंशकालिक होती थी। अन्य कार्यो में लगे लोगों को भी वेतन देकर गुप्तचर बनाया जा सकता था। ये धीवर, ग्वाले, शिकारी व

साधु इत्यादि के वेश में घूमते थे। विभिन्न स्थानों पर घूमने के कारण भेदो को जानने में समर्थ हो जाते थे। महाभारत में जब भय के कारण दुर्योधन जलाशय में छिप गया इसका भेद पाण्डवों को धीवरो से प्राप्त हुआ।

गुप्तचरों की नियुक्ति के सन्दर्भ में महाभारत में नियम निर्धारित थे। शान्ति पर्व से जानकारी मिलती है कि 'गुप्तचरों को सभी मन्त्रियों, नाना प्रकार के मित्रो तथा पुत्रों की गतिविधियों को जानने हेतु नियुक्त किया जाता थे। नगर, जनपद व मल्य योग (व्यायामशाली) स्थानों में ऐसी युक्ति से गुप्तचर नियुक्त करने चाहिये, जिससे वे एक दूसरे को आपस में ना पहचान सके।'[14] शत्रु राज्य में ऐसे गुप्तचर नियुक्त करे जिनको कोई जानता पहचानता ना हो। पाखण्डी वेशधारी, तपस्वी, आदि को गुप्तचर बनाकर भेजा जाये।'[15]

गुप्तचरों के प्रकार : प्राचीन भारत में गुप्तचरों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन मिलता है लेकिन महाभारत में इनका अलग से वर्णन नहीं किया गया। महाभारत में उल्लेख है कि इस समय दो प्रकार गुप्तचर माने जाते थे– पाखण्डी वेशधारी, तपस्वी।

गुप्तचरों की कार्य पद्धति : गुप्तचरों की कार्य पद्धति का वर्णन महाभारत में यत्र–तत्र मिलता है। गुप्त कार्य करना गुप्तचरों का काम था। समाज में प्रत्यक्ष रह कर उसे करना सम्भव नहीं था इसलिये गुप्तचर गोपनीय नीति से कार्य करते थे। जिससे परपक्ष (दूसरे पक्ष) की जानकारी प्राप्त करते थे लेकिन यह प्रयास रहता था उनका पर पक्ष को पता ना चले। गुप्तचरों की नियुक्ति में इतनी सावधानी रखी जाती थी कि एक गुप्तचर अपने राज्य के अन्य गुप्तचरों को पहचान नहीं सकता था। भीष्म ने कहा है कि गुप्तचरों को वेश बदलकर तपस्वी, मूक, बधिर, अन्धे, पागलों का वेशधारण करके कार्य करना चाहिये। महाभारत में गुप्तचर के लिए यह निर्देश भी था कि वे बगीचे, घूमने–फिरने के स्थान, प्याऊ, धर्मशाला, बिक्री के स्थान, नगर के प्रवेशद्वार, तीर्थ स्थान, सभा भवन इत्यादि स्थानों पर विचरण करते हुये सूचनाऐ एकत्रित करे'[16] क्योंकि इससे काफी हित होता है और राज्य के विरुद्ध होने वाले षड्यंत्रों की जानकारी मिल जाती है जिस कारण उसका समाधान समय पर करना संभव हो जाता है।

जन साधारण की प्रतिक्रिया को जानने के लिये भी गुप्तचरों की नियुक्ति की जाती थी। गुप्तचरों द्वारा भेद उत्पन्न करवाने का कार्य भी किया जाता था। कौरव पाण्डवों को नष्ट करने के लिये मन्त्रणा करते है कि गुप्तचरों द्वारा कुन्ती व माद्री पुत्रों में फूट पैदा की जाये। इसकी जानकारी भी पाण्डवो को गुप्तचरों से मिली।'[17] शत्रु अगर कहीं भाग जाता या छिप जाता था इसकी सूचनाऐं भी गुप्तचर एकत्रित करते थे। दुर्योधन अपने शिविर में आने वाले शत्रु पक्षीय व्यापारी, गणिका इत्यादि की विधिवत जांच करवाता था क्योंकि शत्रु पक्षीय गुप्तचर इस प्रकार के वेश में भी आ सकते थे।'[18] इस प्रकार प्रत्येक समय शत्रु पक्ष को गुप्तचरों का भय बना रहता था।

गुप्तचर परस्पर संवाद में वाणी का कम व संकेतो का अधिक प्रयोग करते थे। भाषण के रुप में महाभारत में मलेच्छ भाषा का उल्लेख आता है। गुप्तचर इस भाषा का प्रयोग करते थे। कोई भी गुप्तचर परस्पर अपने देश के गुप्तचरों से अनभिज्ञ होते थे उन्हें एक दूसरे का पता नहीं था। अपनी वास्तविकता को प्रमाणित करने के लिये 'कोड वर्ड' का प्रयोग करते थे।'[19]

महाभारत से यह जानकारी भी मिलती है कि गणराज्यों में भी गुप्तचर व्यवस्था सक्रिय थी क्योंकि गणराज्यों में नागरिक भी गुप्तचर का कार्य करते थे।'[20] यह गणराज्यों की उन्नति का कारण था। राजा द्वारा गुप्तचरों से मिलने व सूचनाओं को एकत्रित करने का सब से उत्तम समय संध्याकाल था। राजाओं की और से गुप्तचरों को अच्छा वेतन दिया जाता था ताकि वे ईमानदारी से कार्य करे।'[21]

अध्ययन का उद्देश्य : इस शोध पत्र का उद्देश्य प्रशासन में दूतों व गुप्तचरों की अनिवार्यता, कार्य पद्धति एवम महत्ता को साबित करना है। जो प्राचीन भारत एवं महाभारत काल के प्रशासन में निरन्तर चली आ रही। वर्तमान में भी प्रशासन में इस प्रकार की कार्य कुशलता व निष्ठा का होना अनिवार्य है।

निष्कर्ष के रुप में महाभारत काल की दूत व गुप्तचर व्यवस्था एवम कार्य पद्धति आधुनिक कार्य पद्धति के समान वैज्ञानिक एवम सुव्यवस्थित थी। जिससे दूतो व गुप्तचरों ने अपने –अपने दायित्व का निर्वाह भली प्रकार किया। इससे न केवल देश की व्यवस्था व सुरक्षा संभव हुई, अपितु राजाओं की शक्ति व सम्मान में वृद्धि हुई इसलिये राजनीति व प्रशासन में दूत (राजदूतों) व गुप्तचरों का होना आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. कामन्दकीय नीतिसार 12/32
2. महाभारत उद्योग पर्व 37/27
3. महा. शक्ति पर्व 85/28
4. महा. उद्योग पर्व 39/37
5. नीति वाक्यामृत 13/4
6. महा. उद्योग पर्व 85/86
7. महा. शान्ति पर्व 85/26
8. महा. शान्ति पर्व 85/27
9. महा. उद्योग पर्व 34/34
10. महा. शान्ति पर्व 86/19
11. महा. शान्ति पर्व 86/21
12. महा. शान्ति पर्व 69/8
13. कामन्दकीय नीतिसार 12/24
14. महा. शान्ति पर्व 69/10
15. महा. शान्ति पर्व 140/40
16. महा. शान्ति पर्व 69/12
17. डॉ. कृष्ण कुमार : प्राचीन भारत की प्रशासनिक व राजनीतिक संस्थाऐं, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली (1995) पृष्ठ 240-44
18. डॉ. मन्जु शर्मा : प्राचीन भारत में राजन्य एक तुलनात्मक अध्ययन, आर..बी.एस.ए. पब्लिशर्स जयपुर (2007) पृष्ठ सं 167-170
19. डॉ. जी.पी. नेमाः प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं राजनैतिक विचार एवं संस्थायें
20 डॉ. हरिशचन्द्र शर्माः कॉलेज बुक डिपो, जयपुर (2015) पृष्ठ सं. 422, 425
21 डॉ. कमलेश भारद्वाजः प्राचीन भारतीय समाज व राज्य पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर (1999) पृष्ठ सं. 132-133

भारत–अमेरिका : उत्तर–शीत युद्ध सम्बन्ध

डॉ. जहाँआरा
व्याख्याता, मुस्लिम बालिका महाविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश : *भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व के दो महान लोकतांत्रिक गणराज्य हैं। उत्तर–शीत युद्ध काल में अन्तर्राष्ट्रीय स्वरुप पूर्णतः बदल गये हैं अथवा संशोधित हो गये हैं। भारत व संयुक्त राज्य अमेरिका भी शीतयु) के दुराग्रह से मुक्त हो रहे हैं। भारत व अमेरिका के राजनैतिक–सामरिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध गहरे हो रहे हैं। सामरिक सम्बन्धों का अगला कदम (NSSP) समझौता 2004 तथा भारत–अमेरिका असैन्य परमाणु समझौता (2008) दोनों देशों के द्विपक्षीय सम्बन्धों के क्रान्तिकारी परिवर्तन का संकेत है। दोनों देश पारस्परिक सहयोग की नयी सम्भावनाओं तथा नये अवसरों की तलाश में तत्पर है जिनमें स्वच्छ ऊर्जा, वैश्विक उष्णता, विज्ञान, अन्तरिक प्रौद्योगिकी, उच्च शिक्षा तथा कृषि सम्मिलित है। दोनों देशों के मध्य सहयोग के असीमित अवसर होने के बावजूद नवोदित सामरिक सहयोग के समक्ष कई चुनौतियां हैं। भारत व अमेरिका पारस्परिक घनिष्ठता व सहभागिता से भारतीय उपमहाद्वीप तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व समृद्धि के लिए संयुक्त प्रयास कर सकते हैं जो कि पूरे विश्व के लिये प्रेरणादायक होगा।*

संकेताक्षर : *सामरिक, राजनीतिक व आर्थिक सम्बन्ध, पूंजीवाद, लोकतांत्रिक समाजवाद, द्विपक्षीय सम्बन्ध।*

भारत–अमेरिका के 'नाम के रिश्ते' पाँच शताब्दी पुराने हैं। कोलम्बस द्वारा अमेरिका की खोज (1492) के साथ ही 'इण्डिया–अमेरिका' शब्दों का गठबन्धन (Engagement) हो गया था। कोलम्बस की अमेरिका को 'इण्डिया' समझने की मान्यता (Assumption) का इतिहास की पुस्तकों में एक रोचक प्रसंग के अतिरिक्त 'भारत–अमेरिका' से सम्बन्धित कोई राजनैतिक/कूटनीतिक अर्थ नहीं था। अमेरिका आकर बसने वाले यूरोपवासियों के लिये अमेरिका के मूल निवासी (Red Indians) सबसे बड़े शत्रु थे । 'Indian as Enemy' विचार अमेरिकियों में गहरे तक बैठा हुआ है। अब तक अमेरिका के सैनिक जब शत्रु देश में जाते हैं तो सामान्यतः उसे 'Indian Country' कहा जाता है। किल ओसामा बिन लादेन ऑपरेशन का कूट नाम 'Geronimo' अमेरिका के एक 'Red Indian' के नाम पर आधारित है।'

भारत–अमेरिका में वास्तविक सम्बन्ध 300 वर्ष पश्चात् संयुक्त अमेरिका के गठन के साथ शुरु हुये। 1792 में संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जॉर्ज वाशिंगटन ने बैंजामिन जॉय को कलकत्ता में अमेरिकी वाणिज्य दूत नियुक्त कर तकनीकी रुप से भारत–अमेरिका को जोड़ा। अमेरिका ने भारत की किसी स्वदेशी सरकार से नहीं बल्कि विदेशी ब्रिटिश सरकार से सम्बन्ध स्थापित किये थे। ब्रिटिश सरकार अमेरिका का भारतवासियों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं चाहती थी। इसलिये बहुत कम अमेरिकावासी भारत के बारे में जानकारी रखते थे अथवा जानकारी ही नहीं लेना चाहते थे। भारत आने वाले अमेरिकी व्यापारियों की भारत के मूल निवासियों में कोई रुचि नहीं थी। उनका सम्पर्क केवल ब्रिटिश और फ्रॉंसीसी कम्पनियों के साथ होता था। भारत की स्वतन्त्रता से पूर्व के 150 वर्षों में अमेरिका का भारत के प्रति दृष्टिकोण अलगाववादी, अवहेलात्मक, उपेक्षापूर्ण तथा नस्लीय अहंकार से युक्त था। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में अमेरिका ने ब्रिटिश

सरकार का 'कभी मौन–कभी खुला' समर्थन दिया। द्वितीय विश्व युद्ध के समय अमेरिका की भारत में उत्पन्न यकायक रुचि उसकी अवसरवादी नीति का परिणाम थी। स्वतन्त्रता के नायक समझे जाने वाले अमेरिका के लिये भारत की स्वतन्त्रता महत्वपूर्ण नहीं थी, उसका लक्ष्य अपने मित्र राष्ट्रों की विजय को सुनिश्चित करना था।

स्वतन्त्र भारत की आदर्शवादी गुटनिरपेक्षता की नीति तथा अमेरिका की वास्तविक राजनीति पर आधारित 'साम्यवाद के अवरोध' में कोई मेल नहीं था। जैसा कि उस समय विश्व के अधिकांश देशों के साथ हुआ। भारत–अमेरिका के सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की द्विध्रुवीय प्रकृति से रंगे रहे। स्वतन्त्र भारत में प्रथम सरकार बनाने वाली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक गैर विचारधारात्मक राष्ट्रीय दल था। कांग्रेस में दक्षिणपंथी, मध्यममार्गी तथा वामपंथी सभी विचारधाराओ का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य थे। राष्ट्रीय आंदोलन के समय कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार की राज्य नियंत्रित आर्थिक नीतियों का विरोध भी किया था। भारतीय नेता ब्रिटिश सरकार के वस्त्र, चाय तथा नमक जैसे उद्योगों के नियमन, भारतीय मुद्रा के रुपये को ब्रिटिश मुद्रा के साथ जोड़ने तथा रिजर्व बैंक की स्थापना के विरुद्ध थे।[3] महात्मा गांधी का दांडी मार्च (1930) दुनिया को बदल देने वाले सर्वाधिक प्रभावशाली 10 आंदोलनों की सूची में दूसरे स्थान पर है। (अमेरिका की प्रतिष्ठित टाइम पत्रिका के अनुसार) ब्रिटिश शासन के समय भारतीयों को नमक बनाने का अधिकार नहीं था। नमक सत्याग्रह ब्रिटिश सरकार की राज्य नियंत्रित एकाधिकारवादी नीतियों का प्रतिकार था।[3] परन्तु स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रीय नीति निर्माता तथा देश के प्रमुख प्रशासक पं. जवाहरलाल नेहरु का लोकतांत्रिक समाजवाद में विश्वास था। कांग्रेस का समाजवाद भारत के आर्थिक–सामाजिक विकास का हानिरहित कार्यक्रम था परन्तु नेहरु की छवि विशेषकर अमेरिका में एक 'कम्युनिस्ट' की थी। साथ ही भारत की विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं तथा विवादों के सम्बन्ध में नीतियां तथा व्यवहार अमेरिका की नजरों में सोवियत संघ की ओर झुका हुआ था इसलिये अमेरिका भारत की गुटनिरपेक्षता के प्रति संदेहशील था। अमेरिका की इस 'Miscalculation' ने भारत–अमेरिका सम्बन्धों को 'गलतफहमियों' का शिकार बना दिया।

शीत युद्ध का अन्त भारत–अमेरिकी सम्बन्धों में परिवर्तन की लहर लेकर आया। भारत–अमेरिका सम्बन्ध 'ना शत्रु–ना मित्र' की पिटारी से बाहर आये एवम् दोनों ने अपने सम्बन्धों को शीत युद्ध कालीन विचारधारा की सीमा से मुक्त किया। दोनों देशों में इस बार बहुआयामी सहयोग का धरातल तैयार हुआ। भारत–अमेरिका सम्बन्धों में नई सहस्त्राब्दी का पहला दशक एक नयी शुरुआत लेकर आया। सामरिक रुप से महत्वपूर्ण दक्षिण एशिया क्षेत्र के भूगोल पर भारत का प्रभुत्व, फलती फूलती अर्थव्यवस्था, सैनिक व परमाणु शक्ति, लोकतन्त्र तथा बहुलवादी समाज और सांस्कृतिक प्रभाव ने भारत को अमेरिकी विदेश नीति के लिये मुख्य आकर्षण का केन्द्र बना दिया। जॉर्ज डब्ल्यू बुश और उनकी टीम को बिल क्लिंटन द्वारा 2000 में प्रारम्भ किये गये भारत–अमेरिका सामरिक सम्बन्धों को एक नया रुपान्तरण देने का श्रेय जाता है। बुश भारत को अमेरिका का सामरिक सहभागी बनाने के लिये उत्सुक थे[4]। बुश ने अमेरिका की परम्परागत भारत–पाकिस्तान को जोड़कर (Hyphenation) देखने की नीति का अंत किया। बुश की सामरिक गुरु कॉडालिजा राइस ने अमेरिकी प्रशासन की कठोर, रुढ़िवादी, ऐतिहासिक भारत–विरोधी मानसिकता को सकारात्मक दिशा में बदला। बुश की टीम के दूसरे सदस्य पूर्व अवर सचिव आर. निकोलस बर्न्स ने इस सम्बन्ध में कड़ी मेहनत की और भारत के कई दौरे किये। वह भारत–अमेरिका के भावी सम्बन्धों के प्रति आशावादी थे।[5] बर्न्स ने पिछले साठ वर्षों में सम्बन्ध सुधारने के लिये खोये अवसरों को स्वीकार किया और वे उसे सही करना चाहते थे। बर्न्स भारत–अमेरिका सामरिक सम्बन्धों में हुये परिवर्तन को वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सबसे महत्वपूर्ण सकारात्मक विकास में से एक मानते हैं। सामरिक सहभागिता का अगला कदम (NSSP)[6] समझौता तथा असैन्य परमाणु समझौता (2008)[7] बुश काल की भारत अमेरिका सम्बन्धों में क्रॉंतिकारी रुपान्तरण लाने वाली उपलब्धियाँ हैं। डॉ. मनमोहन सिंह ने जॉर्ज डब्ल्यू बुश को भारत का सबसे बड़ा मित्र कहा था। बराक ओबामा ने राष्ट्रपति बनने के तुरन्त बाद एक घोषणा में कहा था, "हमारी भारत से त्वरित रुप से बढ़ती और गहरी होती मित्रता विश्व के सभी नागरिकों के लिये लाभदायक है तथा भारत की जनता को यह जानना चाहिये कि संयुक्त राज्य अमेरिका की जनता से अच्छा मित्र और सहयोगी उनके लिये अन्य कोई नहीं है।"[8] हेनरी किंसीजर ने भी कुछ समय पहले यह स्वीकार किया था कि उन्होंने कभी नहीं सोचा था कि भारत और अमेरिका इतने घनिष्ठ हो जायेंगे।

दो शताब्दी पूर्व (1792) अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जॉर्ज वाशिंगटन द्वारा प्रारम्भ नाममात्र के भारत–अमेरिका सम्बन्ध नई सहस्त्राब्दी में वर्तमान 44वें अमेरिकी राष्ट्रपति बराक हुसैन ओबामा तक 'स्वाभाविक' तथा 'अपरिहार्य' सहयोगी की अवस्था तक पहुंच गये हैं। ओबामा की भारत यात्रा के समय अमेरिका के लिये लगभग 50 हजार नौकरियों के अवसर पैदा हुये। भारत के कारण अमेरिका में इतनी संख्या में नौकरियां पैदा होना पहला और असाधारण अवसर है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में आदर्श व नैतिकता का पालन अथवा प्रदर्शन महत्वपूर्ण है यह राष्ट्रों के मध्य घनिष्ठता, सद्भाव तथा सामान्य शिष्टाचार के विकास में योगदान देते हैं परन्तु मात्र आदर्श राष्ट्रीय हितों का संरक्षण नहीं करते हैं। विदेश नीति की सफलता राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा और वृद्धि में है। भारत और अमेरिका के सम्बन्ध वर्तमान से पहले कभी इतने उज्जवल नहीं रहे। एक उभरती शक्ति (भारत) तथा एक यथास्थिति समर्थक प्रभुत्ववादी शक्ति (अमेरिका) के दीर्घगामी राष्ट्रीय हितों की 'स्वाभाविक सीमायें' हैं।" भारत के पूर्व विदेश सचिव राजीव सीकरी के अनुसार,"भारत तथा अमेरिका के रिश्ते बराबरी के नहीं हो सकते हैं। अमेरिका के करीबी देश भी उसकी तानाशाही से बच नहीं पाते हैं। दोनों देशों के सम्बन्ध अच्छे होने चाहिये लेकिन उन शर्तों पर नहीं जिन पर वाशिंगटन चाहता है, क्योंकि उन्हें पूरा करना सम्भव नहीं है।"[10]

भारत अमेरिका असैन्य परमाणु समझौता एक लम्बी चुनौतिपूर्ण कूटनीतिक यात्रा के बाद पूरा हुआ है।[11] दोनों देशों के राजनैतिक नेताओं, सिविल सेवकों व विश्लेषकों के शीत युद्ध से ग्रसित पूर्वाग्रह है। इस मानसिकता के कारण दोनों देशों में राष्ट्रीय सर्वसम्मति का अभाव रहता है तथा हर समझौते पर कठोर विरोध का सामना करना पड़ता है। नवम्बर 2009 को भी भारत ने अमेरिका के समर्थन में ईरान के विरुद्ध सुरक्षा परिषद और IAEA द्वारा प्रस्तावित उस प्रस्ताव में मत दिया था जिसमें ईरान की IAEA और सुरक्षा परिषद के निर्देशों का पालन नहीं करने के कारण उसकी आलोचना की गई थी। यह भारत की 30 वर्ष पुरानी शांतिपूर्ण उद्देश्य से परमाणु ऊर्जा विकसित करने की राज्यों की अधिकार की नीति के साथ समझौता था। कांग्रेस सदस्य टॉम लैंटास के अनुसार "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में लेन देन (*quid pro quo*) का व्यवहार होता है। यदि हमारे भारतीय मित्र अमेरिकी समर्थन के सभी लाभ पाना चाहते हैं तो यह हमारा भी अधिकार है कि भारत हमारी आवश्यकताओं को समझे।" यह सम्भावना व्यक्त की जाती रही है कि अमेरिका यह समझ सकता है कि अपने सहयोग के बदले में उसने भारत की निष्ठा (Allegiance) को खरीद लिया है।[12]

भारत–अमेरिका असैन्य परमाणु समझौते की एक महत्वपूर्ण शर्त है कि अमेरिका भारत को परमाणु आपूर्तिकर्त्ता समूह (NSG) से यूरेनियम आपूर्ति कराने के लिये छूट दिलाने का न केवल प्रयास करेगा बल्कि अपने मित्र देशों के साथ मिलकर इस दिशा में ठोस प्रयास करेगा। अक्टूबर 2008 में NSG ने भारत को परमाणु अप्रसार के प्रति पूरी तरह प्रतिबद्ध होने के आश्वासन पर उसे छूट देकर (waiver) भारत को परमाणु क्लब का सदस्य मान लिया था जो उसे पाँच परमाणु शक्ति से सम्पन्न देशों के बराबर अधिकार देता है।[13] यह भारत की ऐतिहासिक सफलता थी क्योंकि उसने बिना परमाणु अप्रसार संधि (NPT) पर हस्ताक्षर किये यह सफलता अर्जित की थी और अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिये परमाणु परीक्षण के अधिकार को भी पूरी तरह सुरक्षित रखा था। परन्तु एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि अमेरिका पी–5 देशों में से एक है, वह जी–8 का भी सदस्य है जिसके पी–5 देश सदस्य हैं। इन संगठनों का सदस्य होने के कारण वह उस संयुक्त घोषणा का भी साझीदार है जो जी–8 देशों ने 2009 में की थी कि केवल एन.पी.टी. पर हस्ताक्षर करने वाले देशों को ही यूरेनियम की आपूर्ति की जायेगी। अमेरिका का भारत के साथ समझौता द्विपक्षीय है परन्तु इसके प्रभाव बहुद्देशीय व बहुआयामी हैं। भारत द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेन्सी (IAEA) से समझौते के अन्तर्गत किये गये पृथ्ककरण के अनुसार नागरिक क्षेत्र के परमाणु संयंत्र अन्तर्राष्ट्रीय निगरानी के लिये खुले रहेंगे जबकि सैन्य क्षेत्र के संयंत्र इससे मुक्त होंगे।[14] 25 जून 2011 की नीदरलैण्ड में सम्पन्न हुई 46 सदस्यीय परमाणु आपूर्तिकर्त्ता समूह (NSG) की बैठक में अमेरिका के भारत को इस समूह का सदस्य बनाने के सुझाव पर विचार–विमर्श हुआ परन्तु समूह ने भारत को समृद्धि और प्रसंस्कृत प्रौद्योगिकी (Enrichment and Reprocessing Technologies - ENR) पर प्रतिबन्ध के लिये मत दिया। बैठक से पहले अमेरिका ने परमाणु आपूतिकर्त्ता समूह के सदस्यों में एक चिंतन पत्र (Thought Paper) वितरित किया जिसमें भारत को NSG की सदस्यता प्राप्त करने के

सुझाव दिये गये थे। इसमें दो विकल्पों का सुझाव दिया गया था प्रथम – भारत को सदस्यता देने के लिये समूह नया मापदण्ड बनाये जिसके अन्तर्गत भारत की एक अप्रसारक (Non-Proliferator) तथा निशस्त्रीकरण के प्रयासों में योगदान देने वाले देश के रूप में भारत की सही–सही स्थिति का वर्णन किया जाये। तथा दूसरा तरीका है – NSG की नयी सदस्यता के लिये उसकी प्रक्रियात्मक व्यवस्था को बाध्यकारी नहीं मानना। NSG की प्रक्रियात्मक व्यवस्था के अनुसार नये उम्मीदवार के लिये सभी मापदण्ड पूरे करने आवश्यक नहीं है। इस आधार पर अमेरिका का सुझाव था कि NSG सदस्य सर्वसम्मति से भारत को सदस्यता देने के लिये निर्णय ले सकते हैं, जिसका आधार भारत का अप्रसार व्यवस्थाओं (Regime) को दिया गया समर्थन व व्यवहार है। NSG का एक महत्वपूर्ण मापदण्ड NPT पर हस्ताक्षर अथवा प्रादेशिक परमाणु हथियार मुक्त क्षेत्र का अनुमोदन है। यदि गैर परमाणु हथियार राज्य है तो अपने सभी परमाणु संयंत्रों को IAEA की निगरानी में लाना तथा NSG के दिशा निर्देशों और अप्रसार प्रयासों पर दृढ़ता होनी चाहिये। परिणामतः भारत की NSG में सदस्यता चुनौतीपूर्ण होगी क्योंकि यह प्रथम बार है कि समूह एक ऐसे देश की सदस्यता पर विचार कर रहा है जिसने NPT पर हस्ताक्षर नहीं किये हैं। पाकिस्तान और इजरायल दो अन्य ऐसे देश हैं। भारत को सदस्यता देने के विरोधी देशों का तर्क है कि भारत को NSG की सदस्यता की अनुमति देने से पाकिस्तान व इजरायल जैसे अन्य देशों से भी मांग आने लगेगी। अपने पत्र में अमेरिका ने यह विश्वास दिलाया है कि भारत NSG के मापदण्ड के अनुरूप खरा उतरेगा। भारत ने अपने सैनिक और असैनिक परमाणु कार्यक्रमों के पृथ्ककरण के लिये कदम उठा लिये हैं। अमेरिका को यह भी विश्वास है कि भारत IAEA नियंत्रण में अपने अतिरिक्त संयंत्रों के भी रख देगा तथा उत्तरदायी निर्यात नियंत्रण 'नीतियों' को लागू करेगा। इस परिपत्र में अमेरिका ने स्वीकार किया है कि ''हम यह मानते हैं कि भारत की NSG में सदस्यता एक जटिल मुद्दा है और सदस्य निर्णय लेने के लिये तैयार हो उससे पहले उन्हें पूर्णरूपेण विचार–विमर्श की आवश्यकता होगी।''[15]

शीत युद्ध के सम्पूर्ण काल में अमेरिका ने भारत विरोधी तथा पाकिस्तान सहयोगी नीतियों को अपनाया। जॉर्ज डब्ल्यू बुश ने शून्य योग खेल तथा भारत पाकिस्तान को जोड़कर अमेरिका की विदेश नीति निर्धारित करने का अंत किया। अमेरिकी प्रशासन के द्वारा भारत पाकिस्तान के साथ सम–दूरी व सम–मित्रता की नीति अपनायी जाती है। भारत को एक सामरिक सहयोगी तथा पाकिस्तान को मुख्य गैर नाटो मित्र घोषित करना एक चतुर कूटनीति हो सकती है परन्तु इससे भारत में अमेरिका के प्रति विश्वास नहीं पनपता है। अमेरिकी प्रशासन के लिये भी यह एक चुनौतीपूर्ण दुविधा है कि वह शीतयुद्धोत्तर मित्र (भारत) और शीत युद्ध कालीन सहयोगी (पाकिस्तान) के विरोधी हितों में सुखद संतुलन कैसे बनाये।

पिछले 20 वर्षों में भारत–अमेरिका सम्बन्धों में हुए गुणात्मक परिवर्तन के मुख्य संचालक अर्थशास्त्र और व्यापार हैं। दो दशक में भारत नेहरु के समाजवाद के मार्ग से हटकर आर्थिक नीतियों की दृष्टि से अमेरिका के नजदीक आया है। शीत युद्ध काल के सीमित भारत–अमेरिका आर्थिक सम्बन्धों का विस्तार हो रहा है परन्तु इसके साथ ही दोनों देशों में आर्थिक तनाव भी है। अमेरिका शीत युद्ध काल से ही भारत पर बौद्धिक सम्पदा अधिकार की अवहेलना का आरोप लगाता रहा है। भारत को अमेरिका में 'अनफेयर ट्रेडिंग पार्टनर' का दर्जा दिया था। अमेरिकी व्यापार जगत भारत के खुदरा व्यापार में निवेश की माँग करता है। परन्तु भारत इस क्षेत्र में विदेशी निवेश के लिये तैयार नहीं है क्योंकि इससे भारत के छोटे व्यापारियों की जीविका पर असर पड़ता है। अमेरिका द्वारा ऐसे समझौते की माँग की जाती है जिससे केवल अमेरिकी निर्यात में वृद्धि होती है। अमेरिका में भारत के दोहरे उपयोग वाली तकनीक के निर्यात पर प्रतिबन्ध है। भारत के वाइस एडमिरल रमनपुरी के अनुसार, अमेरिका से प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण का अर्थ है" वे ही बनायेंगे, वे ही बेचेंगे और कलपुर्जो व सपोर्ट सिस्टम में हमेशा मोहताज बनाये रखेंगे''।[16]

अमेरिका ने अपने H-1B वीजा का शुल्क 320 डॉलर से 2320 डॉलर तथा L-1 वीजा का शुल्क 320 डॉलर से बढ़ाकर 2570 डॉलर करने की घोषणा की है जिसका सर्वाधिक प्रभाव भारत की सूचना प्रौद्योगिकी (IT) कम्पनियों पर पड़ेगा जो अपने विशेषज्ञों के लिये बड़ी संख्या में ऐसे वीजा प्राप्त करती है। भारत सरकार ने वीजा शुल्क में वृद्धि का विरोध किया है तथा इसे विभेदकारी व संरक्षणात्मक बताते हुये इसके विरुद्ध विश्व व्यापार संगठन में अपील करने का निर्णय लिया है। अमेरिकी सरकार ने लगातार तीसरे वर्ष भारत के वस्त्र निर्यात उद्योग

को बाल श्रम का प्रयोग करने के कारण काली सूची में डाल दिया है जिससे इस उद्योग के निर्यात का भविष्य संदिग्ध है।

भारत की अविकसित आधारभूत सुविधायें यातायात, संचार, जल, विद्युत सेवाओं का अभाव, भारत में अमेरिकी व्यापार व निवेश में बाधक है।

भारत के समकालीन इतिहास में भारत–अमेरिका असैन्य परमाणु समझौते ने एक नया अध्याय खोला है। भारत ने अपनी विदेश नीति की स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीय सुरक्षा के हित में एक भेदभाव रहित परमाणु मुक्त विश्व की स्थापना में अपना संकल्प दोहराया है। इस समझौते से भारत व अमेरिका को परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण सहयोग की असीमित सम्भावनायें उपलब्ध होगी। इसके अन्तर्गत पूर्ण नागरिक परमाणु सहयोग, रिएक्टर परमाणु ईंधन आपूर्ति, परमाणु सुरक्षा विकिरण एवं पर्यावरण सुरक्षा सम्मिलित है। समझौता इस बात का संकेत है कि विश्व भारत की शक्ति को पहचान रहा है। भारत तीन दशकों से लगे परमाणु तकनीकी प्रतिबन्धों से मुक्त हो गया है यह भारत की परमाणु ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक होगा। इस समझौते के द्वारा होमी जहांगीर भाभा का भारत को परमाणु शक्ति के रुप में दिखने का सपना साकार हुआ है। परमाणु ऊर्जा के माध्यम से 2030 तक 60,000 मेगावाट विद्युत उत्पादन की सम्भावना है। इससे भारत के परमाणु उद्योग में भी असीम विस्तार की क्षमता प्राप्त होगी। यह सम्पूर्ण विश्व के लिये एक महान आकर्षण है। अप्रैल 2010 में घोषित वैश्विक परमाणु सुरक्षा केन्द्र की स्थापना से दोनों देशों के मध्य आगामी दशकों में सहयोग बढ़ने की सम्भावना है। परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह NSG के नीदरलैण्ड सम्मेलन में प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण तथा सदस्यता के नये मापदण्ड कड़े किये गये हैं जिन्हें अभी सार्वजनिक नहीं किया गया है परन्तु भारत सरकार को अमेरिका, फ्राँस तथा रुस के द्वारा विश्वास दिलाया गया है कि वे भारत के साथ नागरिक परमाणु व्यापार के लिये प्रतिबद्ध है और इन प्रतिबद्धताओं को बदला नहीं जायेगा। भारत की विदेश सचिव निरुपमा राव के अनुसार, "NSG का निर्णय सड़क का अंत नहीं है"।[17] राव ने भारत को सितम्बर 2008 में NSG द्वारा दी स्पष्ट छूट में अपना विश्वास जताया है। अमेरिका के भारत में राजदूत टिमोथी रोमर ने अपने विदाई समारोह में स्पष्ट किया कि उनका देश परमाणु ईंधन यूरेनियम आपूर्ति करने वाले देशों के द्वारा भारत को दी गई छूट का समर्थन पुरजोर तरीके से करेगा। निरुपमा राव ने CNN-IBN को दिये साक्षात्कार में कहा कि भारत उन देशों से परमाणु संयंत्र नहीं खरीदेगा जो भारत को ENR नहीं देगा। राव ने कहा, "हम अपने हितों की रक्षा करेंगे"। राव ने भारत का पक्ष रखते हुए कहा "हितों का एक संतुलन है", "प्रतिबद्धताओं का एक संतुलन है", पारस्परिक आदान प्रदान होता है" अपना पक्ष रखने के हमारे भी तरीके हैं।"[18] राव की स्पष्टोक्ति भारत की वैश्विक शक्ति के रुप में पहचान को अभिव्यक्त करती है। यह परमाणु वस्तुओं और यंत्रों के वैश्विक निर्यात पर नियंत्रण रखने वाली चारों संस्थाओं – NSG, ऑस्ट्रेलिया ग्रुप, वाजनेर ग्रुप (Wassennar Group) तथा MTCR में भारत को सदस्यता की सम्भावना पर बल देती है।

भारत अमेरिका आर्थिक सम्बन्ध असीमित सम्भावनाओं का क्षेत्र है। दोनों देशों के व्यापार, निवेश, रोजगार, सेवाक्षेत्र में सहयोग मजबूत करने के असीम अवसर हैं। भारत की 2020 तक तीसरी सबसे बड़ी (17 ट्रिलियन डॉलर)[19] अर्थव्यवस्था बनने की सम्भावना है। भारत की जनसंख्या बढ़ रही है और अगले 20 वर्षों में कार्य करने वाली आयु में 200 मिलियन जनसंख्या में वृद्धि होगी। भारत की विशाल जनसंख्या में से आधी 25 वर्ष की आयु से कम के होंगे जो भारत के लिये एक बड़ा जनसांख्यिक लाभ है। भारत यात्रा के समय बराक ओबामा ने भारत को "भविष्य का बाजार" कहा था।[20]

अमेरिका के नव निर्वाचित राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प के सम्मुख भी दोनों देशों के मध्य सम्बन्धों के संचालन में कुछ चुनौतियां उभर सकती है। पिछले एक दशक में भारत अमेरिका सम्बन्धों में सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं। परन्तु क्या ट्रम्प ओबामा की नीतियों पर ही चलेगे या नई नीतियों का निर्धारण करेंगे ? यद्यपि ट्रम्प के पास कोई कारण नहीं कि वे मोदी–ओबामा के समझौतों से पीछे हटें, अपने चुनाव अभियान के समय मोदी को "Great Man" कहकर सम्बोधित कर चुके हैं, साथ ही उन्होंने यह भी स्वीकारा है कि भारत के साथ उनके रिश्ते महत्वपूर्ण होंगे। परन्तु फिर भी दोनों देशों के सम्बन्धों को नई दिशा देना चुनौतीपूर्ण होगा। मोदी इस बात से संतुष्ट हो सकते हैं कि ट्रम्प उनकी घरेलू नीतियों को प्रभावित नहीं करेंगे। ट्रम्प काल में दोनों देशों के सम्मुख निम्न चुनौतियां उभर सकती है।

प्रथम क्या भारत अमेरिका के सामरिक सम्बन्ध प्रभावित होंगे, तथा क्या ट्रम्प दक्षिण एशिया में शक्ति संतुलन का

पुर्ननिर्धारण का प्रयास करेंगे ? इस संदर्भ में उनके सामने भारत पाक के विरोधी हितों में संतुलन बनाना कठिन हो सकता है। अमेरिका की अफपाक नीति में पाकिस्तान की महत्वपूर्ण भूमिका रही है यद्यपि कश्मीर के सम्बन्ध में उनके व्यक्तव्य भारत के समर्थन में हैं।[21]

दूसरे भारत संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्यता प्राप्त करने का इच्छुक है। इस संदर्भ में क्या ओबामा द्वारा किया गया समर्थन जारी रहेगा या नहीं ? यदि ट्रम्प समर्थन करते हैं तो वे भारत से क्या अपेक्षाएं रखेंगे ?

यदि ट्रम्प "America First" नीति का अनुसरण करते हैं जैसा कि वे अपने चुनाव अभियान के समय स्पष्ट कर चुके हैं तो यह भारतीय नेताओं के मन में संदेह उत्पन्न कर सकता है। ओबामा-मोदी के समय जलवायु व ऊर्जा सहयोग चरम प्राथमिकताएं रही हैं, परन्तु क्या होगा यदि ट्रम्प पेरिस समझौते से पीछे हटते हैं ?

क्या भारत-अमेरिका के आर्थिक सम्बन्ध प्रभावित होंगे ? आर्थिक क्षेत्र दोनों के मध्य असीम सम्भावनाओं का क्षेत्र है। 2015 में दोनों के मध्य 23 बिलियन डालर का व्यापार हुआ है। यदि ट्रम्प आर्थिक नीतियों में परिवर्तन कर नियम कड़े करते हैं जैसा कि वे अपने चुनाव अभियान के समय कह चुके हैं। ट्रम्प ने चीन, जापान एवं कोरिया की आर्थिक नीतियों की आलोचना भी की है यद्यपि भारत के सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्ट कुछ नहीं कहा परन्तु यदि वे नई दीवारें खड़ी करते हैं तो व्यापार में कमी आ सकती है। यदि वे H1-B वीजा नियमों में बदलाव करते हैं तो भारतीय कम्पनियों को दबाव से गुजरना पड़ सकता है।

अन्ततः यदि ट्रम्प-मोदी के मध्य दोस्ताना सहयोग बना रहता है तो यह दोनों देशों के हित में होगा।

निष्कर्ष

इस प्रकार स्पष्ट है कि शीत युद्ध काल में भारत-अमेरिका के लिए सामरिक व आर्थिक किसी भी प्रकार से आकर्षक नहीं था। भारत-अमेरिका आर्थिक सम्बन्ध 'उत्तर-दक्षिण' मनोवृत्ति के शिकार रहे। अमेरिका के लिए भारत एक ऐसा देश था जिसका विकास उसकी सहायता पर निर्भर करता था, भारत से अमेरिका को अपने लाभ की आशा नहीं थी। अमेरिका ने शीतयुद्ध काल में भारत के साथ द्विपक्षीय आधार पर सम्बन्ध विकसित करने की चेष्टा नहीं की। भारत के साथ उसके सम्बन्धों का निर्धारण कभी वैश्विक नीतियों और कभी क्षेत्रीय नीतियों के आधार पर हुआ। यद्यपि दोनों देशों में 'लोकतन्त्र' एक सामान्य तत्व था, लेकिन शीतयुद्ध की अर्द्ध-शताब्दी में दोनों महान लोकतन्त्र 'विमुख लोकतन्त्र' ही बने।उत्तरशीत युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत के लिए भी अमेरिका का महत्व बढ़ गया था। सोवियत संघ के विघटन से भारत ने अपना विश्वसनीय मित्र खो दिया था। भारत भी अमेरिका के लिए समान रुप से आकर्षक हो गया। पी.वी. नरसिम्हा राव का कार्यकाल (जून 1991-96) शीतयुद्ध के अन्त और उत्तर शीतयुद्ध का संधि स्थल है। शीतयुद्धोत्तर भारत की विदेश नीति की आधारशीला रखने का श्रेय उन्हीं को जाता है। उनके द्वारा नवीन चुनौतियों का सामना करने के लिये भारतीय विदेश नीति में रूपान्तर की प्रक्रिया प्रारम्भ की गई। वर्तमान में भारत-अमेरिका में शिक्षा के क्षेत्र में सहयोग विशेष रुप से देखा जा सकता है। दोनों देशों के सांस्कृतिक सम्बन्धों को प्रगाढ़ करने के उद्देश्य से 2011 में अमेरिका में ''भारत त्यौहार'' मनाने के निर्णय ओबामा यात्रा के समय किया गया।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारत व अमेरिका अपने द्विपक्षीय सम्बन्धों में विद्यमान चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना करने व नवीन सम्भावनाओं की तलाश में निरन्तर प्रयासरत है। विभिन्न मुद्दों पर आपसी सहमति बनाकर आगे बढ़ना प्रगतिशील अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का परिचायक है और भारत व अमेरिका इसी सहमति निर्माण की प्रक्रिया में आगे बढ़ रहे हैं। दोनों की राजनैतिक-सामयिक, आर्थिक, व्यापारिक तथा सांस्कृतिक सहभागिता 21वीं सदी की उल्लेखनीय विशेषता रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *नीली टक्कर, "वाई द रैड इंडियन्स सी रैड", हिन्दुस्तान टाइम्स, जून 12, 2011*
2. *अरविन्द कुमार एण्ड अरुण नगेन्द्रनाथ, "हिस्ट्री ऑफ इंडियन इकॉनोमी - पार्ट-1", डी.एन.ए., 27 जून, 2011*
3. *राजस्थान पत्रिका 30 जून, 2011*
4. *राजनैतिक मामलों के अण्डर सचिव आर. निकोलस बर्न्स का वक्तव्य, सितम्बर 8, 2005, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की हाउस समिति, हियरिंग ऑन : "द यू.एस. एण्ड इंडिया: एन एमरजिंग एण्टेट?" पृष्ठ-1 साथ ही देखें, नेहगिनपाओ फिपगैन, "स्ट्रोंग इन्डो यू.एस. रिलेशन्स आर इम्पोर्टेंट", कोरिया टाइम्स, 11-26 2009, पृ.सं. 1-3*

5. साउथ एशिया एनेलिसिस ग्रुप,
http://www.southasiaanalysis.org/% 5 epapers 26% 5cpaper2579.8feb2008
6. NSSP पर फैक्ट शीट देखें,
http://www.state.gov/t/prs/ps/2004/36290.htm
7. देखें अमेरिका की विदेशमंत्री हिलेरी क्लिंटन तथा भारत के विदेश मंत्री एस.एम. कृष्णा की 3 जून 2010 की टिप्पणी, वेबसाइट
http://www.state/gov/ secretary/vm secretary/vm
तथा राष्ट्रपति ओबामा की टिप्पणी
http://www.whitehouse. gov/thepressoffice
8. वरूण साहनी, "लिमिटेड कॉपरेशन बिटविन लिमिटेड एलाइज : इंडियाज स्ट्रेटजिक प्रोग्राम एंड इंडिया-यू.एस. स्ट्रेटजिक ट्रेड", एशगेट पब्लिशिंग कम्पनी, विल्सटन, यू. एस.ए.
9. टाइम्स ऑफ इंडिया, 20 फरवरी 2011
10. इस समझौते का पूरा प्रारूप देखा जा सकता है, http://www.stategov/t/pa/prs/ps/2007/avg/90050/htm. /ps/2007/avg/90050/htm.
11. ब्रियन हैण्डरिक, "इण्डियाज स्ट्रेटजिक डिफेन्स ट्रांसफोरमेशन : एक्सपैन्डिंग ग्लोबल रिलेशनशिप्स", स्ट्रेटजिक स्टडीज इन्स्टीट्यूट, नवम्बर 2009, साथ ही देखें, माइकेल ए. लेनी एण्ड चार्ल्स डी फरग्युसन, यू.एस. -इंडिया न्यूक्लियर ऑफ कॉपरेशन-ए स्ट्रेटजी फॉर मूविंग फारवर्ड", काउंसिल ऑन फोरेन रिलेशन्स, स्पेशल रिपोर्ट पृ.सं.1-3
12. एस. पॉल कपूर एण्ड सुमित गांगुली, "द ट्रांसफोरमेशन ऑफ यू.एस. इंडिया रिलेशन्स - ए एक्सप्लेनेशन फॉर रैप्रोचमेंट एंड प्रोस्पेक्टस फॉर फ्यूचर"
13. व्हाइट हाउस, ऑफिस ऑफ प्रेस सेक्रेटरी, "प्रेस ब्रीफिंग बाई अंडर सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर पॉलिटिकल अफेयर्स निक बर्न्स" मोर्या शेरेटन होटल एंड टावर्स, नई दिल्ली, इण्डिया, मार्च 2, 2006 देखें सी.आर.एस. उपरोक्त पृष्ठ 18
14. देखें, सी.आर.एस. रिपोर्ट आर.एल. 33292, "इण्डियाज न्युक्लियर सैपरेशन प्लान : इश्युज एंड व्यूज, बाई शेरो स्वासनी, प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने 7 मार्च 2006 को भारतीय संसद में, 'इम्पलीमेंटेशन ऑफ द इण्डिया-यूनाइटेड स्टेट्स ज्वाइंट स्टेटमेंट ऑफ जुलाई 18, 2005 : प्रस्तुत किया। यह उपलब्ध है'
http://www.indianembassy. org/newsite/ pressrelease/2006/mar/sepplan. pdf.
15. संदीप दीक्षित, "यू.एस. सरक्यूलेट्स थॉट पेपर ऑन इंडियन मैम्बरशिप ऑफ एन.एस.जी.", 26 जून 2011, हिन्दू।
16. दैनिक भास्कर, 3 नवम्बर 2010
हिन्दू, "इण्डिया एक्सपैक्ट्स पार्टनर्स टू फुलफिल न्युक्लियरकमिटमेंट्स नाटविद स्टेण्डिंग न्यू एन.एस.जी. रूल्स", हिन्दू 26 जून तथा संजय दीक्षित, "यू.एस. सर्क्यूलेट्स थॉट पेपर ऑन इंडियन मैम्बरशिप ऑफ एन. एस.जी. साथ ही देखें हिन्दुस्तान टाइम्स, अनफेज्ड बाई न्यू एन.एस.जी. रुल्स इण्डिया होप्स टू ज्वाइन टॉप न्यूक्लियर क्लब्स", 29 जून 2011 देखें, इकॉनोमिक्स टाइम्स, 6 जुलाई 2011
17. उपरोक्त, इकॉनोमिक्स टाइम्स, 6 जुलाई 2011, साथ ही देखे मीरा शंकर, "इन्डो-यू.एस. रिलेशन्स कन्टीन्यू टू डीपन", हिन्दुस्तान टाइम्स, 13 जुलाई, 2011
18. गेरार्ड लियोन्स, "इण्डियाज रिसपोन्स टू चाइनाज चैलेंज", इकॉनोमिक्स टाइम्स, 4 जुलाई 2011
19. वॉइस ऑफ अमेरिका, 6 नवम्बर 2010
20. अनुभव गुप्ता, नवम्बर 22, 2016, asiasociety.org/blog/asia.

मालानी क्षेत्र की संगीत आधारित आध्यात्मिक पृष्ठभूमि का तथ्यात्मक आधार

दुष्यन्त त्रिपाठी
प्रवक्ता, स.ध. राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश : *राजस्थान के बाड़मेर जिले का अधिकांश भाग सांस्कृतिक तथा क्षेत्रीय विभाजन में मालानी नाम से जाना जाता है। मालानी क्षेत्र की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में प्राचीन हिन्दू सनातन परंपरा, वैष्णव, शैव, शाक्त आदि के साथ पीर, पैगम्बरों, औलिया आदि एवं दैनिक जागरण, संत समागम, दैनिक सभा परिचर्चा, मेले, पर्व आदि धार्मिक तत्वों के साथ-साथ प्राकृतिक व भौतिक कारक भी महत्वपूर्ण हैं। रात्रि चौपाल व धार्मिक चर्चा, जागरण, गीत संगीत, आदि सहज ही यहां विकसित होते गए। रात-रात भर चलते रात्रि जागरण, जगराते, जम्मे आदि संपूर्ण क्षेत्र में प्रायः आयोजित होते रहते हैं। मालानी क्षेत्र के निवासी पंचतत्व से उत्पन्न सृष्टि के समस्त तत्वों को बड़ी श्रद्धा व विश्वास से ध्याते हैं। भक्ति की दोनो धाराओं (सगुण व निर्गुण) द्वारा जनजीवन को मार्ग दिखलाने वाले गीतों का साहित्य लोक जीवन मे व्याप्त है। भक्ति गीतों के गायक, गायिकाओं एवं मंडलियों मे प्रायः सभी जाति वर्ग के लोग शामिल हैं। प्रस्तुत शोध आलेख मे मालानी क्षेत्र के संत संगीतज्ञ, मठ, तीर्थ मंदिर, प्रमुख मेले, भजन मंडलियों, भजन गायकों गायिकाओ, रचनाकार आदि का तथ्यात्मक उल्लेख है। जिनके द्वारा समग्र मालानी, एक आध्यात्मिक आबोहवा से आप्लावित है।*

संकेताक्षर : *मालानी, आध्यात्मिक, मल्लीनाथ, संत संगीतज्ञ, धार्मिक मेले, भजन मंडलियां, गायक-गायिकाऐं, भक्ति गीत रचनाकार, ईसरदास, मठ, धाम, धूणियां ।*

राजस्थान के बाड़मेर जिले का अधिकांश भाग सांस्कृतिक तथा क्षेत्रीय विभाजन में मालानी नाम से जाना जाता है। "राष्ट्र रक्षा और जन कल्याण का कार्य करते हुए, शरीर के क्षीण होने पर वानप्रस्थी होकर वृक्ष की शाखाओं का आश्रय लेने वाले भरतवंशी क्षत्रियों की तरह मारवाड़ के राठौड़ वंश के यशस्वी शासक रावल मल्लिनाथ "मालो रावल पीर" नाम से जनश्रद्धा के प्रिय पात्र बने वि.सं.1385-1456उनके जीवन संघर्ष व विरल जीवन की अवधि माना जाता है।लोक देवता बाबा रामदेव पीर इनके समकालीन थे।"[1]

मालानी के यशस्वी शासक मल्लीनाथ एक राजा अथवा शासक के रुप मे कम तथा एक त्याग तपस्या की मूर्ति संत, पीर, औलिया के रुप मे अधिक जाने जाते है। उनको भक्ति की इस धारा में प्रवाहित करने वाली उनकी धर्म परायणा पत्नी राणी रुपांदे ने समाज के उपेक्षित वर्ग को भक्ति के माध्यम से राष्ट्र की मुख्य धारा में जोड़ा। कबीर से लगभग 100 वर्षो पूर्व ही इन्होंने धर्म क्रांति का सूत्रपात किया, उस समय के प्रसिद्ध राणा मोकल, रामदेव पीर, पाबू जी, हड़बू जी आदि लोक उद्धारकों को तिलवाड़ा में एकत्रित किया। प्रसिद्ध 'तिलवाड़ा पशुमेला'सैंकडों वर्षो से आज तक इसी स्मृति मे आयोजित होता है। मालानी क्षेत्र मे प्रायः विविध धर्मावलंबी लोग रहते हैं कठिन जीवन शैली के परिणामस्वरुप यहां के जनमानस मे कष्ट निवारणार्थ देवी देवताओं के प्रति अत्यंत आसक्ति है। आस्था की यह पुरानी परंपरा लोक देवी देवता पीर पैगंबरो, भौमियों के प्रति श्रद्धा स्वरुप बैठ गई जिन्हें प्राचीन देवताओं के अवतार स्वरुप मान्यता प्राप्त है। पांच पीर (रामदेवजी, तेजाजी, पाबूजी, हड़बूजी, गोगाजी),सात शक्तियां, आईनाथ, नाकोड़ा भैरु, राणी भटियाणी, हिंगलाज, जोगमाया, गोरखनाथ व अन्य संत,

महंत, मठ, धाम धूणियों के प्रति स्थानीय लोगों की गहरी आस्था है। बाबा रामदेव की अनुसूचित जाति, उच्च वर्ग, मुसलमान, जैन सभी वर्गो में मान्यता है। मुसलमान, अर्द्ध मुसलमान संस्कृति जो हिन्दू और मुसलमान दोनो रीति रिवाजों को मानती है यहां दृष्टव्य है। धर्म के कुछ विश्वास व परम्पराए सम्पूर्ण भारतीय है तो कुछ क्षेत्रीय है। अति रुढिवाद व प्रगतिशील विचारधारा का संयुक्त स्वरुप यहां दिखाई देता है। जसनाथी (जसनाथजी), गोरखनाथी (गोरखनाथ जी), निरंजनी (हरिदास जी), विश्नोई (जांभु जी), सम्प्रदाय का भी क्षेत्र में प्रभाव है। कुलदेवी, शीतला, भैरुजी, नाग पूजा व अन्य देवो की पूजा न केवल मंदिरो में अपितु भक्तों के हृदय में होती है। मूठ, जादू, टोना, डायन प्रथा, ताबीज, शुभ, अशुभ आदि अंधविश्वास जनमानस में व्याप्त है।

Chintamani Parshvanath Jain' temple one of the oldest Jain temples of the area. Keradu was the headquarters of Barmer district previously. It was attacked by Mohammad Ghori in 1140 AD and he destroyed all the temples of the region. The Sun temple(built in the 6th centuryunder the rule of Parmar dynasty) of the region is known as 'Khajuraho of Rajasthan'."[2]

मालानी क्षेत्र मे उपलब्ध कुछ महत्वपूर्ण एतिहासिक साक्ष्यं का उल्लेख प्रस्तुत है–

मालानी क्षेत्र मे उपलब्ध प्रमुख ऐतिहासिक साक्ष्य

स्त्रोत का प्रकार	गांव	स्थिति	ऐतिहासिकता
शिलालेख	दारवां	तालाब के किनारे	500 वर्ष पूर्व
शिलालेख	गाडेसरा	शिव मंदिर मे	200 वर्ष पूर्व
शिलालेख	देताणी	नाडी पर	500 वर्ष पूर्व
शिलालेख	राणासर	मेघवालबस्ती के पास	500 वर्ष पूर्व
हस्तलिखित पुस्तकें	कोटडा	जवान सिंह/बूलीदान सिंह के पास	18 वीं सदी
शिलालेख	बीसूकलां	जोगमाया मंदिर पर	9 वीं सदी
हस्त लिखित ग्रंथ	बाडमेर	चंदा मंदिर	9 वीं सदी
शिलालेख	मोखण्डी	तलाब के किनारे	सं.1505
हस्तलिखित पुस्तक	पादरु	संत ठाकुरदास	300 वर्ष पूर्व
हस्तलिखित पुस्तक	असाडा	वल्लभधोष /हरिवल्लभ जी	1600 से 1900 तक
हस्तलिखित पुस्तक	थोब	पुख भारती जी	
सार्वजनिक शिलालेख	केकड़	संगमरमर पर	600 वर्ष पूर्व
सार्वजनिक शिलालेख	चौहटन	कपालेश्वर महादेव मंदिर	1100 वर्ष पूर्व
ताम्रपत्र	झांक	पोपनाथ जी/जरणानाथ जी	
शिलालेख	खेड	रणछोड़ राय मंदिर	1000 वर्ष पूर्व

मालानी क्षेत्र की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में प्राचीन हिन्दू सनातन परंपरा,वैष्णव, शैव,शाक्त आदि के साथ पीर,पैगम्बरों, औलिया आदि एवं दैनिक जागरण, संत समागम, दैनिक सभा परिचर्चा, मेले, पर्व आदि धार्मिक तत्वों के साथ–साथ प्राकृतिक व भौतिक कारक भी महत्वपूर्ण हैं। दूर दूर तक रेतीले मैदानों, कम वर्षा व बंजर भूमि मे रोजगार के सीमित साधनों के फलस्वरुप पशुपालन ,रात्रि चौपालें व धार्मिक चर्चा, जागरण,गीत संगीत,आदि सहज ही यहां विकसित होते गए। रात–रात भर चलते रात्रि जागरण,जगराते, जम्मे आदि संपूर्ण क्षेत्र में प्रायः आयोजित होते रहते हैं।"सात वार नौ त्यौहार अर्थात सप्ताह के सात दिनों में यहां नौ त्यौहार होते हैं। यहां के मेले, पर्व, त्यौहार रंगारंग व दर्शनीय होते हैं। ये पर्व त्यौहार लोगों के जीवन उनकी खुशियों और उत्साह के परिचायक हैं।"[3]

त्यौहारों का कैलेंडर[4]		
अंग्रेजी महीना	भारतीय महीना	पर्व
जनवरी-फरवरी	माघ	मकर संक्रांति, वसंत पंचमी, शिवरात्रि, चौठ,सूरज सप्तमी
फरवरी-मार्च	फागुन, चैत्र	होली, धुलंडी, गंणगौर, शीतला अष्टमी,घुड़ला, नवरात्रा, हनुमान जयंती
अप्रैल	बैशाख	अक्खा तीज
मई-जून	जेठ	निर्जला एकादशी, गंगा दशमी, वट सावित्री
जनू-जुलाई	आषाढ़	रथ यात्रा, गुरु पूर्णिमा
जुलाई-अगस्त	श्रावण	रक्षा-बंधन, तीज (छेटी), नाग-पंचमी
अगस्त-सितंबर	भादो	गणेश चतुर्थी, तीज (बड़ी), गोगा नवमी, ऋषि पंचमी
सितंबर	अश्विन	पितृ पक्ष, दशहरा, नवरात्र , शरद पूर्णिमा
अक्तूबर	कार्तिक	धनतेरस,दिवाली, भैयादूज, देवोत्थानी एकादशी, गोपाष्टमी, गोवर्धन, करवा चौथ
नवंबर	अगहन	गीता जयंती
दिसंबर	पौष	माल

मालानी क्षेत्र के प्रमुख मेलः मालानी क्षेत्र में राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कई मेले आयोजित होते है। रामदेवरा का मेला पोकरण, मल्लिनाथजी का मेला, तिलवाड़ा (तिलवाड़ा पशु मेला), थार महोत्सव बाड़मेर। पारिवारिक व सामाजिक जीवन में वर्ष पर्यन्त अध्यात्म आधारित त्यौंहार व पर्व के आयोजन चलते रहते है, जिनका सिलसिला निम्न तालिका से स्पष्ट होगा।"Barmer is also famous for the cattle fair (Tilwara).The major festival of the region is the Thar festival which is organised every year by the government."[5]

मालानी क्षेत्र के प्रमुख मेले

स्थान	मेला	तिथि
सिवाना	शीतला माता का मेला	शीतला सप्तमी
घारणा	भोमियाजी मामाजी का स्थान	अक्षय तृतीया,श्रवणी तीज का मेला
भीमगोंड़ा	सोमवती अमावस्या मेला	सोमवती अमावस्या
थानमाता हिंगलाज गुड़ानाल	नवरात्रि का मेला	
आसोतरा	श्वेताम्बर महाराज मेला	बैसाख 5-6
कानाना	शीतला माता का मेला	चैत्र सुदी
कल्याणपुरा	रामदेव का मेला	भादवा सुदी-10
आलपुरा	आलमजी का मेला	भादवा सुदी-2
ढीमड़ी	गोगाजी का मेला	भादवा सुदी-1
भेडाणा	शीतला माता मेला	चैत्र वदी 7
धोरिमन्ना	आलम पशु मेला	माघ वदी 2
सोनेडी	जम्मेश्वर जी का मेला	चैत्र अमावस्या
चालकना/भैरुडी	जगंदबा माता मेला	भादवा सुदी-8
रामजी का गोल	गोगाजी का मेला	भादवा सुदी-9
केकड	देव झूलनी ग्यारस	भादवा सुदी-11
बामणोर	जसनाथी मेला	प्रति माह सप्तमी

चोहटन	मरुकुंभ बेला साईया मेला	सोमवती अमावस्या
आलमसर	पिथैरा वीर व जोगमाता मेला	भादवा तथा चैत्र सुदी-2
तरातरा	जैतपुरी, धर्मपुरी जी का मेला	चैत्र सुदी-2 व माघसुदी-2
कंटल का पार	ईद व होली दिपावली मिलन	एकता व भाईचारे हेतु
माहबर	सफेद आकड़ा शिव मेला	शिवरात्रि
माहबर	बाड़मेर मरु मेला	मार्च माह में
सेलाऊ/पांधी का पार	वीर आलीसा का मेला	फाल्गुन शुक्ल कक्ष
पनावड़ा	खेमाबाबा का मेला	भादवा सुदी-1
बांटांडू	जसनाथ जी सहासंत मेला	भादवा सुदी-7
बायतू	खेमाबाबा का मेला	भादवा व माघ सुदी-1
रावतसर	बाबा भाददान जी का मेला	नवरात्रि
सिणदरी	पशु मेला	मंगसर सुदी-5
केकड़	देव मूलनी ग्यारस	भादवा -11"-6

"तीज त्यौहारां बाबरी ले डूबी गंगौर -अर्थात त्यौहरों के चक्र की शुरुआत श्रावण माह में तीज से होती है तथा समापन गणगौर से होता है"[6] मालानी क्षेत्र को सांस्कृतिक, सांगीतिक व आध्यात्मिक परिवेश देने वाले उपरोक्त वर्णित तथ्यों में से कुछ महत्वपूर्ण कारकों का क्षेत्रीय अध्ययन व तथ्य संकलन प्रस्तुत शोध आलेख को मुख्य विषय वस्तु प्रदान करेगा। इनमें मालानी क्षेत्र के प्रमुख संत संगीतज्ञ, प्रमुख मठ, प्रमुख तीर्थ मंदिर, प्रमुख मेले, भजन मंडलियां, गायक, गायिकाऐं,रचनाकारुं आदि का सूचीबद्ध संकलन प्रस्तुत है :

मालानी क्षेत्र के प्रमुख मंदिर, तीर्थ, पवित्र स्थानः मालानी क्षेत्र में भी भारतीय भक्ति परम्परा के आराध्य राम, कृष्ण, शिव, गणेश, शक्ति, आदि शैव, शाक्त व वैष्णव देवों, लोक देवी देवता को दर्जा देकर आराध्य माना गया है। इनमें बाबा रामदेव, राणी भटियाणी, झूंझार सती आदि का प्रमुख स्थान है। मालानी के लोग पंचतत्वों से आप्त सृष्टि की पूजा अर्चना श्रद्धा भाव से करते है। पीपल, तुलसी, वटवृक्ष, बिलपत्र, खेजड़ी, रोहिड़ा, नीम आदि की पूजा, राम, कृष्ण, दुर्गा, ब्रह्मा, हनुमान, शिव आदि पंचदेव के साथ पृथ्वी, आकाश, जल, पर्वत, वनस्पती आदि प्राकृतिक तत्वों को देवता का दर्जा देते है। "ईश्वर व मनुष्य के बीच सम्बंध स्थापित करने का एक माध्यम धर्म है। जाति, कुल, देश काल और परिस्थितियों से निरपेक्ष होकर नैतिक दायित्व का निर्वाह धर्म है। धर्माचार अथवा नैतिकता समाज परक है और धर्म साधना व्यक्ति निष्ठा।"[7] यहाँ पश्चिम का खजुराहों कहा जाने वाला मंदिर समूह 'किराडू' है। शाक्त परंपरा में विरात्रा माता धाम, राणी भटियाणी धाम, नागणेची तीर्थ धाम, पार्श्वनाथ जैन तीर्थ, नाकोड़ा भैरव तीर्थ, गरीबनाथ मंदिर, नाथ संप्रदाय शाखा, तिलवाड़ा मल्लिनाथ धाम, कबीरपंथी इत्यादि भक्ति की ज्योर्तिमय धाराऐं जन-जन को दिशा देती हैं। साथ ही खेमा बाबा, राव रिणमल, ईशरदास जी भादरेस, डूंगरपुरी बाबा, माजीसा इत्यादि लोक देवता के रुप में भक्ति परंपरा के सशक्त केंद्र हैं, जिनकी महिमा, उपदेश व चरित्र रुपी भजन गीत, नीति विषयक, गुरु महिमा, फकीरी, विरहणी, हेली, सुरता आदि आत्म गीत सामाजिक बुराईयों पर अंकुश रखते हुए आत्म निर्धारित मार्ग प्रदान करते हैं।

मालानी क्षेत्र के प्रमुख मंदिर, तीर्थ, पवित्र स्थान		
जूना जैन मंदिर	सिवाना	12 वीं सदी
किराडू मंदिर समूह	किराडू	11 वीं सदी
रणछोड़ राय मंदिर	खेड़	13 वीं सदी
राणी भटियाणी मंदिर	जसोल	

सूर्य मंदिर	छेवका	13 वीं सदी
चिंतामणि पार्श्वनाथ जैन मंदिर	बाड़मेर	12 वीं सदी
जैन मंदिर	मेवानगर	13 वीं सदी
नाकोड़ा तीर्थ	नगर	जनश्रुति 2300 वर्ष पूर्व
सिदेश्वर महादेव मंदिर	बाड़मेर	प्राचीन
विरात्रा माता मंदिर	चौहटन	प्राचीन
ब्रह्मा मंदिर	आसोतरा	
हिंगलाज मंदिर	सिवाना	प्राचीन
अभयधाम भीमगोड़ा	सिवाना	5000 वर्ष पुराना
हल्देश्वर महादेव मंदिर	सिवाना	5000 वर्ष पुराना
भोमियाजी (भोभा जी) का स्थान	घारणा	1100 वर्ष पुराना
अन्नपूर्णा माता, भड़क बाबा	सिणेर	1100 वर्ष पुराना
महादेव, आसापुरी व सूर्यनारायण मंदिर	कुसीव	पांडव कालीन
कोटेश्वर महादेव मंदिर	गुड़ानाल	1000 वर्ष पुराना
थानमाता हिंगलाज मंदिर	गुड़ानाल	1500 वर्ष पुराना
विष्णु मंदिर व अन्य मंदिर	कुण्डल	1100 वर्ष पुराना
झूया प्राचीन देवी का मंदिर	समदड़ी	2500 वर्ष पुराना
प्राचीन मंदिर	दूघवा	750 वर्ष पुराना
नागणेची माता मंदिर	मेड़ाना	700 वर्ष पुराना
कपालेश्वर मंदिर, व सुड्ये का कुंड	चोहटन	हजारों वर्ष पुराना-[8]

उपरोक्त वर्णित स्थान प्राचीनता, क्षेत्रीय प्रसिद्धि तथा आस्था के अधिक प्रचलित केन्द्रो के कारण उल्लेखित है, अन्यथा एक गांव मे ही छोटे बड़े 10 स्थान भी मानें तो उल्लेख करना भी मुश्किल हो जाएगा।

मालानी क्षेत्र के प्रमुख मठ, धाम, धूणियां

मोकलसर मठ	मोकलसर
नागाजी की समाधि	बनाना
गंगापुरी मठ	पिंडारन
किटनोद मठ	जीवित समाधि
जोगमाया,बाबा की समाधि	बोर चारंणान
तिलोक भारती का धूणा	बामड़ला
डूंगरपुरी का मठ	चोहटन
चंचल प्राग मठ	बाड़मेर
तारात्रा मठ	तारात्रा
भवानी गिरी मठ	बाडमेर
जसनाथ आश्रम	लीलसर
मरूधर पीठ	गूढ़ामालानी
मियाइ (मगनपुरी) मठ	शिव
हमीरपुरा मठ	बाड़मेर
धर्मपुरी जी का धूणा	तारात्रा
झूंपा मठ	समदड़ी

भीमगौड़ा मठ (अभयराम)	सिवाना
परमानंद आश्रम	बाड़मेर
लादगर की समाधि	दूधू
ईसरदास जी की समाधि	खुडाला
दूधश्वर महादेव मठ	पायला कलां
शिव मठ	सिणधरी
लाला बाबा समाधि	राणासर खुर्द
खेतपालजी का धूणा	धारवी खुर्द
हेमदास संतधाम	हरसाणी
नाथ मठ	माड़रवा एवं चौहटन
धर्मपुरी मठ	लेलु
भारती मठ	सिणधरी
मोहनपुरी, प्रतापपुरी मठ	विरात्रा
ईसरदास मठ	मादरेस
कबीर आश्रम	समदड़ी

लोक गीत मानव जाति का आदिम स्वर है । इसमें मानव के सुख-दुःख, आल्हाद, पीड़ा, रोष, संघर्ष, स्नेह पर आधारित घटनाओं का क्रमबद्ध ऐतिहासिक अध्ययन किया जाये तो इसमे मानव जाति का सामक्त सामाजिक राजनैतिक, आध्यात्मिक, पारिवारिक इतिहास परिलक्षित होगा। मालानी क्षेत्र के लोक गीतों की शैली अत्यंत सरलतम व जटिल, अलंकृत व सादगी पूर्ण व्यावसायिक कुशलता के ऊंचे स्वरों से मंडित, अभिजात रागदारी युक्त, आदि विविध संदर्भो को परिलक्षित करती हैं। । मालानी क्षेत्र के निवासी पंचतत्व से उत्पन्न सृष्टि के समस्त तत्वों को बड़ी श्रद्धा व विश्वास से ध्याते हैं। रात भर चलने वाली भजन मंडलियों, संर्कीतन, धार्मिक अयोजनों में संपूर्ण जन समूह श्रद्धा भाव से उपस्थिति देता है। भक्ति की दोनो धाराओं (सगुण व निर्गुण) द्वारा जनजीवन को मार्ग दिखलाने वाले गीतों का साहित्य लोक जीवन मे व्याप्त है।भक्ति गीतों के गायक, गायिकाओं एवं मंडलियों मे प्रायःसभी जाति वर्ग के लोग शामिल हैं, जिनमे ब्राह्मण, जैन, खत्री, मेघवाल, राजपूत, लुहार, लंगा, मांगणियार, ढोली, स्वामी, जोगी आदि हैं। यहां के लंगा, मागणियार गायक वर्ग तो सामान्यतः "राजस्थनी लोक गायन शैली के प्रतिनिधि कलाकार हैं ही" लेकिन प्रस्तुत शोध आलेख मे उल्लेखित गायक, प्रायःदैनिक रुप से पारिवारिक, मांगलिक अनुष्ठान, मंदिर मठों पर वार-तिथी-पर्व आदि पर, भजन गायकों का वर्ग है जो किसी नाम, क्षेत्रीय प्रतिष्ठा अथवा प्रसिद्धि प्राप्त गायक नहीं है लेकिन इन गायकों, संत संगीतज्ञ, मठ, तीर्थ मंदिर, प्रमुख मेले, भजन मंडलियों, गायिकाऐं, रचनाकारं आदि ने परिवार, गांव एवं क्षेत्र में भक्ति गीतों की प्रस्तुति से समग्र मालानी को एक आध्यात्मिक आबोहवा प्रदान की है।

मालानी क्षेत्र के प्रमुख संत संगीतज्ञ

रंगनाथ घर स्वामी	स्वामी	कुसीप	छगनदास	संत	दारवा
चंदनदास/ओमदास	संत	पादरु	लिकमदास	संत	चबा
कैलाशचंद्र	संत	गोलिया	श्राजूदास	संत	चबा
मोहनदास	संत	टसराबा	छीपदास	संत	चबा
डूंगरदास	संत	टसराबा	कुम्मदास	संत	बालोतरा
पारसनाथ संत	जेगी	असराबाउंडा	जगदीशपुरी	संत	चौहटन
गुलाबदास/हुकमदासजी	संत	जागसा	भवानीगिरी	संत	बाड़मेर
बंजरंगदाय	संत	भाखरपुरा	खुशालगिरी	संत	बाड़मेर
जयरामदास	संत	लुम्बानास	नारायणपुरी	संत	हमीरपुरा
संत ठाकरा राम	संत	मेहलू	मगनपुरी	संत	भीयाड
लालगिरी/चूनागिरी	संत	दारवा	शंभूनाथसैलानी	संत	बाड़मेर
मोहनदास	संत	दारवा	डूंगरभारती	संत	पचपदरा
टीकमदास	संत	दारवा	मोठनाथ	संत	लीलसर

मालानी क्षेत्र में प्रमुख महिला भजन गायिकाऐं

नाम	जाति	गांव	रूपा	मेघवाल	खारी
बिदामी /बाबूलाल	संत	बामसीन	पुरी	मेघवाल	सिंदासवा
भांति देवी	जैन	असाड़ा	चीमू/शिवदान	जाट	स्तासर
समदा देवी	संत	असराबा चौहानान	धूड़ी	जाट	स्तासर
वरजु देवी	चौधरी	असराबांउडा	कस्तूरी	साध	बगतों की बेरी
सीता देवी	श्राव	कानाना	पेपा/आदपुरी	स्वामी	खड़ीन
गुणी बाई	राजपूत	कल्याणपुर	धूली	मीरासी	लूणा जालीया
भांति बाई	ब्राह्मण	कल्याणपुर	रम्भा/मोटाराय	मेघवाल	उण्डरवा
अजोति/पूनमा	भील	सिमालिया	सीदां/वीरा	मीरासी	सनाऊ
फूलो/बदरीराय	नगारची	किटनोद	गजी/राजाराम	दर्जी	दुधवा

उकरड़ी /बख्शाराम	भील	गोपड़ी
हकली/मिश्राराम	भील	गोपड़ी
केसर कंवर	पुरोहित	कैलनकोट
खमादेंवी/नगाराम	सोनी	दुधवा
मोती देवी खेताराम	सोनी	दुधवा
तुलसीदेवी भीमाराम	भील	दुधवा
सीता/तोगाराम	भील	गोलगांव
सोहनी/रणछेरराम	चौधरी	जाटासा
गंगा/उमाराम	जाट	डबोईबोर
मगी/दराजराम	जाट	डबोईबोर
अणसी/रीडमलराम	विश्नोई	माणकी अरणियाली
लक्ष्मी/आईदानराम	विश्नोई	माणकी अरणियाली
पूनमी/डालूराम	जाट	अरणियाली
गवरी/प्रेमाराम	मेघवाल	लूणवा
तीजो/रतनाराम	जाट	सुदाबेरी
तीजां/दीवाराम	जाट	मीठी
केसी/गुमना	सुथार	धोरीमन्ना
भूरी/वगताराम	विश्नोई	बामड़लरा
बरजू/हरीराम	विश्नोई	सोभाला
हीरा/रामूराम	विश्नोई	सोभाला
गौरादेवी	विश्नोई	सोनड़ी
अतरी देवी	दर्जी	लुहारवा
सुआ/काला	मीरासी	गंगासर
अतिया/माला	मीरासी	गंगासर
मीरा/चूनाराम	जाट	केकड़
पूरोदेवी	जाट	मंडासर
रवतू	मीरासी	मीठड़ा खुर्द
बीरा	मीरासी	राणासर कलां
जेती	विश्नोई	राणासर कलां
अणदी	विश्नोई	खारी

गंगादेवी/पत्ताराम	सुथार	सुराचारणान
तुलसीदेवी/सुमसिंह	राजपूत	सुराचारणान
किस्तूरी/तामसराम	जटिया	लीलसर
मीरो/खुमाराम	जटिया	लीलसर
भोमा/भीखा	चौधरी	बायतुभोपजी
धर्मा/ऊर्जा	सुथार	बायतुभोपजी
भीखो/जोसी	ढाढी	सनाऊ पदमसिंह
जीयो/डालूराम	ब्राह्मण	सनाऊ पदमसिंह
गुमनी/पदमाराम	सुथार	सनाऊ पदमसिंह
सागरी /कालूखां	मिरासी	पनावड़ा
असुदेवी/रामाराम	सुथार	मालवा चारणान
जमना/लक्ष्मणगिरी	स्वामी	अकदड़ा
वीरो/कानाराम	जाट	अकदड़ा
दाख/मीठाराम	जोगी	सोहड़ा
कसुबी/खानू	मेघवाल	झांक
तुलसी/खेताराम	लुहार	छीतर का पार
उशा	ब्राह्मण	सिणधरी
सूरज कुमारी	चारण	सिणधरी
सूवा देवी	स्वामी	खुडाला
गेरो देवी/रिमनू	ढाढी	सरनू
केशी/नरीगाराय	विश्नोई	सियोलो की ढाणी
सजनी/घनाराम	जाटं	सियोलो की ढाणी
डूमरती/अमराराम	जाटं	सियोलो की ढाणी
इमरती/जगराम	जाट	मूढणों की ढाणी
रुपा/पदमाराम	जाट	घीर जी की ढाणी
तजी/बगताराम	कुम्हार	नागडदा
वगती बाई	श्रोमाली	बालोतरा
लूणी/गंगाराम	कुम्हार	बालोतरा

मालानी क्षेत्र की प्रमुख भजन मंडलिया

मांगीलाल एवं पार्टी	बेली	जेठन्तरी
भांकरलाल भजन मंडली	भील	सुरपुरा कांकराला
रेवत भारती भजन मंडली	स्वामी	
जुगताराम एण्ड.पार्टी	लुहार	रेवाड़ा
रामसिंहराजपुरोहित एण्ड पार्टी	राजपुरोहित	सिमरखियापुरी
हमीरसिंह एण्ड पार्टी	राजपुरोहित	सिमरखियापुरी
गुमानपुरीकरनापुरी एण्ड पार्टी	स्वामी	कोठला
बिजला एण्ड पार्टी	भील	थोर चारणान

भंवराराम मगाराम एण्ड पार्टी	नाई	सावलोर
पोकरदास एण्ड पार्टी	मेघवाल	बाड़ाऊ
गुलाराम एण्ड पार्टी	गुरू	बाड़ाऊ
प्रहलादराम एण्ड पार्टी	गुरू	सोडियार
मानाराम एण्ड पार्टी	मेघवाल	बाड़ाऊ
हुकमाराम एण्ड पार्टी	चौधरी	सुवाडा
नगा खां एण्ड पार्टी	मेग	कंटल का पार

माना जीवा एण्ड पार्टी	मेघवाल	बोर चारणान
मिश्रीमल भूरचंद एण्ड पार्टी	महाजन	बोर चारणान
मानाराम एण्ड पार्टी	भील	मंगता
फलगूदास एण्ड पार्टी	साध	मंगता
मौहब्बत राम एण्ड पार्टी	मेघवाल	सिदासवा हरनियान
आखा खां एण्ड पार्टी	ढोली	सिदासवा हरनियान
गुलाब भारती	स्वामी	सिदासवा हरनियान
गुणेशीराम एण्ड पार्टी	पुरोहित	लुम्बावास
भांकरलाल राणामल एण्डपार्टी	देशान्तरी	चौहज
करीम खां एण्ड पार्टी	मीरासी	बुरहान का तला
मोहन खां एण्ड पार्टी	ढाढी	घनाऊ
कुम्भाराम एण्ड पार्टी	मेघवाल	घनाऊ
रामाराय तेजाराम एण्ड पार्टी	चौधरी	बिजराड
किस्तूराराय एण्ड पार्टी	मेघवाल	बिजराड

पठान खां एण्ड पार्टी	मीरासी	विशाला
मंगलाराम एण्ड पार्टी	भील	नयी जसाई
मजनाराम एण्ड मंडली	मेघवाल	नयी जसाई
पीपाराम भजन मंडली	मेघवाल	नयी जसाई
राम भारती भजन मंडली	संत	परा जसाई
हिंगलाज धाम भजन मंडली	संत	जसाई
सैंगार राम एण्ड पार्टी	मेघवाल	खरिया सेतराऊ
दला, उमेदा एण्ड पार्टी	जाट	बान्दरा
रामाराम एण्ड पार्टी	भील	पनावड़ा
मंगला,ताजा,कुम्भा एण्ड पार्टी	मेघवाल	बायतुभोपजी
रूपा पूनमोणी एवं दल	मेघवाल	झांक
पूनमाराम एवं दल (रामलीला)	ब्राह्मण	झांक

मालानी क्षेत्र मेंपुरुष भजन गायक		
दयाराम/श्री सवाराम	पुरोहित	पाऊकांरवी
जालमसिंह/भीमा जी	स्वामी	धीरा
जगन्नाथ	स्वामी	धीरा
मेडाराम	स्वामी	धीरा
रूपाराम/जेठाराम	मेघवाल	बामसीन
गणेशराम/मोमताराम	पुरोहित	देवड़ा
फोजा खां/वगता खां	मुसलमान	सांवरडा करमावास
तुलसीदास/शंभूदान	राव	समदड़ी
नरपतलाल/हीरालाल	मोची	पादरु
लाखाराम/प्रभुराम	रेवारी	पादरु
चतुराराम गोयल	कुम्हार	असाड़ा
वल्लम घोव	श्री माली	असाड़ा
केराराम	मेघवाल	उमरलाई
कु. नारायण	राजपूत	उमरलाई
भगवानराम	ब्राह्मण	कल्याणपुरा
बगदगिरी	स्वामी	कल्याणपुरा
चन्द्रदान	चारण	घड़ोई चारणान
छुर्गाराम	मेघवाल	धर्मसर
भीमगिरी	स्वामी	कंवरली
मांगीलाल/ जोगाराम	जटिया	कोरणा
रामदास महाराज	पुरोहित	जगसा
चंदण खां /जीवे खां	लंगा	गोपडी
काननाथ/शंभुनाथ	जोगी	बेदरलाई
मुसेह खां/सुबान खां	लंगा	गोपडीकोरणा
मागाराम/मानाजी	मेघवाल	बुडीवाडा

खुशालाराम	पुरोहित	भाखरपुरा
ठजाराम	दरोगा	भाखरपुरा
कासूराम	साध	भाखरपुरा
नरसीराम	मेघवाल	भाखरपुरा
प्रहलादाराम	मेघवाल	भाखरपुरा
कुम्भाराम जोगाराम	मेघवाल	बरिडोका तला
रणछोड़ भार्मा	ब्राह्मण	मठिड़ाखुर्द
मजीद/सालख दल	मुसलमान	बामणोर
भगवानाराम/भैराराम	विश्नोई	कबूली खारी
बखता/दाना खां	भागणियार	चौहान
वीरमगर/चेतनपुरी	स्वामी	चौहान
जगदीशपुरीचेलाफत्तेपुरी	स्वामी	चौहान
केसरा/हंसा	मेघवाल	चौहान
देवीचंद/मुलचंद	जैन	चौहान
हका/मुरीद खां	मागणियार	चौहान
सुहारा खां	मुसलमान	टालमसर
विरधाराम	सुथार	टालमसर
खीमदान	चारण	टालमसर
घेनाराम	जाट	टालमसर
राणा/दातु खां	मुसलमान	रमजान की गफन
प्रभुलाल मेघवाल	मेघवाल	सियानी
मूला तिलोकराम	मेघवाल	सियानी
डामराराम/रामजीराम	मेघवाल	सियानी
रेशमाराम/सुमराराम	मिरासी	सियानी
मासीगाराम/दानाराम	मेघवाल	चौथीया

ISSN 2277-5587

तेजपुरी गोस्वामी	गोस्वामी	बुड़ीवाडा
ईसर जी/खुशालराम	जोशी	टापरा
पूरणपुरी	स्वामी	बगावास
चन्दू देवी/राणाराम	ढाढी	अरणियाली
जेठपुरी	स्वामी	लूणवा
भारीफखां/फकीर मौ	ढोली	गुडामालानी
भेराराम/चिमनाराम	सुथार	गुडामालानी
हनुमान खां/खोग खां	ढाली	गुडामालानी
बाबा हरिघर	स्वामी	भेडाणा
धनपुरी स्वामी	स्वामी	भेडाणा
आईदान राम	सुथार	पीपराली
कुम्भगर	स्वामी	कितनोरिया
जेठाराम	मेघवाल	नवातला राठौडान
करीमखा/सुलमान खां	ढाढी	भीमथल
जौहरीलाल गायणा	विश्नोई	सोभाला
सत्यनारायण	विश्नोई	सोभाला

भगवानराम सज्जनराम	भील	छेरासर
ईशरदान/परिदान	राव	हाथमा
सीताराम/भण्डाराम	मेघवाल	हाथमा
छुगाराम/गोकलाराम	मेघवाल	हाथमा
नगा मांगणियार	मिरासी	लूणाजालिया
वीजाराम/जवाराम	भील	भादरेस
बरकत खां	मिरासी	नयी जसाई
दैलसिंह	राव	जसाई
घूड़ाराम/रतनाराम	भील	मीठड़ी
माना/गनी खां	ढाढी	सनावड़ा
मलाराम/खंगाराम	मेघवाल	लीलसर
रूपाराम/सुगाराम	ब्राह्मण	लीलसर
डूगराराम/तुलच्छाराम	अ.जाति	श्रामसर
नायाराम,पूरखाराम	अ.जाति	श्रामसर
सोनाराम/गोविदराम	ब्राह्मण	बायतु
दयाराम/फूसाराम	ब्राह्मण	बायतु

मालानी क्षेत्र के प्रमुख भक्ति गीत रचनाकार		
संतईसरदास भादरेस	टीकमदास	संत डूंगरपुरी
अमराराम सिणधरी	बनानाथ	शंभूनाथसैलानी
बालक नाथ भाडखा	चनणशाह	डूंगरभारती
मूलाराम	शेखफरीद	संत निर्भयपुरी
उमाराम	मुरादखां	पताराम
कृष्णदास	खेताराम	

मालानी क्षेत्र एक ओर लोक संगीत की सौंधी महक देता हुआ, सरलता, तरलता व जीवन का आनंद रस प्रस्तुत करता है। वही दूसरी और यहाँ के लोकसंगीत में अन्य प्रदेशों की तुलना में शास्त्रीय तत्वों यथा कण, खटका, मुर्की तान, राग स्वर व ताल की परिष्कृतता तथा गायन में शास्त्रीय व लोक तत्वों का अद्‌भुत समन्वय है। इस दृष्टि से यहां के लोक संगीत को शास्त्रीय संगीत के नियमानुसार वर्गीकृत व विश्लेषण में पूर्वतः न्याय करने का प्रयास किया जा सकेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ. डी.बी क्षीरसागर, संत शिरोमणि राणी रुपांदे और रावल मल्लिनाथ*
2. *http://barmer.rajasthan.gov.in/content/raj/barmer/en/about-barmer/History-features.html*
3. *डी.आर.आहूजा,राजस्थान लोक संस्कृति व साहित्य, पृ. 62*
4. *वही पृ.82*
5. *http://barmer.rajasthan.gov.in/content/raj/barmer/en/about-barmer/History-features.html*
6. *http://tourismguideindia.com, क्षेत्रीय अध्ययन,साक्षत्कार आधार द्वारा*
7. *डी.आर.आहूजा, राजस्थान लोक संस्कृति व साहित्य, पृ.80*
8. *डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.99*
9. *मालानी क्षेत्र संबंधित तालिकाऐं,–राजस्थान का सांस्कृतिक सर्वेक्षण : जवाहर कला केन्द्र, क्षेत्रीय शोध अध्ययन,सर्वेक्षण, साक्षत्कार, परिचर्चा के आधार द्वारा संकलित।*

सल्तनतकालीन उत्तर भारत में सामान्यजन के मनोरंजन के साधन

डॉ. निर्मला कुमारी मीणा
सहायक आचार्य, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश *: मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जिसने हर युग में अपनी आवश्यकता के अनुसार मनोरंजन के साधनों का विकास किया है। सल्तनतकालीन उत्तर भारत में सामान्यजन के मनोरंजन के साधन उस युग की नब्ज के अनुसार थे जिन पर उस युग की सैनिक प्रवृत्ति हावी थी। चौगान, शिकार, पशुओं की लडाई, घुड़सवारी आदि अमीरों के मनोरंजन के साधन थे वही सामान्य जनता अपने नीरस जीवन को मेले, त्योहार, रामलीला – कृष्णलीला, तमाशा , नट, विदूषक, संगीत व नृत्य से रसमय बना लेती थी। इस काल में सामान्य जनता के बीच रज्म व वज्म प्रणाली के मनोरंजन के साधन लोकप्रिय थे। मेले व त्योहार मनाने का कारण धार्मिक होता था परंतु अप्रत्यक्षरुपेण इनके माध्यम से गरीब जनता खुशी मना लेती थी। हिन्दुओं के प्रभाव में आकर मुस्लिम जनता में भी त्योहार, तीर्थयात्राएँ, उर्स लोकप्रिय हो गये थे।*

संकेताक्षर *: रज्म, वज्म, रबाब, शमा, बहुरुपिये, कीमारवाजी, उर्स, तजाकिरे।*

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, जो विविध प्रकार के मनोरंजक साधनों से आनन्द का अनुभव करता है। समय के साथ मन को अनुरंजन करने वाले शिकार, खेलकूद, उत्सव, तीज–त्योहार व मेले आदि मनोरंजन के साधनों का प्रादुर्भाव हुआ। देखा जाये तो मनोरंजन की विधाओं ने युग के अनुरूप अपना स्वरुप बदला और मनोरंजन के नये–नये आयामों को भी जन्म दिया। विवेच्यकाल के मनोरंजन के साधनों पर उस युग की सैन्य प्रधान और दुःसाहसी प्रवृत्ति की छाप दिखाई पड़ती है। सामान्य जनता के मनोरंजन के साधन उस युग की नब्ज के अनुरुप थे। अशरफ साहब ने भी लिखा है कि उस काल के आमोद–प्रमोद के साधन तात्कालिक सैनिक प्रवृत्ति से अत्यधिक प्रभावित थे। इनको दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है – रज्म या युद्ध प्रणाली तथा वज्म या सामाजिक आनंद। एक औसत प्रतिष्ठित व्यक्ति कुछ अंशों में एक क्रियाशील सैनिक होता था। युद्ध की समाप्ति के बाद वह अपने शारीरिक श्रम की पूर्ति रज्म पर आधारित खेलों में व्यस्त रहकर करता था। असैनिक जनता सामयिक त्योहारों व मेलों से अपना मनोरंजन करती थी।[1] यही कारण है कि इस काल में सामान्य जनता के बीच रज्म व वज्म प्रणाली के मनोरंजन के साधन लोकप्रिय थे। चौगान (पोलो), शिकार, पशुओं की लडाई, घुड़सवारी आदि पर शासक व धनिक वर्गो का एकाधिकार था। वही दूसरी ओर चौपड, ताश, शतरंज, कबूतरबाजी, पंतगबाजी, कुश्ती, संगीत व नृत्य आदि अमीर–गरीब दोनों ही वर्गों के बीच लोकप्रिय थे। मेले, त्योहार, कीर्तन, रामलीला – कृष्णलीला, कव्वाली, भाँड, नट, बाजीगर, मसखरे, विदूषक भी जनसाधारण का दिल बहलाने की सामग्री प्रस्तुत किया करते थे।

सल्तनतकालीन उत्तर भारतीय सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालने का काम बहुत से विद्वानों ने किया है जैसे– सैय्यद अतहर अब्बास रिजवी (खलजीकालीन भारत, तुगलक कालीन भारत) ए. एल. श्रीवास्तव (मेडिवल इण्डियन कल्चर) ए. युसूफ अली (सोसाइटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इंडिया) के. एम. अशरफ (लाइफ एण्ड कन्डीशंस ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान) सैय्यद अमीर अली (दि इस्लामिक कल्चर) जी. एच. ओझा (मध्यकालीन भारतीय संस्कृति), डॉ. युसुफ हुसैन

(मध्यकालीन भारतीय संस्कृति) आदि। इन विद्वानों की लेखनी से सल्तनतकालीन भारतीय समाज व संस्कृति के बारे में समग्र जानकारी प्राप्त होती है परंतु इन्होंने अधिकांशत अपना वर्णन सम्राटों व अमीरों के इर्द- गिर्द किया है। जनसामान्य के विवेच्यकाल में मनोरंजन के क्या- क्या साधन थे जिससे वे अपने जीवन में आनंद प्राप्त करते थे यह बताने का प्रयास प्रस्तुत लेख में किया गया है।

विवेच्यकाल में साधारण वर्ग का जीवन इतना सुखमय नहीं था। वे अपने व्यक्तिगत जीवन में आमोद- प्रमोद की व्यवस्था कर सके। फिर भी कुछ अवसरों पर स्वतः ही उनका मनोरंजन हो जाया करता था। सुल्तान जब कभी विजय से लौटते थे तो राजधानी में समस्त जनता खुशी मनाती थी।[2] खलीफा द्वारा शासन की मान्यता प्राप्त करने पर इल्तुतमिश के आदेशानुसार राजधानी की जनता ने खुशी मनाई थी।[3] बाजों और कबूतरों को उड़ाना भी एक लोकप्रिय मनोविनोद था जो गरीबों व अमीरों दोनों ही वर्गों में प्रचलित था। अमीर खुसरो ने भी इसकी चर्चा की है।[4] वह कपोत नृत्य की चर्चा करता है जो जनसाधारण के बीच प्रचलित था। नवयुवकों के बीच गुल्लीडंडा, गेंद फेंकना, पतंगबाजी, कुश्ती या दंगल आदि मनोरंजन के सबसे ज्यादा लोकप्रिय साधन थे।

विवेच्यकालीन मनोरंजन के साधनों में संगीत व नृत्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अमीर खुसरो कहता है कि " भारतीय संगीत एक ऐसी आग के समान है जो मन व आत्मा के बोझ को हल्का करता है। इस संगीत का आकर्षण न केवल मानव जाति के लिए है, बल्कि अबोध समझे जाने वाले मूक जानवरों में भी है।[5] उन्होंने ही देश में 'कव्वाली' की पहली बार शुरुआत की। साथ ही उन्होंने भारत में खिलाफ, साजगीरी, सर्वद आदि रागों की शुरुआत की थी।[6] उन्होने संगीतज्ञों द्वारा प्रयुक्त वाद्ययंत्र यथा चंग, रबाब, डफ, तंबूरा, शहनाई, ढोल आदि का रोचक विवरण प्रस्तुत किया है। अमीर खुसरो ने देवलरानी- खिज्रखाँ के विवाह के समय गायकों की उपस्थिति का उल्लेख किया है। वाद्य तम्बूरे के स्वर से लोग मस्त हो जाते थे। हिन्दुस्तानी सुन्दरियाँ गाने में निपुण रहती थी। वे मदिरा नहीं वरन् अपने संगीत से लोगों को मस्त करती थी। संगीत के मधुर स्वर पर नर्तकियाँ नृत्य करती थी।[7] दरबार से परे भी संगीत जनसामान्य के मनोरंजन का प्रमुख साधन था। अरशफ ने लिखा है कि जनसाधारण में नृत्य व गायन पर्याप्त लोकप्रिय थे। कोई भी अभ्यागत हिन्दुस्तान के किसी भारतीय ग्राम में आज भी होलिकात्सव के अवसर पर लोकगीत गाने व नृत्य करने हेतु ग्रामीणों को एकत्र होते देख सकता है। सावणगीत सार्वजनिक रुप से लोकप्रिय थे।[8] इस काल में पेशेवर लोक गायक और नर्तक भी जनता का मनोरंजन करते थे। सूफियों में संगीत के प्रति गहरी अभिरुचि थी और उनकी शैली को शमा कहते थे। समीक्षाधीन अवधि में नृत्यकला ने विशेष प्रगति की और कृष्णलीला के अवसर से नृत्यकला को विशेष प्रोत्साहन मिला।[9] गरबा नृत्य ने पश्चिमी समुद्र तट पर अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त की। मुसलमान जनता कव्वाली के माध्यम से अपने जीवन को रसमयी बनाती थी।

सल्तनतकालीन भारत के लोक मनोरंजन में नाट्क - नौटंकी बड़े प्रसिद्ध थे। आल्हा और ऊदल तथा सगर और भरत आदि की लोकप्रिय कथाओं को विविध उत्सवों पर नाटकों में रुपान्तरित कर प्रदर्शित किया जाता था। इस सन्दर्भ में अशरफ ने लिखा है कि नाट्यकला में कृष्णलीला व रामलीला देश के कुछ हिस्सों में रंगमंच पर खेली जाती थी। इनमें कृष्ण के जीवन की लोकप्रिय घटनाएँ जैसे गोपियों के साथ लीला, राधा का विरह तथा शोक, कंसवध आदि अभिनीत किये जाते थे।[10] कुछ स्थानों पर विशेषकर दोआब में, आल्हाखण्ड की लोकप्रिय गाथा और नलदमयन्ती की कथा संध्या में गाई जाती थी। हम कल्पना कर सकते हैं कि दिल्ली के शाही कारागार से राजा रतनसेन के बचकर भागने और हम्मीर देव के संग्राम की दिल दहलाने वाली घटनाओं ने गांवों के भाटों और कवियों को उनके चरित्र का कथावाचन करने के लिए प्रेरित किया होगा।[11] कथाश्रवण में भी सामान्य जनता रस लेती थी। मध्ययुगीन मिथिला में प्रायः रात्रि के समय आयोजित किए जाने वाले कीर्तनिया मण्डलियों के नाटक- कीर्तन आदि जनता के मनोविनोद के साधन थे।[12]

विवेच्यकाल में नट और बाजीगर, जानवरों की मदद से या उसके बिना भी भिन्न - भिन्न प्रकार के चमत्कारिक करतब दिखाते थे। वे लोग सार्वजनिक स्थानों में रस्सी पर चलने की करतब[13] या बन्दर- बन्दरियों के नाच दिखलाते थे। ये नट लोग भेडों को भी नचवाते थे। तोता को आदमी की तरह बुलवाते थे। बगुला जिनको आश्चर्यजनक तरकीबें कर दिखाने के लिए प्रशिक्षित किया जाता था।[14] सपेरा भी साँपों के माध्यम से खेल दिखाया करता था। हाथी को संगीत पर नचाया जाता था और वह ताल मिलाने के लिए अपना कदम और अपनी सूण्ड ऊपर उठाता था। अमीर खुसरो ने

लिखा है कि यहाँ के निवासियों को जादू का विशेष ज्ञान था।[15] खिज्रखाँ के विवाह के अवसर पर तलवार चलाने वाले, तलवार करतब दिखाने वाले लोग एकत्र हुए थे । वे तलवार को पानी की तरह निगल जाते थे और नाक में चाकू चढ़ा लेते थे। उनमें से कुछ ऐसे थे जो बाल को बीच से दो टुकड़े कर सकते थे।[16]

उपर्युक्त साधनों के अलावा उस समय मसखरे, विदूषक, हँसोडों, भाँडों का भी उल्लेख किया जा सकता है जो अपनी हरकतों , चालबाजी से भरी तरकीबों और मजाक उक्तियों से जनता का मनोरंजन करते थे। अमीर खुसरों ने ऐसे लोगों का अक्सर उल्लेख किया है।[17] जिन्हें दिल्ली के सुल्तान या प्रमुख सरदार अपनी नौकरी में रखते थे या संरक्षण देते थे। इनके अलावा बहुरुपी या बहुरुपिये, जो मर्दो और औरतों दोनों में से होते थे, भिन्न – भिन्न प्रकार की भूमिकाएँ धारण कर तथा तरह– तरह के कपड़े पहन कर , द्वार – द्वार घूमकर लोगों का दिल बहलाया करते थे।[18] इस समय हिन्दू स्त्रियाँ चचरी नामक खेल खेलती थी। जिसमें लुकाछिपी किया करती थी।[19]

शिकार खेलना वास्तव में उस युग में अमीरों के शौक हुआ करते थे परन्तु शिकार इस काल में व्यक्तिगत नहीं एक सामूहिक व्यसन था। इस मनोरंजन के व्यसन में मात्र राजा, राजकुमार, सामन्त, अमीर व सरदार आदि अकेले ही भाग नहीं लेते थे। उनके साथ समकालिक समाज का शिकारी वर्ग भी साथ चलता था। सभी शिकार में अपने ढ़ंग से भाग लेते और आनन्द लेते थे। इस प्रकार इस सामूहिक मनोरंजन का समसामयिक साहित्यिक प्रसंगों से शिकार में जनसाधारण की अभिरुचि का पता चलता है।[20] विवेच्यकाल में जुआ खेलना भी अमीरों व गरीबों दोनों के बीच लोकप्रिय था। अभ्यान्तर खेलों में प्रायः बाजी जीतने का सूक्ष्म प्रलोभन रहता था। जुए की भारतीय परम्परा अत्यन्त प्राचीन थी। चौपड़ के साधारण खेल में हाथीदाँत का बना चौपहला पासे प्रयुक्त होते थे इसके पहलुओं पर क्रमशः एक, दो, पॉच,छः बिन्दु अंकित रहते थे। दाँव लगाकर खेलने के लिए ऐसे तीन पासे प्रयुक्त किये जाते थे। हालांकि दाँव लगाकर खेलने के कारण इस खेल को जुआ कहा जाता था।[21] जुआ खेलना इस्लाम में निषिद्ध था फिर भी कीमारवाजी मुसलमानों में लोकप्रिय थी। हिन्दू जनता दीपावली की संध्या पर जुआ खेलना पवित्र मानती थी व इससे आनंद प्राप्त करती थी।

विवेच्यकाल में साधारण जनता का जीवन वर्षभर त्योहारों से आच्छादित रहता था। हालांकि उन त्योहारों को मानने के पीछे कारण धार्मिक भाव होता था परंतु इससे सामान्य जनता अपने जीवन में रस भर लेती थी। विवेच्यकाल से पूर्व के अनेक तीज – त्योहारों को अलबरुनी ने अपनी आँखों से देखा था जिन्हे हिन्दू लोग मनाते थे। वह लिखता है कि हिन्दू त्योहार अधिकांश महिलाओं और बच्चों द्वारा मनाये जाते थे।[22] हिन्दुओं के सबसे महत्त्वपूर्ण त्यौहार बसन्त पंचमी, होली, दीपावली, शिवरात्रि , एकादशी, दशहरा, रक्षाबंधन आदि थे। बंसत पंचमी का त्योहार बंसतपूर्व का सूचक है जो माघमास में मनाया जाता था। इस अवसर पर लोक नृत्य व गीत गाये जाते थे एवं अबीर – गुलाल आदि छिड़का जाता था।[23] इस त्योहार के मनाने के तरीके से स्पष्ट होता है कि जनता गुलाल आदि के माध्यम से रस लेती थी। शिवरात्रि एक धार्मिक त्योहार है जो शंकर– पार्वती के विवाह के उपलक्ष्य में मनाया जाता था।[24] इस रात्रि को लोग पूरी रात महादेव की पूजा करते थे, रात्रि जागरण करते थे तथा उन्हें धूप–दीप , सुगन्धि एवं फूल चढ़ाते थे।[25]

होली आज की तरह सर्वाधिक लोकप्रिय त्योहार था। इस दिन सभी वर्णो के लोग, अमीर व गरीब नाच – गान के साथ एक दूसरे को रंगों से भिगोते हुए मनाते थे। श्रावण मास की पूर्णिमा ब्राह्मणों का प्रिय त्योहार था। सिल्क और पन्नी से बनी राखी भाइयों की कलाइयों में बहनें पहनाती थी जिसे प्रेम एवं स्नेह का प्रतीक समझा जाता था।[26] क्षत्रियों व कृषक वर्गो के बीच दशहरा बहुत लोकप्रिय था। इस समय देवी दुर्गा की पूजा, खासकर बंगाल में बडे उत्साह एवं उमंग से की जाती थी। दूसरा पहलू था हिन्दुओं के विभिन्न वर्गो द्वारा अपनाये गये व्यापार, धन्धे या पेशे के औजारों की पूजा।[27] दीपावली का त्योहार सबसे ज्यादा हर्षोल्लास से हिन्दू जनता मनाती थी। अलबरुनी ने लिखा है कि कार्तिक के प्रथम दिन जो नये चन्द्रमा का दिन होता है और जब सूर्य तुला में अग्रसर होता है, उस दिन दीपावली मनाई जाती है। लोग स्नान करके उत्सव के नये वस्त्रादि पहनते हैं। इस उत्सव का कारण यह बताया जाता है कि वासुदेव की पत्नी लक्ष्मी, साल में इसी दिन एक बार विरोचन के पुत्र बलि को , जो सातवीं पृथ्वी पर बन्दी है, बन्धनमुक्त करती और संसार में जाने के लिए अनुमति दे देती है। इस कारण हिन्दुओं का विश्वास है कि यह त्योहार कृतयुग में भाग्य का त्योहार है।[28] इस दिन भाग्य आजमाने के लिए जुआ खेलना शुभ माना जाता था अतः

लोग सारी रात भाग्य आजमाइश करते रहते थे। इस प्रकार हिन्दू जनता अनेक त्योहार मनाती थी।

हिन्दू तीर्थ यात्राओं के माध्यम से अपने धार्मिक भावों को परिपुष्ट करने के साथ- साथ जीवन की नीरसता को भी समाप्त करते थे। अलबरुनी कहता है कि तीर्थयात्राएँ हिन्दुओं के लिए अनिवार्य नहीं थी बल्कि वैकल्पिक और कीर्तिप्रदायी है। कोई व्यक्ति किसी पवित्रप्रदेश, किसी पूज़नीय प्रतिमा,पवित्र नदियों के जल में स्नान के लिए यात्रा पर चल पड़ता हैं। वे उन स्थानों में पूजा करता, प्रतिमा की अर्चना करता, भेंट - दान आदि देता, वन्दना करता, व्रत रखता व ब्राह्मणों, पुरोहितों आदि को दान - दक्षिणा देता है फिर वह सिर और दाढ़ी मुड़वा लेता और घर लौट आता है।[29] बहुत अधिक आनन्दोत्सव के साथ हिन्दू लोग समय समय पर सूर्य ग्रहण व चन्द्रग्रहण भी मनाते हैं।[30] पवित्र स्थानों में अलबरुनी बनारस, थाने वर, मथुरा आदि का उल्लेख करता है। विवेच्यकाल में मेले भी मनोरंजन के साधन थे। इस समय हमे मेलों की परम्परा बहुतायत में देखने को मिलती है। यदुनाथ सरकार के अनुसार मेला भारतीय ग्रामीण समाज के लिए बड़े खुशी का स्थान व अवसर होता था।[31] विशेष धार्मिक अवसरों पर मेले का आयोजन स्थान विशेष पर होता था। मेलों में सर्वसाधारण जनता आनन्द का अनुभव करती थी।

हिन्दुओं के समान ही मुसलमानों के बीच भी कुछ त्योहार और तीर्थयात्राएँ लोकप्रिय हो गई थी जिससे मुस्लिम सामान्य जनता को मनोविनोद के अवसर मिलते थे। हालांकि मुस्लिम त्योहार हिन्दू त्योहारों की अपेक्षा कम थे, जिसका कारण इस्लाम में रुढ़िवादिता प्रतीत होता है। फिर यह स्वाभाविक ही था कि इस संबंध में भारतीय वातावरण और परम्पराओं का मुस्लिम लोगों पर प्रभाव पड़ा। अपने हिन्दू भाइयों की भाँति,बदलते हुए समय के साथ उन लोगों ने अपने त्योहारों का सामाजिक एवं मनोरंजनात्मक महत्त्व समझा।[32] मुसलमानों के बीच दो त्योहार ज्यादा लोकप्रिय थे - ईद-उल-फितर और ईद-उल- जुहा। इन त्योहारों की तारीख चाँद के देखे जाने पर निर्भर करती थी।[33]

मुसलमानों के बीच तीसरा महत्त्वपूर्ण त्योहार 'शबेबारात' था जो शा - वान महीने की चौदहवीं रात को मनाया जाता था।[34] धार्मिक दृष्टि से उत्साही लोग यह पूरी रात खास इबादत करने व कुरान पढ़ने में बिता देते थे। अमीर खुसरों इस अवसर पर मस्जिदों में मोमबत्तियाँ भेजने और फुलझाड़ियाँ, पटाखे आदि छोडने की लोकप्रिय रिवाज का जिक्र करता है।[35] अशरफ भी लिखता है कि शाबान की लगातार 13 वीं, 14 वीं, और 15वीं, रातों को फुलझड़ियाँ और पटाखों के छोडे जाने की धूम रहती थी।[36] मुहर्रम मानी शौक का पर्व भी मुसलमानों के बीच लोकप्रिय था जो खासकर शिया धार्मिक विचार के मुसलमानों द्वारा मनाया जाता था जो मुहर्रम के प्रथम दस दिन कर्बला के वीरों की शहादत के विवरण पढ़ने में बिताते थे और उनकी रुहों की चिरशान्ति के लिए खासतौर पर इबादतें करते थे। इस अवसर पर जुलुसों में ताजिये निकलते थे जिन्हे मकबरों का लघुरुप माना जा सकता है।[37]

विवेच्यकाल में मुसलमानों की लोकप्रिय तीर्थ यात्राएँ साधारणतया सन्तों, फकीरों, औलियों और दिव्य पुरुषों की दरगाहों (कब्र) व मक्का - मदीना के पवित्र स्थलों पर होती थी। इन संतों की मरण- वार्षिकियों का उर्स बड़े उत्साह के साथ मनाये जाते थे।[38] सल्तनतकाल में अजमेर में मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर रज्जब माह के पहले छह दिनों में प्रतिवर्ष उर्स मनाया जाता था। उर्स के समय सन्तों की स्मृति में कव्वालियाँ, तजाकिरे व कवि गोष्ठियाँ आदि आयोजित होती थी जो मुस्लिम जन सामान्य के मन को आनन्दित करती थी।

निष्कर्ष : हम कह सकते है कि विवेच्यकाल की जनता वैसे तो दो जून की रोटी जुटाने तक अपना जीवन सीमित रखती थी। आमोद - प्रमोद जैसे विलासी दिनचर्या के लिए उनके पास न तो समय था और न पैसा। फिर भी उस समय की सामान्य जनता मेलें, तीज, त्योहार और नाटक - तमाशों से अपने नीरस जीवन में आनंद का अनुभव कर ही लेती थी। वर्तमान में सामान्य जन के इतिहास लेखन की उभरती हुई प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए इस लेख में विवेच्यकालीन सामान्य जनता की दिनचर्या मे मनोरंजन के साधनों की महत्ता को विवेचित करने का प्रयास किया गया है। इस संदर्भ में यह भी विचारणीय है कि विवेच्यकालीन मनोरंजन के साधनों में से कुछ तो अभी लोकप्रिय हैं, भले ही समय में परिवर्तन के साथ -साथ इनके स्वरुप में भी कुछ परिवर्तन अवश्य हो गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अशरफ, के. एम. : लाइफ एण्ड कन्डीशन्स ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, पृष्ठ 222, जीवनप्रकाशन, दिल्ली, 1959.*

2. रशीद, ए. : सोसायटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इंडिया, पृष्ठ105, कलकत्ता, 1969.
3. रशीद, ए. : सोसायटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इंडिया, पृष्ठ106, कलकत्ता, 1969.
4. खुसरो, अमीर : एजाज – ए– खुसरवी, भाग1 , पृष्ठ179, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, 1875–76.
5. खुसरो, अमीर : नूहसिपेहर, सम्पादक – मुहम्मद वहीद मिर्जा, पृष्ठ170–171, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 1950.
6. भातखण्डे, विष्णु नारायण : ए शार्ट हिस्टोरिकल सर्वे ऑफ दि म्यूजिक ऑफ इण्डिया, पृष्ठ10, बम्बई, 1934.
7. खुसरो, अमीर : नुहसिपेहर, पृष्ठ154–158.
8. अशरफ, के. एम. : लाइफ एण्ड कन्डीशन्स ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान पृष्ठ254, जीवन प्रकाशन, दिल्ली, 1959.
9. चन्दबरदाई : पृथ्वीराजरासो, भाग 3, लोक 35, पृष्ठ282, सम्पादक – मोहनसिंह, उदयपुर, विक्रम सम्वत् 2012.
10. अशरफ, के. एम. : लाइफ एण्ड कन्डीशन्स ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, पृष्ठ254–255, दिल्ली, 1959.
11. अशरफ, के. एम. : लाइफ एण्ड कन्डीशन्स ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, पृष्ठ254, दिल्ली, 1959.
12. मिश्रा, डॉ. जयकांत : ए हिस्ट्री आफ ऑफ मैथिली लिटरेचर, भाग 1, पृष्ठ289–290, इलाहाबाद, 1949,
13. खुसरो, अमीर : "देवलरानी खिज्रखाँ" स. – मौलाना रसीद अहमद अन्सारी, पृष्ठ154–155, अलीगढ़, 1917.
14. खुसरो, अमीर : नूहसिपेहर, पृष्ठ186–189.
15. खुसरो, अमीर : नूहसिपेहर, पृष्ठ190–191.
16. खुसरो, अमीर : "देवलरानी खिज्रखाँ" पृष्ठ153–156.
17. खुसरो, अमीर : कुल्लियात – ए – खुसरवी, भाग 1, पृश्ठ–7, अलीगढ़, 1918.
18. चन्दबरदाई : पृथ्वीराजरासो, भाग 2, दोहा 51, पृष्ठ–823, उदयपुर, विकम संवत् – 2012.
19. जायसी, मलिक मुहम्मद : अखरावट, सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ319, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी पंचम संस्करण, विक्रम संवत् – 2008.
20. पंडित रघुनाथ भागवताचार्य : श्री कृष्ण प्रेम तरंगिणी स0 – बरत्तरंजनराय, पृष्ठ 42 पर शिकार का प्रसंग, बंगवासी संस्करण, कलकत्ता, 1910.
21. अशरफ, के. एम. : लाइफ एण्ड कन्डीशन्स ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, पृष्ठ200, दिल्ली, 1959.
22. सचाऊ : अलबरुनीज इण्डिया, पृष्ठ178, लंदन, 1888.
23. जायसी, मलिक मुहम्मद : पदमावत, सर्ग 32, दोहा 352/12, पृष्ठ426, द्वितीय संस्करण, चिरगॉव (झॉसी) 1961.
24. चन्दबरदाई : पृथ्वीराजरासो, पृष्ठ– 139, दोहा 2.
25. सचाऊ : अलबरुनीज इण्डिया, पृष्ठ184.
26. अशरफ, के. एम. : लाइफ एण्ड कन्डीशन्स ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, पृष्ठ203–04, दिल्ली, 1959.
27. अशरफ, के. एम. : लाइफ एण्ड कन्डीशन्स ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, पृष्ठ203, दिल्ली, 1959.
28. सचाऊ : अलबरुनीज इण्डिया, पृष्ठ182.
29. सचाऊ : अलबरुनीज इण्डिया, पृष्ठ142.
30. सचाऊ : अलबरुनीज इण्डिया, पृष्ठ107–114 में सूर्यग्रहण व चन्द्रग्रहण का विस्तृत विवरण उपलब्ध है।
31. सरकार, यदुनाथ : हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, पृष्ठ471–473, कलकत्ता, 1921–1922.
32. अशरफ, के. एम. : लाइफ एण्ड कन्डीशन्स ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, पृष्ठ204, दिल्ली, 1959.
33. खुसरो, अमीर : एजाज – ए– खुसरवी, भाग 4, पृष्ठ326–327, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, 1876.
34. अशरफ, क. एम. : लाइफ एण्ड कन्डीशन्स ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, पृष्ठ205, दिल्ली, 1959.
35. खुसरो, अमीर : एजाज – ए– खुसरवी, भाग 4, पृष्ठ324.
36. अशरफ, के. एम. : लाइफ एण्ड कन्डीशन्स ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, पृष्ठ206, दिल्ली, 1959.
37. खुसरो, अमीर : एजाज – ए– खुसरवी, भाग 4, पृष्ठ328.
38. मीरात – ए– सिकन्दरी, पृष्ठ103, बम्बई, 1908, यहाँ पर उर्स का उल्लेख मिलता है।

नगरीय बुजुर्गो की पारिवारिक देखरेख

लोकेन्द्र सिंह शेखावत
शोधार्थी, भारतीय मानवविज्ञान सर्वेक्षण, पश्चिमी क्षेत्रीय केन्द्र, उदयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश : *प्रस्तुत पत्र में मानव जीवन की अन्तिम कडी बुजुर्गो की पारिवारिक देखरेख बारे में बताया गया हैं।शोध का कार्य क्षेत्र जयपुर है। मानव विज्ञान का प्रारम्भ में ऐसे समाजो से सम्बन्ध अधिक रहा जो अन्य समाजो से भिन्न दिखाई देते थे परन्तु आज मानव विज्ञान अपने युग का सर्वोच्च एवं सूक्ष्म मानववादी विज्ञान बन चुका है जो विभिन्न संस्कृतियो के तुलनात्मक अध्ययन के साथ साथ मानव समाज की विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर भी प्रकाश डालता है। ये समस्याएँ वह अपने आस पास के परिदृश्य में देखता है। वर्तमान समय में संयुक्त परिवारो का विखण्डन तथा नाभिक परिवारों में अभिवृद्धि के सकारात्मक व नकारात्मक पक्ष दृष्टिगोचर होता है। वर्तमान समय में वृद्धावस्था मानवीय परिदृश्य में समस्या बनती जा रही है। संयुक्त परिवारो का विखण्डन एवं वृद्धावस्था एक दूसरे से अर्न्तसम्बन्धित होते हुए पूरी मानव सभ्यता के लिए और इस शोध पत्र का अनुसंधान का विषय है।*

संकेताक्षर : *वृद्धावस्था विज्ञान, जेरोन्टोलॉजिकल, आत्मकेन्द्रित समस्या, परिवार विच्छेदन।*

सामाजिक वृद्धावस्था विज्ञान, वृद्धावस्था विज्ञान के विस्तृत क्षेत्र का ही एक हिस्सा है जिसका संबंध सभी जीवों और पौधो की जनजातियो के जीवन विज्ञान और शारीरिक आयु से है। ये मनुष्य और समाजो के विभिन्न धारणाओं के मनोवैज्ञानिक सामाजिक व सांस्कृतिक पहलुओ से भी संबंधित है। सामाजिक वृद्धावस्था विज्ञान का संबंध वृद्धावस्था से व्यक्ति की परिस्थितियो में होने वाले परिवर्तन उसकी परिस्थिति व भूमिका, आयु के अनुसार समाज में उसके पद तथा समाज में व्यक्ति के व्यवहार व क्रिया पर पडने वाले उसकी आयु से संबंधित जैविक व मनौवैज्ञानिक कारको के प्रभाव से होता है। पहले की आर्थिक व्यवस्था में अधिकतर लोग कृषि कार्यो में संलग्न रहा करते थे। ताउम्र अपने व्यवस्था से जुडे रहने से सेवामुक्त होने का न तो भय रहता था और न ही समय विशेष पर सेवानिवृत होने का नियम हुआ करता था ।जब तक स्वास्थ्य साथ दे तब तक कार्य किया करते थे। परंतु आधुनिक युग में लोग अपने बच्चो के लालन पालन की जिम्मेदारियो उठाने के बाद तथा अपनी नौकरी व व्यवसाय से सेवामुक्त होने के बाद एक लंबे समय तक मिलने वाले अवकाश के समय को आनंदपूर्वक बिताने में सक्षम है। वर्तमान स्थिति ऐसी है, जिसमें वृद्धावस्था को पीछे धकेला जा रहा है और मध्य आयु लंबी हो गई है। उसके दोनों पक्ष (सकारात्मक होना या नकारात्मक होना) बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति अपने निजी जीवन में और सामाजिक मूल्य व्यवस्थाओं तथा जीवन के अवसरों के साथ किस प्रकार से समायोजन करना है।

वृद्धावस्था विज्ञान एक बहुआयामी क्षेत्र है जो वृद्धावस्था की प्रक्रिया के मुद्दों पर संबोधित करने के लिए व्यक्ति, परिवार, सामाजिक परिप्रेक्ष्य, विद्वानों और अनुसंधान करने वाले तथा शिक्षितों आदि को एक साथ एकत्रित करता है। इस विषय के विद्वानों के अनुसार, ''वृद्धावस्था जीवन चक्र का एक सामान्य भाग है तथा अवसरों एवं चुनौतियों का संभावित साधन भी है।''इसके बहुआयामी परिप्रेक्ष्यों के अनुसार वृद्धावस्था विज्ञान मनुष्य की वृद्धावस्था की क्रियाओं के परिणामों और कारणों

से संबंधित बहुआयामी निपुणता व ज्ञान को संगठित करता है। वृद्धावस्था विज्ञान विषय में योगदान करने वाले विद्वान विविध शैक्षणिक क्षेत्रों, प्रायोगिक क्षेत्रों, स्वास्थ्य से संबंधित क्षेत्रों से एकत्रित हुए हैं। सभी प्रशिक्षित व दक्ष लोग वृद्ध-विज्ञान में योगदान देते हैं। वृद्धों की जनसंख्या में तेजी से हो रही बढ़ोत्तरी के आधार पर ये कहा जा सकता है कि अब लोग लंबे समय तक जीवित रहते हैं जैसे-जैसे वृद्धों की संख्या में वृद्धि हो रही है अनुमान है कि विद्वानों एवं इस क्षेत्र में दक्ष लोगों की सार्वजनिक एवं निजी संगठनों में आवश्यकता बढ़ेगी। जिससे ये लोग वृद्धों को सामाजिक व वाणिज्य से संबंधित विभिन्न सेवाएं प्रदान कर सकें। इस तेजी से बढ़ते हुए क्षेत्र में इस क्षेत्र के विशेषज्ञ, दक्ष व निपुण विद्वानों की इतनी अधिक आवश्यकता पहले कभी भी महसूस नहीं की गई।वर्तमान समय में वृद्धावस्था की प्रकिया का अध्ययन बहुत ही महत्वपूर्ण है। वृद्धों की बढ़ती संख्या और उसके साथ ही बढ़ती समस्याओं ने वृद्धावस्था की प्रकिया और इससे संबंधित अध्ययन को अत्यधिक महत्वपूर्ण बना दिया है।

अनुसंधान के उद्देश्य

- परिवार के सदस्यों के साथ परस्पर संबंधों के परिवर्तन का विश्लेषण करना।
- विभिन्न परिस्थितियों में बदली हुई पस्थितियों एवं भूमिका के संदर्भ में पारिवारिक व्यक्तियों के समायोजन के स्वरुप का अध्ययन करना।
- पारिवारिक माहौल में स्वयं के विषय में विचार तथा उनकी बदली हुई मूल्यों व विश्वासों की विवेचना करना।
- व्यक्तियों की वर्तमान, आर्थिक स्थिति से संतुष्टि व भविष्य की आर्थिक स्थिति के चिंता के स्तर को ज्ञात करना।

अनुसंधान प्रविधिया व अध्ययन क्षेत्र का चुनाव :

अध्ययन की प्रकृति एवं प्रश्नों के आधार पर आंकड़ें संकलन हेतु मैंने निम्न प्रविधियों का संकलन किया है अवलोकन ,अनुसूची ,साक्षात्कार, वैयक्तिक अध्ययन, सामूहिक चर्चा। जयपुर जिला राजस्थान के पूर्वी भाग में 26°23' से 27°51' उत्तरी अक्षांश एवं 74°55' से 76°50' पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। विषय चयन तथा उसके अनुरुप अध्ययन तकनीक का चयन कर लेने के उपरान्त अध्ययनकर्ता के समक्ष सबसे बड़ी समस्या अध्ययन स्थल के चयन की रह जाती है। इसके लिए मैंने वृद्ध (सेवानिवृत्त व असेवानिवृत्त व्यवसायी) व्यक्तियों की बदली हुई परिस्थिति एवं भूमिका के संदर्भ में अध्ययन के लिए जयपुर शहर को अध्ययन क्षेत्र बनाया है। जयपुर क्षेत्र में भी मैंने भिन्न क्षेत्रों को अध्ययन के लिए चुना, जो कि निम्न है झालाना डूंगरी, सोडाला, बापू नगर, गांधी नगर (नेहरु पार्क), तिलक नगर, सेंट्रल पार्क।

अध्ययन की साहित्य समीक्षा :

विजय कुमार (1991) ने इस तथ्य को रेखांकित किया है कि वृद्धावस्था में सामाजिक भागीदारी में आर्थिक कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। राममूर्ति (1970) ने वृद्धों की समस्याओं का अध्ययन किया जिससे पता लगा कि वृद्धों की व्यक्तिगत उन्नति और उपयोग प्राप्त करने में बड़ी समस्या आती है। आयु संबंधी रुझानों से पता चलता है कि सेवानिवृत्तकाल के आसपास जहां वृद्धों की समस्यायें बढ़ती हैं। वही उस काल के बाद उसमें कमी आती है। मजूमदार (1985) में वृद्धावस्था पर एक सर्वेक्षण किया जिससे पता चला कि वृद्धों के मन में यह भावना उपजती है कि सबका व्यवहार उनके प्रति बदल गया है, एकांकीपन व निराशा के अनुपात में अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा या स्थान में कमी पाते हैं। महाजन (1987) ने मनो सामाजिक समस्याओं के संबंध में पाया कि ज्यादातर उत्तरदाता एकांकी और निर्भर महसूस करते है। साथ ही असहाय महसूस करते हैं, अधिकतर लोग शक्तिहीनता महसूस करते हैं। डी.पी. चौधरी (1992) के अनुसार, कमवृद्धि की धारणा विवादास्पद है अलग-अलग संदर्भ में इसके विभिन्न अर्थ है, जिसके एक अर्थ भी कमबद्ध आयु में वृद्धि है। जबकि अन्य अर्थों में सामाजिक मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक भी है। साधारणतया वृद्धों को गैर उत्पादी माना जाता है। वृद्धों के नकारात्मक विशेषताओं को बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया जाता है। ऐश्वरा मूर्ति (1993) ने वृद्धों के समायोजन के कुछ कारकों का अध्ययन किया। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि समायोजन 60 के दशक में बेहतरीन होता है। उसके उपरांत उनमें गिरावट दृष्टिगोचर होने लगती है। बाद में हीनता, प्रसन्नता, व्यक्गित समस्याएं समायोजन को प्रभावित करने लगती है।

डॉ. अल्पना विमल (2001) ने अपने शोध में यह सिद्ध किया है कि सेवानिवृत्त व्यक्तियों का आर्थिक स्वतंत्रता का स्तर जितना उच्च होगा उतना ही उनका परिवार के सदस्यों के साथ समायोजन का स्तर ऊँचा होगा।ए.बी. बोस (2006) ने अपने अध्ययन में बुजुर्गों के सुरक्षा के विषय में अपने मत प्रस्तुत किये उन्होंने बुजुर्गों की होने वाली समस्याओं जैसे आर्थिक, शारीरिक, पारिवारिक व सरकारी नीतियों को प्रकाश में लाते हुए उनके प्रति बुजुर्गों का व समाज के रवैये को दृष्टिगोचर किया है। तपन बैनर्जी (2002) ने बुजुर्गावस्था की प्रक्रिया उनके सामाजिक समायोजन एवं उनके व्यवहार उनकी अभिरुचि को कैसे परिवर्तित हुई है यह बताया है साथ ही मनोसामाजिक समस्याओं को भारतीय संदर्भ में बताने का प्रयास किया है।के.एल. शर्मा ने अपने अध्ययनों में बुजुर्गों की शारीरिक, मानसिक परेशानियां, पारिवारिक देखभाल व जब बुजुर्ग मृत्यु के करीब हो तब उसकी देखभाल, चिकित्सीय परामर्श कब लें, जैसे विषयों पर प्रकाश डाला। इन्होंने अनेक पुस्तकें संकलित की हैं व कई पुस्तकें अंग्रेजी, हिन्दी दोनों भाषाओं में बुजुर्गों पर लिखी हैं जिनमें ग्रामीण व शहरी बुजुर्गों की सभी योजनाओं, समस्याओं व समाधान का विवरण उल्लेखित है।

इंडियन जेरोन्टोलॉजिकल एसोसिएशन :

इसकी स्थापना 1967 में हुई। यह राजस्थान सरकार की एक पंजीकृत संस्थान है। यह इंटनरेशन एसोसिएशन ऑफ जेरोन्टोलॉजी (अमरीका) और इंटरनेशनल फैडरेशन ऑफ एगिंग (अमरीका) की मुंबई शाखा से संबंद्ध है। आयु वृद्ध के साथ-साथ होने वाले परिवर्तनों तथा वृद्धावस्था के मनोवैज्ञानिक, जैविक, सामाजिक तथा चिकित्सकीय आयामों पर अनुसंधान तथा वृद्धों के जीवन स्तर में सुधार के लिए प्रयास ओर उनके कल्याण में पिछले 30 वर्षों से लगी हुई है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इंडियन जर्नल ऑफ जैरोंटोलाजी का प्रकाशन वृद्धों को स्वास्थ्य संबंधी जानकारी देना, वृद्धों को उनकी समस्याओं के समाधान के लिए परामर्श देना, विश्राम स्थल चलाना, समय-समय पर निःशुल्क स्वास्थ्य परीक्षण शिविर तथा नेत्र शिविर लगाना आदि कार्यक्रम करती है। इसके संस्थापक एवं संचालक डॉ. के. एस. शर्मा है। इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य वरिष्ठ नागरिकों का कल्याण एवं आयु के साथ होने वाले शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं को समझना और उन पर शोध करना है। वर्तमान में यह संस्था निम्न कार्यक्रम चला रही है।

1.जैरोंटोलॉजी का शोध संस्थान खोलना। 2.वृद्धों की सेवा का एक लघु अवधि का नर्सिंग चार्ट करना। 3.जैरोंटोलॉजी में एक वर्ष का डिप्लोमा शुरू करना। 4.वृद्धों की समस्याओं के बारे में एक द्वि-मासिक पत्रिका निकालना। इंडियन जेरोंटोलोजिकल एसोसिएशन के द्वारा चलाया जा रहा, एक वृद्ध परामर्श केन्द्र है जो वृद्धों की समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रयासरत है।

आधुनिक काल में वृद्धों की स्थिति

आधुनिक काल में औद्योगिकीकरण, नगरीकरण एवं यातायात व संचार के बढ़ते प्रभाव के कारण वृद्धों की प्रस्थिति में मूलभूत परिवर्तन आया है। औद्योगिकीरण तथा नगरीकरण के परिणामस्वरुप आधुनिक समाज में एक उपभोक्ता संस्कृति पनपी है जिससे गांव-शहरों में परिवर्तित हो गए है। इस संदर्भ में प्रवीण कोर, रजनी जैन और पी.के. सरदाना ने भी लिखा है कि युवा वर्ग का व्यवहार बुजुर्गों के प्रति बदल गया है। उन्हें इस बात का अहसास कराया जाता है कि वो अब वृद्ध हो चले हैं। इससे वृद्ध स्वयं को पराधीन, असहाय मानकर मृत्यु के इंतजार को ही अपना ध्येय बना लेते हैं इससे उन्हें मानसिक तथा शारीरिक क्षति पहुंचती है।

इस समस्या को दूर किया जा सकता है परन्तु इसके लिए सहयोग और प्रेम की आवश्यकता होती है।वर्तमान युग में वृद्धों की समस्याओं और संख्या में बढ़ोत्तरी का कारण परिवर्तित जनन क्षमता और पिछले 40 वर्षों के दौरान मृत्यु दर की कमी है। वर्तमान शताब्दी में जनन क्षमता में वृद्धि और मृत्युदर में कमी के कारण वृद्धों की संख्या में बढ़ोत्तरी की सम्भावना बहुत अधिक बढ़ी है। ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि 2030 तक संसार में वृद्धों की संख्या आज की तुलना मे तिगुनी हो जाएगी यह मुख्य रुप से विकासशील देशों में होगी। यह वृद्धि एशिया के भारत और चीन जैसे देशों में सर्वाधिक होने की संभावना है।अमेरिका के वाणिज्य विभाग के सेसस ब्यूरो द्वारा 1996 में इस संबंध में जारी हुई एक रिपोर्ट के अनुसार दुनिया के कुल आबादी में 65 और उससे अधिक आयु के बूढ़े व्यक्तियों की संख्या बढ़ रही है और 80 वर्ष से अधिक उम्र के लोगों की

संख्या में सबसे अधिक वृद्धि पाई गई है।यह रिपोर्ट 50 देशों में किए गए सर्वेक्षणों तथा राष्ट्रीय जनगणनाओं पर आधारित है। इस रिपोर्ट की एक लेखिका सिंधिया टाइबर के अनुसार दुनिया में अधिक उम्र के लोगों की संख्या में वृद्धि मुख्यतः द्वितीय विश्व युद्ध के बाद प्रजनन दर में वृद्धि का सीधा परिणाम है।

पारिवारिक वृद्ध व उनकी समस्याएं

वृद्धावस्था एक ऐसी अवस्था है, जब मनुष्य अपने जीवन का अंतिम पहर को व्यतीत करता है। इस दौरान वृद्धों में कुछ समस्याओं को संचरण पैदा हो जाता है जो निम्न है–1. सामाजिक समस्यायें 2.सांस्कृतिक समस्यायें 3.आर्थिक समस्यायें 4.बीमारियां/शारीरिक समस्यायें 5. मनोवैज्ञानिक समस्यायें।

सभी समस्यायें एक दूसरे को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए आर्थिक समस्या पारिवारिक व मनोवैज्ञानिक समस्या को पैदा करती है वही पारिवारिक समस्या मनोवैज्ञानिक समस्या को पैदा करती है, इन सबसे एक साथ नहीं बचा जा सकता परन्तु एक समस्या के खत्म होने से दूसरी समस्यायें भी बहुत कम हो जाती हैं। एक और जहां वृद्धों की आत्मकेन्द्रित समस्यायें हैं वहीं उपरोक्त समस्यायें भी हैं। इन आत्मकेन्द्रित समस्याओं में वे सभी कार्य बाधित होते हैं जो वृद्ध द्वारा अपनी दिनचर्या के अन्तर्गत किये जाते हैं।

पारिवारिक वृद्ध एक विश्लेषण

पारिवारिक वृद्ध से तात्पर्य वृद्धों से है जो परिवार में सबसे बड़े हैं। समाज व पारिवारिक क्रिया–कलापों में वे राय देते हैं या सारी जिम्मेदारियां अब अपने बच्चों के कंधों पर सौंप दी है। अब वो आराम से रहना चाहते हैं एक सुखी व शान्ति की जिन्दगी जो उनको बेफिक्र, जिन्दादिली व नए आयामों के साथ गुजारनी पड़े उसमें वो किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप बर्दाश्त नहीं कर सकते क्योंकि वो नहीं चाहते जिनको उन्होंने पाला पोसा वही उन्हें आज्ञा या राय दे। कई परिवारों में पारिवारिक वृद्ध रिटायर होने के बाद अपनी परिवार के साथ रहना चाहते है। पोता पोती को अपनी गोद में खिलाना चाहते है अपने बच्चों के साथ बैठना चाहते है व कुछ बातें करना चाहते है। लेकिन आजकल संयुक्त परिवारों का टूटता क्रम वृद्ध व्यक्ति को एक ऐसे चौराहे पर लाकर खड़ कर देता है कि वह अपने आप को अकेला व बेसहारा समझने लग जाता है क्योंकि आजकल की पीढ़ी वृद्ध व्यक्तियों के कहने पर नहीं चलती है। मानों उन्होंने अपने सारे अधिकार खो दिये हैं। उनको परिवार के सदस्यों द्वारा प्रत्याशित भूमिकाओं के अनुरुप ही अपनी भूमिका का निर्वाह करना होता है जब व्यक्ति प्रत्याशित भूमिका को पूरा करने में सहायक नहीं होता है तो उसको परिवार या समाज में असमायोजन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

अतः व्यक्ति के विकास के लिए आवश्यक है कि परिवार के साथ उसका समायोजन बेहतर हो क्योंकि व्यक्ति का विकास परिवार से शुरू होता है और फिर समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा वह समाज का क्रियाशील सदस्य बनता है समाज के क्रियाशील सदस्य के रूप में उसे विभिन्न प्रकार की समस्याओं और परेशानियों का सामना करना पड़ता है। किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह कितनी समस्याओं और परेशानियों का सामना करता है बल्कि इस बात पर निर्भर करता है कि इन समस्याओं और परेशानियों के प्रति किस प्रकार से प्रतिक्रिया करता है या वह किस प्रकार से समायोजन करता है।इसलिए मैंने पारिवारिक उत्तरदाताओं से साक्षात्कार के द्वारा अनुसूची के प्रश्नों को पूछा व उनका उत्तर प्राप्त किया। यह प्रश्न मैंने उत्तरदाता के व्यक्तिगत स्तर पर पांच भागों में बांट दिये जो पारिवारिक उत्तरदाता से सम्बन्धित थे उनमें से कुछ प्रश्नों के उत्तर सकारात्मक व कुछ प्रश्नों के उत्तर नकारात्मक आए। प्रश्न इस प्रकार है–1. स्वयं सम्बन्धी 2. स्वास्थ्य सम्बन्धी 3. परिवार सम्बन्धी 4. वृद्धो का वित्तीय प्रबन्ध 5. वृद्ध एवं सामाजिक गतिविधियॉं ।

निष्कर्ष

भारतीय सन्दर्भ में परिवार को केवल संयुक्त परिवार के नजरियों से ही देखा जाता था परन्तु यह परिवार टूटे व नाभिक परिवार में बदल गये। यह एक बहुत बड़ा अंतर था जिसे पूर्णतया अपना तो लिया परन्तु दुष्परिणाम लगातार आते रहे। संयुक्त परिवार एक सुरक्षा प्रदान करता है, उनमें निहित मूल्य व्यक्ति को गलत धारणाओं और पेशों की और ले जाने से रोकते है जिससे मानव किसी भी प्रकार के फैसले लेने से पूर्व परिवारजनों से अनुशंषा व मंत्रणा करता है। यही उपाय परिवार विच्छेदन को रोकते थे, आज के भौतिक युग में जहां हर तरफ आधुनिकीकरण की दौड़ लगी हुई है इन पारिवारिक मूल्यों की आधुनिकीकरण के

दृष्टिकोण से देखा जा रहा है सम्बन्धों में लगातार दूरियां बढती जा रही हैं। इस कारण उनका अकेले समय व्यतीत करना, अपनी बात किससे कहे, जीवन के अंतिम पड़ाव पर जीवन साथी का साथ न होना यानी उनकी असहायता का परिचायक। उत्तरदाताओं के जीवन प्रबंध में 60 वर्ष के बाद कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है तथा उनके परिवार से दूर रहने वाले सदस्य आते जाते रहते हैं। उत्तरदाताओं की उम्र अधिक होने के साथ समायोजन का स्तर भी बढ़ा है। बीमार व्यक्तियों की अपेक्षा स्वस्थ व्यक्ति अच्छे ढंग से समायोजित हो जाते हैं। कई प्रतिशत उत्तरदाताओं के बच्चे उन्हें पूर्ववत आदर व स्नेह देते हैं तथा विभिन्न कार्यों में उनकी सलाह मशविरा लेते हैं। जब तक व्यक्ति नौकरी में संलग्न रहता है तो वह परिवार का निर्देशक होता है। उसके विचारों के अधीन अन्य सदस्य कार्य करते हैं परन्तु सरकार या संस्था से सेवानिवृत्ति के पश्चात् व्यक्तियों को यह समझना पड़ता है कि अब सिर्फ उनकी विचारधारा नहीं चलेगी, अब वो अपना मत तभी देते हैं, जब उनसे कोई पूछता है ऐसा इसलिए है कि बेटे, बेटियां अब परिपक्व हो चुके हैं तथा अपना भला-बुरा खुद जानते हैं एवं उनको स्वतंत्रता चाहिए। उनको अपने विचारों कों लादना नहीं चाहिए, लेकिन अभिभावक होने के नाते व अपने परिवार के सदस्यों का धार्मिक उत्सवों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करे व नैतिक कर्त्तव्यों से अवगत करवायें पर वे किसी भी कार्य को करने के लिए बाध्य नहीं कर सकते हैं।परिवार की किसी समस्या का समाधान नहीं कर पाने से उन्हें थोड़ी चिंता तथा वे कभी-कभी निराश भी हो जाते तथा उन्हें थोड़ी परेशानी भी महसूस होती है।उत्तरदाताओं का कहना है कि वे अब समाज सेवा की ओर उन्मुख हुए है। जबकि कुछ उत्तरदाताओं में समाज सेवा में अपेक्षाकृत कम रुचि दिखाई है क्योंकि वो अब अपने निजी कार्य करते हैं जो उन्हें सेवानिवृत्त से पहले नहीं किये। पठन पाठन, धार्मिक पुस्तकें, बागवानी करना, बच्चों को पढ़ाना, घर का छोटा-मोटा काम करना आदि। डे केयर होम में जाना व दोस्तों के साथ बातचीत व गेम्स खेलना। अवकाश प्राप्ति के बाद कुछ महीनों तक उन्हें अपने आपको समायोजित करने में कठिनाईयों का अवश्य सामना करना पड़ता है। परन्तु धीरे-धीरे सब कुछ सामान्य हो जाता है। उत्तरदाता की मानना है कि बड़ी उम्र में अपने को परिस्थितियों के अनुकूल अच्छी तरह ढालने में धार्मिक कृत्य बहुत सहायक होते हैं।

बड़ी उम्र के मरीजों के जीवन में धर्म एक बहुत बड़ी शक्ति होता है और शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य से इसका गहरा रिश्ता होता है। अधिकांश उत्तरदाताओं के अपनी वर्तमान आर्थिक स्थिति से संतुष्ट हैं तथा थोड़े उत्तरदाता ऐसे भी है जो कि संतुष्ट नहीं है। कई को उनके बच्चों का सहयोग प्राप्त होता है ।कुछ उत्तरदाताओं का मानना है कि 60 वर्ष के बाद कुंठाएं पाई जाती हैं तथा कुछ में नहीं। जब व्यक्ति के पास अवकाश के क्षणों की प्रचुरता हो जाती है तो उत्तरदाता इन क्षणों में अपने मित्रों से मिलने जाते हैं जो पहले की तुलना में कम हो जाता है। टी.वी. पर समाचार देखते हैं, पत्र लिखते हैं। अवेदना आश्रम में जाते हैं समय व्यतीत करते हैं क्योंकि जब व्यक्तियों का आर्थिक स्तर जितना ऊँचा होगा परिवार के सदस्यों के साथ समायोजन का स्तर भी ऊँचा होगा। पारिवारिक दायित्वों को पूर्ण कर लेने से व्यक्ति अपने आप को स्वतंत्र महसूस करता है। संयुक्त परिवार ने आधुनिकता की होड़ में आगे निकलने के लिए टूट कर छोटे-छोटे टुकड़ों के रुप में एकांकी परिवार का रुप धारण कर लिया है। जिंदगी की व्यस्तता तथा तेज रफ्तार से मानवीय संबंधों में असंवेदनशीलता आ गई। इससे वृद्धों को काफी आघात पहुंचा है। ज्ञान के विस्फोट ने संचार क्रांति ला दी है। परिणामस्वरुप संचार के साधन जैसे टी.वी., रेडियो, वी.सी.आर., कम्प्यूटर सी.डी. आदि के प्रति युवाओं का मोह बढ़ा है इसका सबसे नकारात्मक प्रभाव वृद्धों के ऊपर पड़ा है। वह घर में अकेलेपन के जीवन व्यतीत करने को बाध्य हो गये हैं। जीवन शैली में परिवर्तन के कारण परिवार में महिला तथा पुरुष दोनों के कामकाजी होने से वृद्धों की देखभाल को समय की बर्बादी समझा जाता है। जिससे वह उपेक्षित महसूस करते हैं। ऐसे में यह स्वाभाविक ही है कि वृद्धजन अपने-आपको परिवार और समाज से कटे हुए हाशिए पर पड़े हुए, गैर जरुरी, अनचाहे और उपेक्षित महसूस करने लगे हैं। वृद्धावस्था में मनुष्य अपने शरीर तथा मस्तिष्क दोनों से ही शिथिल हो जाता है। ऐसे में परिवार तथा समाज के सहयोग न मिलने के कारण वह स्वयं को अकेला तथा असहाय महसूस करता हैं। जिनका मूल कारण संयुक्त परिवार का टूटना है। परिणामस्वरूप अकेलापन, आर्थिक निर्भरता, उपेक्षा की पीड़ा, स्वास्थ्य का गिरता स्तर एवं पीढ़ियों में अंतर का होना है।भारतीय संस्कृति दूसरी परंपरा, इसके विश्वास व

मूल्य ऐसे हैं जो परिवार में समायोजन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संस्कृति में सम्मिलित जाति, मित्र, समूह आदि की उन्हें मूल्यों को मानने वाले होते हैं।अतः भारतीय शक्तियों की समायोजन में संस्कृति एवं साधन मुख्य भूमिका का निर्वाह करते हैं क्योंकि भारत की संयुक्त परिवार प्रणाली पूर्णतया टूटी नहीं है।निम्न बिन्दु इस प्रकार है–1. आज भी उत्तरदाता व्यक्ति अपने को किसी न किस कार्य से जोड़े रखना चाहते हैं।2. विवाहित वृद्धजनों में अविवाहित, विधुरव परित्यक्त वृद्धों की अपेक्षा समायोजन का स्तर अधिक पाया जाता है।3. उत्तरदाताओं की सेवानिवृत्त काल के आसपास वृद्धों की समस्याएं बढ़ जाती है, वही बाद में उनकी समस्याएं कम हो जाती हैं। 4. विधुरव परित्यक्त लोगों की अपेक्षा विवाहित लोग के मित्रों की संख्या भी अधिक है। 5. आर्थिक रुप से समृद्ध व्यक्ति में संतुष्टि का स्तर अधिक पाया जाता है।जिनकी युवा पीढ़ी के साथ सामंजस्य अच्छा है वे अपेक्षाकृत बेहतर समायोजन बनाए हुए है। सेवाकाल में ही अधिकांश उत्तरदायित्वों को पूर्ण कर लेने वाले व्यक्ति आज बेहद सुखी महसूस करते हैं। अतः उत्तरदाताओं के जीवन में समायोजन के चार तत्व मुख्यतया प्रभावित करते हैं–1. शारीरिक स्वास्थ्य, 2. पारिवारिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति, 3. आत्माभिमान एवं 4. उत्तरदाताओं के भूमिकाओं रुचि (मित्रों से मित्रता करने में रुचि, अवकाश क्षणों में किए जाने वाले कार्यों में रुचि लेना, सहायक संस्थाओं में भाग लेना, राजनीतिक दलों में भाग लेना) ने स्तर जितने उच्च होंगें उतना ही उत्तरदाताओं से अपना तालमेल कर पाएगा। वर्तमान समय में वृद्धों को कई कारक प्रभावित करते हैं जिससे वे समायोजन करने में कठिनाईयां आती हैं।1. संसार के प्रति कम रुचि रखना व स्वयं के प्रति केन्द्रीकृत रहना 2.स्थायी सोच व उम्र का पड़ाव 3. बीमारी के प्रति स्थायी रुप से चिंचित रहना 4.सभी क्षेत्रों में संचालन क्षमता में कमी 5.पारिवारिक संबंधों के कमजोर होने के कारण परिवार से अलगाव महसूस करना 6 समाज से पृथक रहना 7.स्वयं को व्यस्त न रखना।मगर बुजुर्ग इन सभी को अपने आप या स्वयं चिन्तन करके पता लगाये तो आधी से ज्यादा परेशानी समाप्त हो जायेगी। बुजुर्गों को कई जगह विशेष छूट दी गई है। बात करें तो रेल किराये में छूट देने के साथ ही स्टेशनों पर उनके लिए लिफ्ट या ऐलीवेटर का इंतजाम किया जाए या कई बुर्जुग अपने आपको इससे इसलिए बचाते हैं क्योंकि सीढ़िया चढ़कर पुल पार करने और अन्दर के प्लेटफार्म तक पहुंचने की इजाजत उनकी उम्र व सेहत उन्हें नहीं देती, शहरों में बसों में भी ऐसी व्यवस्था नहीं है। बुजुर्गों के लिए सोसाइटियों में मनोरंजन केन्द्र बनाने के बारे में भी नहीं सोचा गया है, जहां वे मिल जुलकर समय बिता सकें और मन हल्का कर सकें। कई बातें ऐसी होती हैं जो साथ वाले चलचित्रों या हमउम्र के साथ ही की जाती हैं उसके लिए निश्चित स्थान की व्यवस्था होनी चाहिए।

सुझाव

1 मजबूत व विभिन्न रुचियां 2 आर्थिक स्वालम्बन, जो स्वतंत्र जीवन जीने में सहायक होता है। 3.सभी उम्र के लोगों से सामाजिक संबंध होना। 4. काम में रुचि लेना। 5. सामूहिक संगठनों में भागीदारी रखना 6. घर में शारीरिक कार्य का योगदान करना 7. स्वयं के प्रति निम्नतम चिंतित होना 8. दैनिक कार्यों में रुचि रखना 9. दूसरों की कमियों पर ध्यान नहीं देना।

इन सभी सुझावों से वृद्धावस्था में बेहतर समायोजन होता है। लेकिन परिवार में कई बार बच्चों द्वारा वृद्ध व्यक्ति की तरफ ध्यान नहीं दिया जाता। इसके लिए उनको उनकी तरफ ध्यान देना चाहिए क्योंकि अगर वो बात नहीं करेंगे उनसे तो वो अकेले अवसाद की स्थिति में पहुंच जायेंगे जो कि समाज व देश के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। इसलिए बच्चों को उनके पास बैठना चाहिए व उनसे बात करनी चाहिए उनको थोड़ा प्यार देना ही उनके लिए एक वरदान से कम नहीं है। वृद्धावस्था के प्रति सकारात्मक सोच रखने से वृद्धावस्था विकास का एक सुखमय परिणाम होता है। वृद्धावस्था के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण रखना और उम्र वृद्धि से होने वाले शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों को स्वीकार करना। समाज के संतुष्टिपूर्ण जीवन को एक उपलब्धि के रुप में आंकना। निरंतर रुचिकर व अर्थपूर्ण गतिविधियों में संलग्न रहना। वृद्धों के लिए बनाई गई सृजनात्मक क्रियाओं में भागीदारी करना। आर्थिक स्थिति के अनुरुप जरुरतें रखना।अतः उपरोक्त सुझावों के माध्यम से पारिवारिक वृद्धों के जीवन को उचित दृष्टिकोण व विकास की दृष्टि से विकसित करने में सहायता प्रदान करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *बोस, ए बी एण्ड के डी ओन्योड : द एजिनिग इन इंडिया,अभिनव पब्लिकेशन, नई दिल्ली (1988)*
2. *विमल ,अल्पना : समायोजन का समाजशास्त्र, आर.बी. एम.ए. पब्लिशर्स, जयपुर–2004*
3. *शर्मा,वीरेन्द्र प्रकाश–रिसर्च मेथ्डोलॉजी पंचशील प्रकाशन, जयपुर–1998*
4. *श्रीवास्तव, ए.आर.एन. तथा आनन्द कुमार सिन्हा : सामाजिक अनुसंधान के.के. पब्लिकेशन, इलाहाबाद 1999*
5. *आपका बुर्जुग परिजन ''जब मृत्यु के करीब हो'' ,एन. आई.सी.ई. इंडियन जरेन्टोलॉजिकल एसोसिएशन–भालोरिया प्रिण्टर्स, जयपुर–2004*
6. *बुर्जुग चिकित्सक से परामर्श कब, एन.आई.सी.ई. इंडियन जरेन्टोलोजिकल एसोसिएशन, भालोरिया प्रिण्टर्स–2004*
7. *जैन ,एस.एस., धीरेन्द्र देवर्षिः युग्मक एवं परिवर्धन जैविकी, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर 2004*
8. *सोनी, के.सी. 'परिवर्धन जैविकी कॉलेज बुक सेन्टर 2007'*
9. *एम्बर, एम्बर, पैरेग्राइन, मानव विज्ञान पीयरसर्न एजुकेशन, 2004*

चचवंशमहाकाव्य का प्रकृति-चित्रण

डॉ. राजेश कुमार मीना
वरिष्ठ अध्यापक, शिक्षा निदेशालय, रा.रा.क्षे., दिल्ली

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश : *प्रकृति-चित्रण के अनेक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत काव्य में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। इन दृश्यों के चित्रण में कवि ने अपने अनुभवजन्य प्राकृतिक ज्ञान का उपयोग किया है। इस महाकाव्य में प्रकृति अपने स्वरूप में चित्रित की गई है। कवि ने संध्याकाल, ग्रीष्म ऋतु , भयाकुल पशुओं, महर्षि के आश्रम का सजीव किया है । कवि ने मानव सौन्दर्य की तीव्रता एवं यथार्थता की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का आश्रय लिया है। उन्होंने अपनी आलौकिक कल्पना और प्रतिभा द्वारा प्रकृति में भावप्रवणता गतिशीलता तथा चेतना का संचार किया है।*

संकेताक्षर : *प्रकृति चित्रण, प्रकृति-पर्यवेक्षण , साक्षात्कार, भावप्रवणता, सुहन्दी।*

काव्य के दो पक्ष हैं – अंतरंग पक्ष तथा बहिरंग पक्ष। महाकाव्य के रचना विधान में इन दोनों पक्षों का संतुलन आवश्यक है। अंतरंग पक्ष में बुद्धितत्त्व, रागात्मक तत्त्व और कल्पना तत्त्व आते हैं। बुद्धितत्त्व में कवि द्वारा उपस्थित किये गये श्रेष्ठ विचार और संदेश देखे जाते हैं। कल्पना तत्त्व में वस्तु का चित्रांकन और नवनिर्माण देखा जाता है तथा रागात्मक तत्त्व में हृदय स्पर्शिता और तन्मयता रखी जाती है। एक उच्चकोटि के महाकाव्य में अंतरंग पक्ष की समुचित व्यंजना अपेक्षित है क्योंकि काव्य में रस परिपाक तथा भावों की व्यंजना का सम्बन्ध अंतरंग पक्ष से ही है। बहिरंग पक्ष में काव्य के बाप्र उपकरण अलंकार, छन्द, भाषाशैली, प्रकृति-चित्रण, सौन्दर्य-चित्रण आदि का समाहार किया जाता है।

प्राकृतिक वर्णन में रामचन्द्र शाण्डिल्य ने जो मनोरम काव्य रचना की है, वह साहित्य जगत् में अद्वितीय है। इनके प्रकृति वर्णन में इतनी सजीवता है, इतनी रमणीयता है, इतनी भव्यता और स्वाभाविकता है कि पाठकों और श्रोताओं के मन बरबस ही रम जाते हैं। पं. रामचन्द्र शाण्डिलय का चचवंश प्राकृतिक छटाओं से ओतप्रोत है। इस महाकाव्य में प्रकृति अपने स्वरूप में चित्रित की गई है। चचवंश के प्रारम्भिक मंगलाचरण में अपने अधीष्टदेव भूतनाथ के चरणकमलों का साक्षात्कार प्रकृति के ही भीतर करके कवि अपने जनमंगल की कामना करता है। प्रकृति के सूक्ष्म रहस्यों को सावधानी से हृदयंगम किया है। उनके प्राकृतिक वर्णन इतने सजीव हैं कि पूर्णत वस्तु हमारे नेत्रों के सामने नाच उठती है।

पं. रामचन्द्र शाण्डिल्य ने प्रकृति वर्णन द्वारा बिम्ब ग्रहण कराते हुए माँ सरस्वती का ध्यान किया है–

सौदामनी खे तरलप्रभाभि-
र्यथा क्षिणोति प्रसृतान्धकारम्।
वागीश्वरी मे त्वरितं तथा तां
मन प्रसक्तां जड़तां निरस्यात्।।[1]

अर्थात् जिस तरह, बिजली अस्थिर चमक के द्वारा आकाश में फैले हुए अन्धकार को दूर कर देती है उसी तरह माँ सरस्वती मेरे मन में व्याप्त जड़त्व को दूर करें। यहाँ कवि ने वाक्देवी का ध्यान कर सफल काव्य लेखन की भी कामना की है।

सिन्धुदेश के वर्णन के प्रयोग में सूर्य अपने अम्बर स्वरूप मेघों को छोड़कर सिन्धु नदी के पवित्र जल में प्रतिदिन स्नान करके आनंदित होते हैं–

निजाम्बरं मे मयं विमुच्य
बिम्बात्मना यत्सलिलं विगाप्र।
सहसरश्मिर्भगवान् नदेऽस्मिन्
निमज्जनं प्रत्यहमादधाति।।[4]

पन्द्रहवें सर्ग में कवि ने द्वितीय श्लोक से 24वें श्लोक पर्यन्त प्राकृतिक छटा का अतिरमणीय दृश्य प्रदर्शित किया है, जिसमें संध्याकाल का वर्णन बहुत ही मनोहर है–

दिव्याङ्गनाभिर्ननु सान्ध्यकाले
वर्षा कृता लोहितचन्दनस्य।
रक्तातिरक्तस्तपनस्तदाभूत्
तस्य द्युतिश्चातिमनोहराऽऽसीत्।।[5]

अर्थात् सायंकाल के समय में निश्चित ही देवाङ्गनाओं ने लालचन्दन की वर्षा कर दी हो, ऐसी लालिमा से बहुत अधिक लाल सूर्य आकाश में था और उसकी शोभा अति मनोहर थी। प्रकृति की सुन्दरता लोगों के मन हरती है किन्तु प्रकृति की कुरुपता से लोग डर भी जाते हैं। कवि ने ग्रीष्म ऋतु में वन के वृक्षों के झड़े हुए पत्तों का बड़ा भयंकर चित्रण किया है–

पतन्ति पत्राणि महीरुहाणां
विभन्ति ते प्रेतसमानरूपा।
तेषां कुरूपं भयमातनोति
रात्तौ जनानां वनराजिमध्ये।।[6]

चचवंश में आद्योपान्त कोमल एवं सरस प्रकृति का भव्य वर्णन मिलता है। उनकी सुहन्दी वस्तुत प्रकृति कन्या ही है। वह प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में पैदा हुई। प्रकृति ने उनका पालन–पोषण और शृंगार किया तथा उनका जन्म भी प्रकृति की गोद में ही हुआ–

अथैकदा वृक्षतले मयेयं
व्यालोकि बाला शयिता प्रशान्ता।
वृत्तेन वल्लीव महाद्रुमेण
सञ्छिंदिता सा फणिना फणाग्रै।।[7]

अर्थात् एक दिन मैंने (तपस्वी ने) वृक्ष के नीचे सोई हुई इस कन्या को देखा। बड़े पेड़ से ढकी हुई बेल के समान वह कन्या सर्प के फण के अग्र भाग से ढकी हुई थी।

कवि ने प्रकृति का सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण किया है। चचवंश के द्वितीय सर्ग में भयाकुल पशुओं का वर्णन इस प्रकार किया है कि वह दृश्य नेत्रों के समक्ष सजीव हो जाता है–

ढक्कामृदङ्गानकवाद्योषै
सान्द्रो निनाद प्रसृतो वनान्ते।
श्रुत्वा विद्द्रु पशवोऽतिभीताप्रिया न केषामसवो
भवन्ति?।।[8]

अर्थात् काव्य के द्वितीय अंक में रायसहासी द्वितीय सैनिकों के साथ आखेट के लिए जंगल में प्रवेश करता है जिससे ढोल–नगाड़ा आदि वाद्यों की भयंकर आवाज सुनकर अत्यन्त भयभीत पशु इधर–उधर भागने लगे। प्राण भला किसे प्रिय नहीं होते।

महर्षि के आश्रम का सजीव एवं चित्ताकर्षक वर्णन कवि ने चित्तेपम वर्णन शक्ति परिचायक है। जब मृत्युमुख में जाते हुए राजा कि किसी धनुषधारी कन्या ने सुअर को अपने बाणों से मारकर रक्षा की तो राजा ने उस कन्या के विषय में पूछा तो समीप ही अपने पालित पिता की कुटि पर आमंत्रित किया–

आमन्त्रयेऽहं नृप! साञ्जिलिस्त्वां
ममोटजे क्लान्तिमिहापनेतुम्।
प्रीत्या समागत्य पदार्पणेन
राजन्! पवित्रीकुरु मन्निवासम्।।[9]

अर्थात्– हे नृप! मैं आपको हाथ जोड़कर थकान दूर करने के लिए मेरी कुटिया में आमंत्रित करती हूँ। हे राजन! प्रेमपूर्वक अपने कदमों को रखकर मेरे निवास स्थान को पवित्र करो।

तपोवन के इस सूक्ष्म वर्णन को देखकर पं. रामचन्द्र की प्रकृति–पर्यवेक्षण की शक्ति का ज्ञान सहज ही हो जाता है। चचवंशमहाकाव्य में आद्योपान्त कोमल एवं सरस प्रकृति का वर्णन मिलता है। प्रकृति का सारा सौन्दर्य स्वाभाविकता की आधारशिला पर आधारित है। इसलिए कवि ने मानव सौन्दर्य की तीव्रता एवं यथार्थता की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का आश्रय लिया है। निम्नांकित पद्य में प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से अभिव्यक्ति तथा रमणीयता, मुग्धता एवं उपभोग योग्यता आदि से मण्डित बौद्धकन्या का सौन्दर्य किसे नहीं लुभाता।

रत्नप्रदीपकुसुमैरतिशोभमानां
माल्यसजं धृतवती वरवर्णिनी सा।

भास्वत्सखीजनयुता सदसि प्रविष्टा
मोदं न्यधात् सपदि सभ्य जनेक्षणानाम्।।[8]

कवि के प्रकृति वर्णन की एक अन्य विशेषता यह है कि प्रस्तुत अमूर्त विशेषता और सुषमा सम्बन्धी विलक्षणताओं के साकार साक्षात्कार के लिए वह प्रकृति के अप्रस्तुत प्रसंगों की निर्बाध सहायता लेता है। बौद्धकन्या की अकृत्रिम सुषमा की ललित कल्पना को मूर्तरूप में चित्रण करने के लिए कहता है–

पद्माना सुपरिशोभित पद्मिनीव
शाटीं निधाय पटचीरयुतां शुभाङ्गीं।
नाना सखीभिरथ संपरिवेष्टिता सा।
दृष्टातिमन्दगतिका नृपतेस्तनूजा।।[9]

बौद्धकन्या के सहजरूप लावण्य का मूर्तिमान रूप उपस्थित करने के लिए कवि ने कमल तथा रेशमी जडाव वाली साड़ी से सहायता ली है।

पं. रामचन्द्र की प्रकृति मानव के प्रति संवेदन एवं सहानुभूति रखती है। कवि के प्रकृति वर्णन की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि उन्होंने अपनी आलौकिक कल्पना और प्रतिभा द्वारा प्रकृति में भावप्रवणता गतिशीलता तथा चेतना का संचार किया है। इस काव्य में कवि ने प्रकृति को मानव की सच्चे अर्थों में सहचरी बना दिया है। सुहन्दी के विदाई के अवसर पर पालित पिता द्वारा आशीर्वाद के साथ विदा करने पर सुहन्दी की सहचरी प्रकृति ने भी विदा दी, तो मयूर नाचते हैं। उसकी ओर संकेत करके वे कहते हैं कि सुहन्दी के वन के साथी वृक्षों, पक्षियों, लतादि ने भी तोतों के वैदिक मन्त्रों से उसे जाने की आज्ञा दे दी है–

मोदान्मयूरा ननृतु पुरस्ता–
च्छुका वितेनु श्रुतिमन्त्रघोषम्
फुल्लानि पुष्पाणि बभुर्लतासु
वनं समुल्लासभराल्ललास।।[10]

प्रकृति सुहन्दी में एवं सुहन्दी प्रकृति में पूर्णत धुल–मिल गये है, इसलिए सुहन्दी के विदा के अवसर पर पालित पिता तपोवन के मृगादि को सम्बोधित करते हुए कहते है–

प्रगृह्य हस्तेन मुखं मृगस्य
स रुद्धकण्ठो मुनिरब्रवीत तम्।
तुभ्यं न दास्यत्यधुना सुता मे
घासादिकं ते स्वकराम्बुजेन।।[11]

अङ्के समानीय शशं स रागात्
प्रोवाच तस्मै विरहातुरोऽसू।
इत प्रयाता तनया मदीया
या ते ददाति स्म करेण धान्यम्।।[12]

सुहन्दी के इस चरम प्रकृति प्रेम का प्रभाव यह होता है कि तपोवन के समय जड़–चेतन उसके ऐसे अनन्य अनुरागी हो जाते हैं। अचेतन प्रकृति मानव के समान सचेतन एवं सजीव हो गयी है। जिस तरह यह कवि कालिदास ने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के चतुर्थ अंक में शकुन्तला के वियोग से खिन्न पशु, पक्षी, लता तथा वृक्षों का वर्णन किया है, उसी तरह प्रस्तुत महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में कवि ने सुहन्दी के पतिगृह प्रस्थान के समय का मानवीकरण करके सहृदयजनों को आनंदित किया है–

प्रस्थानकाले शिशुना शशस्य
तत्पादपद्मं स्वमुखेन लीढम्।
धृत्वा स्ववक्त्रेऽञ्चिलमेव तस्या
मार्गोऽवरुद्धो मृगशावकेन।।[13]

अर्थात् प्रस्थान के समय खरगोश के बच्चे ने सुहन्दी के चरणकमल को अपने मुख से चाटा तथा उसके आँचल को अपने मुख से पकड़कर रास्ता ही रोक दिया।

तत्पादमूलं विलिहन् सशोकं,
तामन्वगच्छच्छुनकोऽनुरक्त।
कथञ्चदेतान् विनिवर्त्य सर्वान्
ययौ नवोढा निजभर्तृभूमिम्।।[14]

अर्थात् उससे प्रेम करने वाला कुत्ते का पिल्ला उसके चरणों को चाटते हुए दुख के साथ उसका अनुसरण करने लगा। इन प्रकार किसी तरह वह नववधू (सुहन्दी) अपने पति की देशभूमि को चली गई।

इस प्रकार प्रकृति–चित्रण के अनेक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत काव्य में यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं। इन दृश्यों के चित्रण में कवि ने अपने अनुभवजन्य प्राकृतिक ज्ञान का उपयोग किया है। इसलिए प्राकृतिक दृश्यों का इतना सफल चित्रण कर सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चचवंशमहाकाव्यम् 1/4
2. चचवंशमहाकाव्यम् 1/20
3. चचवंशमहाकाव्यम् 15/14
4. चचवंशमहाकाव्यम्, 1/45
5. चचवंशमहाकाव्यम्, 2/54
6. चचवंशमहाकाव्यम्, 2/27
7. चचवंशमहाकाव्यम्, 2/48
8. चचवंशमहाकाव्यम्, 5/52
9. चचवंशमहाकाव्यम्, 5/51
10. चचवंशमहाकाव्यम्, 2/59
11. चचवंशमहाकाव्यम्, 2/76
12. चचवंशमहाकाव्यम्, 2/77
13. चचवंशमहाकाव्यम्, 2/72
14. चचवंशमहाकाव्यम्, 2/73

संत कृपालु महाराज के भक्ति साहित्य में निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म का समन्वय

माला खेमानी
शोध छात्रा, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

शोध सांराश : *प्रस्तुत शोध आलेख जगद्गुरु संत कृपालु महाराज के साहित्य में अन्तर्निहित निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म के समन्वय पर आधारित है। उन्होंने समस्त विरोधाभासी तत्वों का वैदिक प्रमाणों से समन्वय करते हुए ईश्वर प्राप्ति हेतु भक्ति मार्ग की प्रतिस्थापना की है। संत कृपालु महाराज द्वारा विरचित प्रेम रस सिद्धान्त, प्रेम रस मदिरा, युगल शतक, युगल रस, श्यामा गीत, राधा गोविन्द गीत, भक्ति शतक एवं ब्रज रस माधुरी को (उपकरण) के रूप में प्रयुक्त करते हुए विषय वस्तु विश्लेषण पद्धति को आधार बनाकर अध्ययन किया गया है। संत कृपालु महाराज के साहित्य में ब्रह्म की निराकार एवं साकार उपासना का समन्वय मिलता है। संत कृपालु महाराज ब्रह्म को निराकार मानते है किन्तु साथ ही निराकार ब्रह्म के साकार स्वरुप के विज्ञान को वैदिक उदाहरणों से प्रमाणित करते है। उनके मतानुसार जिस प्रकार जीवात्मा निराकार है किन्तु जीवात्मा भी शरीर धारण करती है। उसी प्रकार सर्व शक्तिमान परम ब्रह्म भी निराकार होते हुए दिव्य शरीर और गुणों को धारण करता है। उनका साहित्य न केवल हिन्दी साहित्य अपितु समस्त विश्व साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है।*

संकेताक्षर : *निर्गुण निराकार ब्रह्म ,सगुण साकार ब्रह्म ,जीवात्मा,विदानन्दमय शरीर,दिव्य।*

जगद्गुरु संत कृपालु महाराज के साहित्य में ब्रह्म की निराकार एवं साकार उपासना का समन्वय मिलता है। जगद्गुरु कृपालु महाराज ब्रह्म को निराकार मानते हैं किन्तु साथ ही निराकार ब्रह्म के साकार स्वरुप के विज्ञान को वैदिक उदाहरणों से प्रमाणित करते हैं। उनके मतानुसार जिस प्रकार जीवात्मा निराकार है किन्तु जीवात्मा भी शरीर धारण करती है उसी प्रकार सर्व शक्तिमान परम ब्रह्म भी निराकार होते हुए दिव्य शरीर और गुणों को धारण करता है। जैसा कि अपने सैद्धान्तिक ग्रंथ में उन्होंने लिखा है–

"जैसे निराकार जीव शरीर धारण करता है, वैसे ही ब्रह्म भी शरीर धारण करता है। अन्तर इतना है कि जीव मायाधीन होने के कारण मायिक शरीर धारण करता है। किन्तु ईश्वर योग माया के द्वारा दिव्य चिदानन्दमय शरीर धारण करता है जीवों को रस देने के हेतु स्वेच्छा से शरीर धारण करता है। यह कहना कि वह कभी तो दिखाई देता, तो यह बच्चों का सा तर्क है, क्योंकि ईश्वर का शरीर दिव्य है और हमारी आँखें प्राकृत हैं, अतएव प्राकृत आँख से दिव्य शरीर नहीं दिखाई पड़ सकता। उपासनादि के द्वारा अधिकारी बन जाते हैं एवं ईश्वर कृपा से दिव्य दृष्टि मिल जाती है, तब उस दिव्य ईश्वर को साकार रुप से सर्वत्र देखते हैं।" [1]

संत कृपालु महाराज वैदिक प्रमाणों से स्पष्ट करते हैं कि जब ब्रह्म सम्पूर्ण जगत का संवरण कर सूक्ष्म में लीन कर लेता है और पुनः सूक्ष्म जगत को स्थूल रुप में, साकार रुप में प्रकट करता है तो वह स्वयं निराकार से साकार क्यों नहीं हो सकता। अतः निराकार ब्रह्म ही स्वेच्छा से, जगत कल्याण के भाव से साकार रुप धारण करता है। इसलिए साकार एवं निराकार में

कोई भेद नहीं है। इसी समन्वय को उन्होंने स्वरचित अनेक रचनाओं में निरुपित किया है। यथा– 'प्रेमरस मदिरा' ग्रंथ का निम्न पद प्रस्तुत है–

गयो ब्रज माहिँ ब्रह्म बौराय।
जो अदृष्ट, अग्राह्य, अलक्षण, अव्यवहार्य कहाय ।
सोई चंचल माखन हित यशुमति, अंचल गहि बिरुझाय।
जो इन्द्रिय-मन-बुधि-अतीत अस, चारिहुँ वेद बताय ।
सोई छछिया लौं छाछ हेतु ब्रज, थेइ थेइ नाच नचाय ।
कहँ लौ कहिय 'कृपालु' जाय बलि, चौर जार पद पाय।[2]

प्रस्तुत पद में संत कृपालु महाराज ने निराकार ब्रह्म की साकार झाँकी प्रस्तुत की है। वे कहते हैं ब्रज में तो ब्रह्मा भी आकर बौराय जाता है क्योंकि जिस ब्रह्म को अर्थात भगवान को अदृश्य, अग्राह्य, अलक्षण एवं अव्यवहार्य माना जाता है वही निराकार ब्रह्म ब्रज में माखन प्राप्त करने के लिए चंचलता वश यशुमति के आँचल को पकड़कर झगड़ा कर रहा है तथा जिस ब्रह्म को चारों वेद,इन्द्रिय, मन, बुद्धि से परे बताते हैं, वही ब्रह्म ब्रज में थोड़ी सी छाछ के लिए गोपियों के इशारों पर नाच रहा है। संत कृपालु महाराज कहते हैं कि वही निराकार ब्रंह्म इस ब्रज में चोर, जार पद को प्राप्त कर बलिहार जा रहा है।

निर्गुण, सगुण के समन्वय का रुप हम संत कृपालु महाराज द्वारा रचित 'युगल रस' रचना के पदों में भी देख सकते हैं जैसे–

कैसे कोउ जाने तोहिँ कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
कर्ता भी अकर्ता भी है कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
निरपेक्ष सापेक्ष कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
जन्मा अजन्मा भी कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
गम्य भी अगम्य भी है कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
तू तो निराकार साकार भी है कान्हा,
निर्गुण सगुण भी कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
तोको जाने तू ही बस कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।[3]

अर्थात ईश्वर के दोनों रुप हैं, किस प्रकार कान्हा अर्थात कृष्ण भगवान को जाना जा सकता है। भगवान कर्ता भी हैं अकर्ता भी, निरपेक्ष भी हैं सापेक्ष भी हैं, जन्मा भी हैं अजन्मा भी हैं, गम्य भी हैं और अगम्य भी, निराकार भी हैं साकार भी हैं, निगुर्ण भी हैं सगुण भी हैं। अतः हे प्रभु! आपको केवल आप ही जान सकते हो।

इसी प्रकार 'युगल रस' के एक अन्य पद में भी संत कृपालु महाराज ने निराकार एवं साकार ब्रह्म का समन्वय किया है–

यह अचरज सुनु कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
श्रुति ने ब्रह्म अजन्मा माना,
सोइ जनमेउ बनि कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
श्रुति ने जगतपिता जेहि माना,
बन्यो नंद सुत कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
श्रुति ने निराकार जेहि माना,
सोइ धर नरतनु कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
श्रुति ने नेति नेति जेहि माना,
सोइ घोड़ा बन कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।
हौं 'कृपालु' अचरज नहिं माना,
भक्तिवश्य रह कान्हा, कान्हा कान्हा कान्हा।[4]

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि यह अचरज सुनो! वेद ने जिस ब्रह्म को अजन्मा माना है, वही ब्रह्म कृष्ण के रुप में जन्म धारण करता है। वेद जिसे जगत का पिता कहता है, वही नन्द का पुत्र कृष्ण बना है। वेद ने जिसे निराकार ब्रह्म स्वीकार किया है, उसी ने कृष्ण के रूप में मानव शरीर धारण किया है। वेद जिसकी महिमा का पूर्ण रुप से वर्णन करने में असमर्थ होकर 'नेति नेति' कहने लगता है। वह सखाओं को कंधे पर बिठाकर उनका घोड़ा बनकर ब्रज भूमि में दौड़ लगा रहा है। 'कृपालु' कहते हैं, मैं इस आश्चर्य को आश्चर्य नहीं मानता। कारण श्री कृष्ण सदा भक्ति के वश में रहते हैं।

इसी प्रकार 'भक्ति शतक' रचना में भी संत कृपालु महाराज ने अनेक दोहों में निराकार एवं साकार ब्रह्म के एकत्व का संदेश दिया है। यथा–

ब्रह्म निरंजन जनि भनो, सुनहु खोलि निज कान।
अंजन बनि डोलै सदा, पाछे ब्रज बनितान।[5]

अर्थात ब्रह्म को केवल निरंजन न कहो, ब्रह्म को निरंजन मानने वालों से, बड़े सख्त शब्दों में संत कृपालु महाराज कहते हैं कि वही निरंजन ब्रह्म ब्रज में ब्रजांगनाओं की आँखों में अंजन बनकर डोलता हुआ दिखाई देता है। इसी प्रकार एक अन्य दोहे में भी इसी एकत्व को देख सकते हैं।

जाको कह अज सोइ ब्रज, नन्द नन्दन बनि आय।
ग्वालन जूठन खात लखि, विधि बुधि गइ भरमाय।[6]

अर्थात जिस ब्रह्म को वेद में अजन्मा कहा गया है वही ब्रह्म ब्रज में नन्द नन्दन बनकर आया है और ग्वालों की झूठन खाते देखकर स्वयं ब्रह्मा की बुद्धि भी भ्रमित हो रही है कि ये अजन्मा ब्रह्म का कैसा स्वरुप है।

इसी प्रकार 'युगल शतक' ग्रंथ में भी संत कृपालु महाराज ने अनेक स्थानों पर ईश्वर के निर्गुण, सगुण रुपों के समन्वय की ओर संकेत किया है।

तेरे हैं अनन्त रुप अस श्रुति गाय,
वैसे ही अनन्त नाम श्रुति बतलाय।
ज्ञानिन को तेरा रुप ब्रह्म मन भाय,
योगिन को तू ही परमात्मा लखाय।
भक्तन प्रिय छवि श्यामा श्याम आय,
जाको मन भाय यामें वामें मन लाय। [7]

अर्थात वेद में ब्रह्म के अनेक रुपों का वर्णन है। अनन्त नामों का वर्णन हैं। ज्ञानियों को ब्रह्म सुहाता है, योगियों को परमात्मा नाम भाता है और भक्तों को कृष्ण–राधा का रुप भाता है। जिस भी व्यक्ति की जैसी चित्त वृत्ति होती है उसी प्रकार के रुप में उस का मन आसक्त हो जाता है। ये सभी रुप एक ही ईश्वर के हैं।

इसी प्रकार 'श्यामा श्याम गीत' में भी संत कृपालु महाराज ने निर्गुण ब्रह्म के वास्तविक अर्थ को समझाते हुए सगुण के साथ निर्गुण का समन्वय किया है–

वेद कहें निर्गुण ब्रह्म सुख धामा ।
याको अर्थ माया गुण हीन कह बामा।
ब्रह्म है सगुण याको अर्थ कह बामा।
दिव्य गुण युक्त श्याम हैं पूर्ण कामा।
ब्रह्म है अकाय याको अर्थ कह बामा।
श्यामा श्याम काय तो है चिदानन्द धामा। [8]

अर्थात संत कृपालु महाराज कहते हैं कि वेद में ब्रह्म को निर्गुण, सगुण एवं अकाय कहा है। इसका वास्तव में अर्थ यह है कि ब्रह्म माया के तीनों गुणों से परे, विशेष दिव्य गुणों से युक्त है तथा ब्रह्म मायिक, पंचभौतिक शरीर युक्त नहीं अपितु चिदानन्दमय स्वरुप से युक्त, शरीर धारी है।

कहने का तात्पर्य यह है कि ब्रह्म को निर्गुण, निराकार, निर्विशेष कहने का वास्तविक अर्थ यह है कि ब्रह्म मायिक विकारों से दूर विशेष दिव्य गुण, रुप, ज्ञान से युक्त है। इसी रचना के एक अन्य दोहे में भी इसी एकत्व के दर्शन होते हैं–

ब्रह्म था अतनु वाय तनु दियो श्यामा।
ब्रज रस पायो जब आईं ब्रज बामा। [9]

अर्थात ब्रह्म का वास्तविक स्वरुप तो निराकार है किन्तु राधा शक्ति की कृपा से अशरीरी ब्रह्म भी शरीर युक्त अर्थात साकार बनकर आया और ब्रज की गोपियों के साथ मिलकर रस की वृष्टि की। इस प्रकार निराकार ब्रह्म ही साकार बनकर, कृष्ण रुप में अवतरित हुआ है।

इसी प्रकार 'राधा गोविन्द गीत' में भी संत कृपालु महाराज ने ज्ञान, भक्ति के संदर्भ में निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म के गूढ़ रहस्य को समझाते हुए निराकार एवं साकार ब्रह्म को एक बताया है तथा ईश्वर के एकत्व किन्तु उसके रुप वैविध्य पर प्रकाश डाला है। वेद में जिस ब्रह्म को निर्गुण निराकार माना गया है वही ब्रह्म भक्तों के विनय से एवं कल्याण कामना से सगुण रुप धारण करता है–

ब्रह्म सत्य संकल्प गोविन्द राधे।
याते निराकार साकार बता दे।
ब्रह्म की स्वरुप शक्ति गोविन्द राधे।
ब्रह्म को सगुण साकार बना दे। [10]

अर्थात ब्रह्म की सत्य संकल्प शक्ति एवं योग माया ऐसी शक्ति है जो ईश्वर के निर्गुण, निराकार स्वरुप को साकार एवं सगुण बना देती है। साकार, सविशेष ब्रह्म इस संकल्प शक्ति से निर्गुण ,निराकार में परिवर्तित हो जाता है उसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म योग माया की शक्ति से सगुण, साकार रुप धारण कर लेता है।

इसी प्रकार 'ब्रज रस माधुरी' संकीर्तन रचना के अनेक छन्दों में संत कृपालु महाराज ने निर्गुण ब्रह्म एवं सगुण ब्रह्म के एकत्व की झाँकी प्रस्तुत की है। जैसे निम्न पद प्रस्तुत है जिसमें संत कृपालु महाराज ने ईश्वर को अद्वितीय माना है, हालाकि उस ईश्वर के तीन रुप हैं ब्रह्म, परमात्मा और भगवान।

अद्वितीय इक तत्व कहाय। ब्रह्म नाम जेहि वेद बताय।
ब्रह्म रुप भी तीन बताय। एक रुप तो ब्रह्म कहाय।
एक रुप परमात्मा आय । एक रुप भगवान कहाय।
तीनिहुँ रुप अभिन्न बताय । निराकार तो ब्रह्म कहाय।
परमात्मा साकार बताय। जो स्वरुप भगवान कहाय। [11]

अर्थात निराकार ब्रह्म का ही दूसरा रुप साकार भगवान एवं परमात्मा है। दोनों एक दूसरे के रुप हैं। दोनों में कोई भेद नहीं है। इसी प्रकार इस ग्रंथ के एक अन्य छन्द में भी संत कृपालु महाराज ने निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म को एक ईश्वर के दो रुप माने हैं।

ब्रह्म रुप आनन्द कहाय। दोउ शब्द पर्याय बताय।
ब्रह्म अभिन्न रुप द्वै आय। निराकार इक ब्रह्म कहाय।
इक साकार ब्रह्म कहलाय। कृष्ण ब्रह्म साकार कहाय। [12]

ISSN 2277-5587

उपर्युक्त पद में संत कृपालु महाराज ने ब्रह्म को एक ही माना है किन्तु उसके दो रुप स्वीकार किये हैं। एक निर्गुण, निराकार एवं दूसरा सगुण साकार। तत्त्वतः दोनों में कोई विशेष भेद नहीं है। साकार ब्रह्म के भी अनेक रुप हैं किन्तु वास्तव में भगवान तो एक ही है। इस प्रकार संत कृपालु महाराज ने निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म का समन्वय किया है।

इस प्रकार निष्कर्ष रुप में हम कह सकते हैं कि संत कृपालु महाराज के समस्त भक्ति साहित्य में समन्वय की विराट चेष्टा है। उन्होंने शास्त्रीय आधार पर विरोधाभासी तत्वों में समन्वय किया है। इसी समन्वयात्मक संदर्भ में उन्होंने निर्गुण निराकार एवं सगुण साकार ब्रह्म कों तात्विक दृष्टि से एक माना है क्योंकि ब्रह्म निराकार निर्गुण होकर भी संसार की कल्याण कामना से सगुण रुप धारण करता है। ब्रह्म की सत्य संकल्प शक्ति एवं योग माया ऐसी शक्ति है जो ईश्वर के निर्गुण निराकार स्वरुप को साकार एवं सगुण बना देती है। उन्होंने यह भी निरुपित किया हैं कि ब्रह्म को निर्गुण, निराकार, निर्विशेष कहने का वास्तविक अर्थ यह है कि ब्रह्म मायिक विकारों से दूर विशेष दिव्य गुणों से युक्त है। इस प्रकार निर्गुण निराकार ब्रह्म ही साकार रुप धारण करता है। अतः तात्विक दृष्टि से संत कृपालु महाराज ने स्पष्ट किया है कि ब्रह्म अर्थात ईश्वर एक ही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *त्रिपाठी, राम कृपालु : प्रेम रस सिद्धान्त, साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़, 2000, अध्याय, निराकार-साकार ब्रह्म*
2. *त्रिपाठी, राम कृपालु : प्रेम रस मदिरा, साधना भवन ट्रस्ट मनगढ़, 2001 सिद्धान्त माधुरी, पद संख्या- 36*
3. *त्रिपाठी, राम कृपालु : युगल रस, राधा गोविन्द समिति, गोलोक धाम, नई दिल्ली, 2009, पद संख्या-10*
4. *त्रिपाठी, राम कृपालु : युगल रस, राधा गोविन्द समिति, गोलोक धाम, नई दिल्ली, 2009, पद-संख्या-14*
5. *त्रिपाठी, राम कृपालु : भक्ति शतक, राधा गोविन्द समिति, गोलोक धाम, नई दिल्ली, 2005, दोहा संख्या-92*
6. *त्रिपाठी, राम कृपालु : भक्ति शतक, राधा गोविन्द समिति, गोलोक धाम, नई दिल्ली, 2005, दोहा संख्या-98*
7. *त्रिपाठी, राम कृपालु : युगल शतक, राधा गोविन्द समिति, गोलोक धाम, नई दिल्ली, 2009, पद संख्या-11*
8. *त्रिपाठी, राम कृपालु : यामा श्याम गीत, साधना भवन ट्रस्ट, मनगढ़, 2005, दोहा संख्या-76,77,78*
9. *त्रिपाठी, राम कृपालु : यामा याम गीत, साधना भवन ट्रस्ट, मनगढ़, 2005, दोहा संख्या-242*
10. *त्रिपाठी, राम कृपालु : राधा गोविन्द गीत, राधा गोविन्द समिति, गोलोक धाम, नई दिल्ली, 2005, दोहा संख्या-3154, 3158*
11. *त्रिपाठी, राम कृपालु : ब्रज रस माधुरी-02, साधना भवन ट्रस्ट, मनगढ़, 2001, पद संख्या-4*
12. *त्रिपाठी, राम कृपालु : ब्रज रस माधुरी-02, साधना भवन ट्रस्ट, मनगढ़, 2001, पद संख्या-10*

बालश्रमः एक समन्वित अध्ययन

डॉ तनुजा झा
सहायक आचार्य, माधव विश्वविद्यालय, पिण्डवाडा, सिरोही

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश : *बाल श्रम मानवता हेतु अपराध, समाज के लिए अभिशाप तथा देश के विकास में बाधक एक वैश्विक समस्या है। किसी भी क्षेत्र में बालकों द्वारा प्रदत्त सेवा बाल श्रम कहलाता है। समाज में अभिभावकों अथवा नियोजकों द्वारा दबाव के कारण जीवन के लिए आवश्यक संसाधनों के अभाव में बालक द्वारा स्वतः श्रम किया जाता है। यह गैर-कानूनी कृत्य बालकों को प्रोढ़ों की भाँति जीवन जीने के लिए विवश करता है। इसके कारण उनके व्यक्तित्व विकास में अनेक अवरोध उत्पन्न हो जातें हैं। परिणामतः बालक शिक्षा और बचपन जीने से वंचित रह जाता हैं। बाल श्रम के अनेक कारण और परिणाम होते हैं, लेकिन सरकारी और गैर-सरकारी प्रयासों के पश्चात भी यह अनवरत संचालित है। प्रस्तुत शोध पत्र में बालक की शैक्षिक उन्नति हेतु बालश्रम समाप्त करने के सुझाव बताये गये हैं। इसके लिए सामूहिक रुप से जमीनी स्तर पर कार्य करना अपेक्षित है।*

संकेताक्षर : *बालश्रम, पारिवारिक-सामाजिक विसंगतियॉं, शैक्षिक वातावरण, सरकारी, गैर-सरकारी प्रयास, गैर-कानूनी कृत्य।*

बालश्रम की समस्या प्रत्येक युग एंव समाज में किसी न किसी रुप में सदैव विद्यमान रही है, लेकिन वर्तमान 21 वीं शती के औद्यौगिकरण के युग में यह विकराल रुप धारण करती जा रही है। किसी भी राष्ट्र अथवा समाज में बालश्रम मानवता के नाम पर एक कलंक, बालकों के लिए अभिशाप और राज्य की अर्थव्यवस्था पर एक बोझ है। लेकिन समाज में कुछ वर्गो के निजी स्वार्थो के कारण भारत सहित विश्व के विकसित और विकासशील राष्ट्रों में नियोजित रुप से विद्यमान है।

बालश्रमिक कौन?

बालश्रमिक अर्थात् वर्तमान समय की त्रासदी को भोगता समाज का एक मूक घटक, जो कि उदर पूर्ति के लिए विकट परिस्थितियों में स्वयं को झोंके हुए है। बालश्रमिक मानवीय दुराचारों की ऐसी श्रृंखला है, जिनकी शिनाख्त तो है लेकिन पहचान नहीं।

बालश्रमिकों की श्रेणी के अन्तर्गत कौनसे बालक आते हैं ? इस विषय में मतैक्य नही है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार शारीरिक और मानसिक विकास को क्षति पहुँचाकर चौदह वर्ष अथवा इससे कम आयु में ही वयस्कों की भाँति श्रम करने वाले बालक को बालश्रमिक कहा जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा 1966 में बाल अधिकार सम्मेलन[1] में कहा गया कि बालकों के श्रम की वे परिस्थितियाँ जहाँ उनका कार्य बालक के स्वास्थ्य एवं सामाजिक, शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता हो, बालश्रमिक की परिधि में नहीं आता। यू.एन.ओ. द्वारा आह्वान किया गया कि 'प्रत्येक देश एक ऐसी आयु सीमा निर्धारित करे, जिससे कम आयु के श्रमिकों की नियुक्ति प्रतिबन्धित हो।'[2] अमेरिकी कानून के अनुसार 12 वर्ष अथवा उससे कम इंग्लैण्ड और अन्य यूरोपीय राष्ट्रों में तेरह वर्ष अथवा उससे

 ISSN 2277-5587

कम आयु के श्रमिकों को बालश्रमिकों की श्रेणी में रखा जाता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 24 के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के बालकों को जोखिमपूर्ण कार्य में नहीं लगाया जा सकता। बाल मजदूरी अधिनियम 1986, के अनुसार वह बालक अथवा बालिका जो 14 वर्ष से कम आयु का है, बालक कहलाएगा। भारतीय जनगणना आयोग के अनुसार कार्य से अभिप्राय किसी आर्थिक उत्पादन क्रिया में सहभागिता से है। मानव श्रम का उचित मूल्य नहीं देकर अधिक श्रम लेना पूँजीवादी प्रवृत्ति की ही देन है–बाल श्रमिकों का उपयोग। इस प्रवृत्ति को समाजशास्त्रियों ने चार सिद्धान्तों में वर्गीकृत किया है:[3]

- **नव पुरातनवादी सिद्धान्तः** इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक फेन, काल्डवेल आदि के अनुसार नियोजकों द्वारा बालकों को अपनी उपभोग और निवेश की सामग्री मानकर उनके श्रम का उपयोग अपनी आय बढ़ाने के लिए किया जाता है। इस सिद्धान्त में बालकों को शिक्षित बनाने की अपेक्षा श्रमिक बनाने पर बल दिया जाता है।
- **समाजीकरण का सिद्धान्तः** इस सिद्धान्त के नियामक मेयर, रोजर्स के अनुसार बालश्रम पारिवारिक प्रक्रिया, कृषि कार्य, घरेलू उद्योग आदि का अभिन्न अंग है।
- **श्रम बाजार के विखण्डन का सिद्धान्तः** इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक केर, गोर्डन, एडवर्ड्स आदि मानते हैं, कि अविकसित और विकासशील देशों में पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था ने श्रम बाजार को दो भागों में विभक्त किया है– बडा कृषक और छोटा कृषक अथवा दस्तकार। बाजार का यह विभक्तिकरण नियोजक और श्रमिक सम्बन्धों का प्रमुख आधारित है।
- **मार्क्सवादी सिद्धान्तः** मार्क्स के अनुसार बालश्रम पूँजीवादी व्यवस्था की देन है। चूँकि नवीन तकनीक, सस्ते और अकुशल श्रमिकों की मांग रहती है। अतः बेरोजगारी के कारण बालक भी औद्योगिक श्रमिकों के संचित दल का भाग बन जाते हैं।

वस्तुतः बालश्रम दो प्रकार का होता है– **प्रथम**, बालक जब घर में अथवा बाहर अपनेअभिभावकों के साथ उनके कार्य में हाथ बँटाता हुआ काम करना सीखता है। ऐसा करने में उसकी शिक्षा, मनोरंजन आदि प्रभावित नही होते हैं। इसमें बालक के कार्य का उद्धेश्य काम करना सीखना होता है, धनोपार्जन करना नहीं। **द्वितीय**, पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु धनोपार्जन के लिए बालकों को विवशतावश ऐसे कार्यों में नियोजित किया जाता है, जहाँ उसके शारीरिक, मानसिक विकास, स्वास्थ्य, मनोरंजन आदि दुष्प्रभावित होते हैं। बालक के ऐसे श्रम का उद्देश्य परिवार की आय में वृद्धि करना होता है। वास्तव में ये ही बालश्रमिक होते हैं।

बालश्रमिकों से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय नीतिः अन्तर्राष्ट्रीय बाल नीति से सम्बन्धित प्रस्तावों को स्वीकारते हुए बाल अधिकारों के सम्बन्ध में यू.एन. महासभा द्वारा 20 नवम्बर 1989 कों व्यक्त किये गये संकल्प में मुख्यतः निम्नलिखित तीन बिन्दु उल्लेखनीय हैं–[4]

1. बालकों के स्वास्थ्य और पोषण की समुचित व्यवस्था,

2. निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था,

3. बालकों के आर्थिक शोषण तथा बालश्रम कें विरुद्ध संरक्षण की व्यवस्था ।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित उपरोक्त संकल्पों पर भारत सरकार द्वारा 11.10.1992 को हस्ताक्षर किये गये थे। यद्दपि देश में बालकों के कल्याण, विकास और संरक्षण हेतु भारत सरकार द्वारा 22.8.1974 को नीति का निर्धारण किया गया था। जिसे 'राष्ट्रीय बाल नीति –1974' कहा गया है। इस नीति मे प्रमुखतः निम्नलिखित तीन संकल्प लिये गये थे–[5]

1. देश में 14 वर्ष तक की आयु के सभी बालकों के लिए अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था,

2. सभी बालकों को जन्म से पूर्व और पश्चात् तक बढती आयु में पर्याप्त पोषण सेवाओं की व्यवस्था,

3. 14 वर्ष से कम आयु के बालकों को जोखिम भरे कार्यो में नियोजन पर प्रतिबन्ध।

भारत में बालकों के लिए संवैधानिक प्रावधानः भारत में स्वतन्त्रता से पूर्व अंग्रेज शासक भी बालश्रमिकों की समस्याओं से परिचित थे। उन्होंने बालश्रमिकों की स्थितियों में सुधार करने के उद्देश्य से अनेक नियम निर्धारित किये थे।[6]

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों मे बालकों के संरक्षण एवं बालश्रमिकों के शोषण से मुक्ति के लिए अनेक प्रावधान किये गये हैं, जिन्हें निम्नलिखित रुप में सारणीबद्ध किया गया है[7]:

क्र. सं.	अनुच्छेद	प्रावधान
1.	14	कानून के समक्ष समानता
2	15(3)	राज्य बालकों के लिए विशेष उपबन्ध बना सकता है
3	21क	राज्य द्वारा 6 से 14 वर्ष के सभी बालकों को निःशुल्क और अनिवार्य रुप से शिक्षा उपलब्ध क करवाई जायेगी
4	23	बालकों का क्रय-विक्रय करना एवं उनसे गैर कानूनी तथा अनैतिक कार्य करवाना निषिद्ध है और पारिश्रमिक रहित श्रम करवाना प्रतिबन्धित है
5	24	14 वर्ष से कम आयु के बालकों को काम करने के लिए कारखाने या अन्य किसी खतरनाक नियोजन के लिए नियोजित नही किया जायेगा
6	39ङ	बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग नही होवे आर्थिक रुप से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में नही जाना पडे जो उनकी आयु अथवा सामर्थ्य मे नहीं होवे
7	39च	बालकों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएं दी जाएं, बालकों तथा कम आयु के व्यक्तियों की शासन से नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाये
8	45	राज्य सभी बालकों के लिए 6 वर्ष की आयु पूर्ण करने तक प्रारम्भिक बाल्य अवस्था देखरेख और पूर्व शाला शिक्षा देने के लिए उपबन्ध करने का प्रयास करेगा
9	51क	माता-पिता और संरक्षक का यह कर्तव्य है कि वे अपने 6-14 वर्ष की आयु के बालकों को शिक्षा के अवसर उपलब्ध करवाये

भारत के संविधान के विभिन्न उपबन्धो को लागू करने के लिए समयानुसार बालकों की देखरेख, पुनर्वास एवं संरक्षण[8] को ध्यान में रखते हुए अनेक कानून और विभिन्न योजनाएं राज्य सरकारों द्वारा भी लागू की गयी हैं। राजस्थान सरकार द्वारा बालकों के संरक्षण, देखभाल एवं पुनर्वास हेतु राष्ट्रीय एवं विशेष अधिनियम, किशोर न्याय नियम, 2011 का क्रियान्वयन किया जा रहा है।[9] अधिनियम के अन्तर्गत देखभाल एवं संरक्षण की आवश्यकता वाले बालकों के संरक्षण, देखभाल, पुनर्वास एवं मामलों के समयबद्ध निपटान के लिए अधिनियम की धारा 29 के अन्तर्गत प्रत्येक जिले में बाल कल्याण समिति (प्रथम न्यायिक मजिस्ट्रेट की शक्तियॉं प्राप्त) गठित हैं। इसी सन्दर्भ में समेकित बाल संरक्षण योजना भी लागू की गयी है, जिसके तहत राज्य स्तर पर राजस्थान स्टेट चाइल्ड प्रोटक्शन सोसायटी एवं प्रत्येक जिला स्तर पर जिला बाल संरक्षण ईकाइयॉं गठित की गयी हैं।[10]

किशोर न्याय अधिनियम ,2000 की धारा 2(7) के अनुसार बालक की आयु 18 वर्ष निर्धारित की गयी हैं। अधिनियम की धारा 2(घ)(1क) में कामकाजी बालकों एवं धारा 2(घ)(7) में तस्करी से पीडित बालकों को देखभाल एवं संरक्षण की आवश्यकता वाले बालकों की श्रेणी में सम्मिलित किया गया है। अधिनियम के अनुसार कोई नियोजक बालक को किसी भी प्रकार के व्यवसाय में नियोजित करता है और निजी अर्थोपार्जन के उद्देश्यों से बालक से अर्थोपार्जन करवाता है तो उसके विरुद्ध अधिनियम की धारा 23एवं 26 जो कि एक संज्ञानात्मक अपराध है, के अन्तगर्त कार्यवाही की जा सकती है।

अधिनियम की धारा 63 के तहत राज्य के सभी जिलों में विशेष किशोर पुलिस ईकाई एवं धारा 63(2) कें अनुसार प्रत्येक पुलिस थाने में किशोर या बाल कल्याण अधिकारी नियुक्त हैं। जिले में बालकों के विरुद्ध हो रहे अपराध एवं उत्पीड़न की रोकथाम हेतु नियम 84 में ईकाई के कार्य निर्धारित किये गये हैं।

अधिनियम की धारा 32 के तहत प्रत्येक देखभाल एवं संरक्षण की आवश्यकता वाले बालकों को किसी भी समय (24 घण्टे के समय में) समिति के अध्यक्ष अथवा सदस्य के समक्ष प्रस्तुत किया जाना अनिवार्य है। अधिनियम के अन्तगर्त ऐसे बालकों के लिए बाल कल्याण अधिकारी ही

सक्षम प्राधिकारी है। राज्य में बालश्रम की रोकथाम हेतु पृथक से बालश्रम (प्रतिरोध एवं नियोजन) अधिनियम,1986 क्रियान्वित किया जा रहा है। अधिनियम में 14 वर्ष से कम आयु के बालकों को कुछ व्यवसायों में ही नियोजन को प्रतिबन्धित करते हुए अन्य व्यवसायों में बालकों के नियोजन को जायज ठहराया गया है।[11]

बालश्रम विषय को बाल संरक्षण के दायरे में देखा जाना चाहिए तथा बालकों के संरक्षण एवं पुनर्वास कार्यवाही में एकरुपता भी सुनिश्चित की जानी आवश्यक है। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सम्पूर्णानन्द बहुरुआ बनाम भारत सरकार एवं दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा याचिका संख्या 2069/2005 बचपन बचाओ आन्दोलन बनाम भारत सरकार में अधिनियम के कियान्वयन एवं बालश्रम को गम्भीरता से लिया गया है। उक्त निर्णय में किशोर न्याय अधिनियम,2000 को ही आधार मान कर बालश्रम की रोकथाम हेतु आदेश पारित किया है। राष्ट्रीय एवं राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग द्वारा भी इस सम्बन्ध में अनेक दिशा-निर्देश जारी किये गये हैं।

राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में बड़ी संख्या में 18 वर्ष से कम आयु के बालक विषम परिस्थितियों में कार्यरत् हैं। यह स्थिति राज्य सरकार की प्रत्येक बालक को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध करवाने की मंशा में बाधक है। उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में 18 वर्ष से कम आयु के बालश्रमिकों की पहचान, मुक्ति, संरक्षण एवं पुनर्वास हेतु समस्त सम्बन्धितों के लिए मानक संचालन प्रक्रिया निम्नानुसार निर्धारित की जाती है।[12]

पुलिस विभागः बालश्रमिकों को नियोजित करने वाले एवं उनकी तस्करी में लिप्त नियोजकों एवं उनके दलालों के खिलाफ पुलिस महानिदेशक द्वारा 30.4.12 से जारी दिशा-निर्देश के अनुसार समयबद्ध कार्यवाही की जाती है।

- बालश्रमिकों या तस्करी पीड़ितों को मुक्त करवाने एवं रोकथाम की कार्यवाही में स्थानीय पुलिस, विशेष किशोर पुलिस ईकाई एवं मानव तस्करी विरोधी ईकाई द्वारा सक्रियता एवं गोपनीयता से भाग लिया जाता है।
- बालश्रमिक अल्प संख्या में थाना क्षेत्र मे नियोजित होते है, तो उन्हें स्वतः संज्ञान लेकर स्वयं सेवी संस्थाओं के सहयोग से तुरन्त मुक्त करवाया जाता है, इत्यादि।

श्रम विभागः संवेदनशील क्षेत्रों में नियमित रुप से बालश्रमिकों का सर्वे करवाया जाता है। सूचना मिलने पर स्थानीय पुलिस एवं बाल कल्याण समिति के माध्यम से 24 घण्टे में कार्यवाही करके बालश्रमिकों को मुक्त करवाया जाता है, इत्यादि।

बाल कल्याण समितिः बालश्रमिक अथवा तस्करी की सूचना मिलने पर उनको मुक्त करवाने हेतु पुलिस को आदेशित करती है।

- उक्त कार्यवाही के दौरान चाइल्ड लाइन सेवा (1098) एवं स्वयं सेवी संस्थाओं के प्रतिनिधियों को भी सहयोग हेतु निर्देशित कर सकती है।[13]
- मुक्त करवाये गये बालश्रमिकों का संरक्षण पुलिस से अपने पास लेकर अधिनियम के अनुसार सरकार द्वारा संचालित बाल गृह में प्रवेशित करवाती है तथा बालकों की सामाजिक पृष्ठभूमि रिपोर्ट तैयार करके समुचित पुनर्वास करवाती है, इत्यादि।

जिला बाल संरक्षण ईकाई (सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता विभाग): बालश्रमिकों के संरक्षण एवं पुनर्वास के लिए समिति के आदेश से अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत राजकीय अथवा स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा संचालित बालगृह में प्रवेशित करवाकर आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध करवायी जाती है।

- जिले में भिक्षावृति में लिप्त बालकों एवं परिवारों की पहचान हेतु स्वयंसेवी संस्थाओं के सहयोग से कार्य योजना तैयार करके कियान्वित की जाती है। उपर्युक्त प्रवृति के बालकों को आवासीय विद्यालय में प्रवेशित करवाया जाता है, इत्यादि।

जिला प्रशासनः जिला प्रशासन द्वारा स्थानीय और अन्य राज्यों के विभागों या निकायों की सहायता से बालश्रमिकों की पहचान, सुरक्षा, मुक्ति एवं पुनर्वास में सहायता ली जाती है एवं मुक्त करवाये गये बालकों को मुक्ति प्रमाण पत्र जारी किया जाता है।

बालश्रमः समस्याएं एवं सुझाव

विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों और सरकारी तथा गैर-सरकारी उपायों के बावजूद हम बालश्रम उन्मूलन में असफल रहे हैं। वर्तमान परिस्थितियों के रहते बालश्रम का पूर्णतः उन्मूलन असंभव हैं।

- असंभव इसलिये है कि अनेक बाल श्रमिकों की मजदूरी से ही लाखों गरीब परिवारों के घर में एक समय का चूल्हा जलता है। अतः जब तक व्यक्ति निर्धन रहने के लिए विवश है तब तक वह इन विषयों से सम्बन्धित निर्मित कानूनों अथवा उनके क्रियान्वयन को अपनाने एवं उनको प्राथमिकता प्रदान करने में रुचि नहीं दिखाते हैं।
- अवांछनीय इसलिए कि यदि सरकार द्वारा नियम कानून का कठोरता से पालन करते हुए बालश्रम समाप्त भी करवा दें तो भविश्य में बाल अपराधों की संख्या में वृद्धि हो जायेगी। यह स्थिति बालश्रम से भी अधिक भयावह होगी। इसलिए इस विषय पर कठोर कार्यवाही से पूर्व भी बहुत विचार करना होगा। अतः बाल श्रमिकों की व्यक्तिगत, पारीवारिक एवं सामाजिक सुरक्षा तथा कल्याण पर चिन्तन करते हुए तदनुकूल कानून निर्माण एवं उनका क्रियान्वयन उपयुक्त रहेगा। अतः इस दृष्टि से बालश्रम से बचाव हेतु निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं:
- निर्धनता का मुख्य कारण समाज में व्याप्त अर्न्तवर्गीय विषमता को समाप्त करने के लिए विकेन्द्रित औद्योगिक एवं इसके लिए आधारभूत विकास कार्यों को प्रश्रय दिया जाये। निर्धन परिवारों को रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाये जायें तथा परिवार में कम से कम एक प्रौढ़ रोजगार युक्त होवे।
- बालश्रम शोषण से मुक्ति हेतु एक समन्वित नीति की आवश्यकता है। सतत् विकास, ढाँचे का समतावादी होना, कारगर जनसंख्या नीति एवं गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों की संख्या में कमी के ठोस उपाय करने आवश्यक हैं।
- बालश्रम कानूनों से सम्बद्ध कानूनों को क्रियान्वित करने वाले सरकारी तंत्र को अधिक सक्रिय बनाया जाये। न्यूनतम मजदूरी जैसे कानूनों का कठोरता से पालन करवाया जाये। ऐसे कानूनों की निगरानी करने वाली निगरानी समितियों को अधिक प्रभावी और अधिकार सम्पन्न बनाना चाहिये।
- अपराध, कानूनों द्वारा कडी सजा के प्रावधान मात्र से नहीं रुकते, अपितु अपराध की सजा अवश्य मिलेगी यह सुनिश्चित किये जाने से उनमें वास्तविक रुप से कमी आती है। अतः बालश्रम शोषण के विरुद्ध न्याय प्रणाली द्वारा विभिन्न सजाओं का कठोर एवं प्रभावी प्रावधान किया जावे।
- सरकार द्वारा भी सम्बन्धित एक्ट में संशोधन करके 14 वर्ष की आयु तक के बालकों को उद्योग प्रकिया में नियोजन पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाते हुए बालश्रम शोषण कों गैर-जमानती अपराध घोषित करके कड़ी सजा का प्रावधान करें।
- आर्थिक वर्गों के मध्य सौम्य साझेदारी बनायी जाये । मालिक वर्ग को बालश्रमिको के प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाने हेतु प्रेरित किया जाये। जिससे कि वे उनके लिए समुचित प्रशिक्षण, चिकित्सा विश्राम गृह आदि सुविधाओं का प्रबन्ध करें।
- बालश्रम उन्मूलन हेतु सरकार एवं स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा साझा संचार माध्यमों, संगोष्ठियों, पोस्टर प्रर्दशनियों के माध्यम से प्रचार-प्रसार कार्य किये जायें।
- बालश्रम निराकरण की योजना निर्माण से पूर्व इससे सम्बन्धित स्वस्थ आँकड़े एकत्रित किये जायें। इसके लिए सरकार विशिष्ट, विश्वसनीय और प्रतिष्ठित संस्थाओं से सहायता ले तथा विशेष ध्यान देकर दृश्य-अदृश्य बालश्रमिकों की सही संख्या, आयु, शैक्षिक स्तर, कार्य की दशाऐं आदि की उचित सूचनाऐं एकत्रित करे।
- बालश्रमिकों को कार्य क्षेत्र से हटाकर उनके पुनर्वास की ओर विशेष ध्यान दिया जाये। जिससे कि वे पुनः श्रम या असामाजिक कार्यों में लिप्त नहीं होवें।

निष्कर्ष: बालश्रम उन्मूलन हेतु एक समन्वित नीति की आवश्यकता है। इसके प्रति जनमानस जाग्रत होना चाहिए। तब ही वांछित सफलता संभव है। अतः बालश्रम के विरुद्ध सामूहिक रुप से जन जागृति अभियान चलाया जाना चाहिये। इसमें सर्वाधिक अहम् भूमिका संचार माध्यमों द्वारा निभायी जा सकती है, कि वे समाज के प्रत्येक वर्ग तक बालश्रम उन्मूलन की कानूनी जानकारी पहुँचाकर इनके सफल कियान्वयन में युवा एवं प्रौढ़ वर्ग के साथ स्वयं बालकों को भी सरकार के कार्यों में सहयोग हेतु प्रेरित करे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. योजना, नवम्बर, 2012
2. योजना, नवम्बर, 2002, पेज नं. 16
3. योजना, मई, 2001, पेज नं. 19
4. प्रतियोगिता दर्पण, अगस्त 2001, पेज नं. 75
5. उपर्युक्त पेज नं. 76
6. बालश्रम अधिनियमः 1881, 1891, 1911, 1922,
7. पाण्डे, डॉ. जय नारायण, भारत का संविधान, सैंतिसवां संस्करण, 2004, पेज नं. 274
8. किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) कानून, 2000
9. राजस्थान किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) नियम, 2011
10. बालश्रमिकों की पहचान, मुक्ति संरक्षण एवं पुनर्वास मानक संचालन प्रक्रिया, 2012
11. वही
12. वही
13. दिशा, त्रैमासिक समाचार, आर, सी, डी, समाजसेवी संस्था, अजमेर, जुलाई-सितम्बर, 2015

राजस्थान के टोंक अंचल के प्रमुख संत

अशोक कुमार जाट
जूनियर रिसर्च फैलो, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश : *राजस्थानी साहित्य में टोंक अंचल के संतों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। जहां संत धन्ना भगत व पीपा का परवर्ती साहित्य, रामचरण जी महाराज का साहित्य, भजन, वाणियाँ प्रसिद्ध है। वहीं लोकदेवता के रुप में देवनारायण जी के मंदिर में उमड़ने वाली गुर्जर समाज की भीड़ ये सोचने के लिये बाध्य कर देती है कि वर्तमान समाज में भी देवजी गुर्जर समाज के लिये कितने अनुकरणीय प्रेरणास्त्रोत एवं प्रासंगिक है। वैष्णव संत रामानन्दाचार्य के शिष्य 'संन्त धन्ना' व 'संत पीपा', रामस्नेही सम्प्रदाय के प्रवर्तक संत 'रामचरण जी', 'भगत नंगजी' आदि प्रमुख संत हुये तथा इसके अलावा लोकदेवता देवनारायणजी व लोकदेवता रालाबाबा टोंक अंचल में धर्म रक्षार्थ अपनी महत्ती भूमिका का निर्वहन किया तथा ये लोकदेवता धीरे-धीरे सर्वसाधारण जनता में लोकप्रियता को प्राप्त होने लगे।*

संकेताक्षर : *संत, साहित्य, भक्ति, आस्था, उपदेश।*

राजस्थान के टोंक अंचल में अनेक संत व लोक देवता हुये हैं जिनका साहित्य एवं लोक परम्परा में हमें जानने का अवसर मिलता है एवं राजस्थानी साहित्य में इनकी प्रमुख भूमिका है। सामान्यतः इस्लाम के प्रवेश एवं तुर्क आक्रमणों से राजस्थान के जनजीवन में एक नयी परिस्थिति पैदा हो गयी। इस्लाम के आगमन से हिन्दू धर्म, संस्कृति व समाज में परिवर्तन हुये। समाज जातिगत भेदभाव व ऊँच-नीच की भावना से अत्यधिक त्रस्त था। अस्पृश्य कही जाने वाली जातियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। ऐसी परिस्थितियों में धर्म, गौ, स्थानीय जनता की रक्षा, अन्त्यजों को समाज में उचित स्थान दिलाना आदि ऐसी महत्वपूर्ण समस्यायें हो गयी जिनका निराकरण अति आवश्यक हो गया। भाग्यवश ऐसी विकट परिस्थितियों में कुछ ऐसे व्यक्ति जनता के समक्ष आये जिन्होंने स्थानीय जनता एवं गौवंश की रक्षा हेतु समाज में शांति एवं सुव्यवस्था बनाने हेतु तथा निम्न जातियों के उद्धार हेतु अपनी महती भूमिका का निर्वहन किया तथा आवश्यकता पड़ी तो प्राणोत्सर्ग भी कर दिया।

टोंक अंचल में अपनी भूमिका का निर्वहन करने वाले कुछ प्रमुख संत व लोकदेवता इस प्रकार है।

- **संत धन्ना भगत :** आचार्य रामानुज ने वैष्णव सम्प्रदाय के प्रसार हेतु समस्त भारत में अपने आचार्य नियुक्त किये जिनमें उत्तर भारत में वैष्णव आन्दोलन की कमान रामानन्द के हाथों में थी। उत्तरी भारत में उनके द्वारा प्रवर्तित मत "रामानन्दी सम्प्रदाय" कहलाया जिसमें ज्ञानमार्गी राम भक्ति की प्रधानता थी। इनके प्रमुख शिष्यों में कबीर, धन्नाजी, पीपाजी, रैदास आदि प्रमुख है।

इनमें भक्त शिरोमणि धन्ना जाट का जन्म वैशाख वुदी 8 बुधवार संवत 1472 को गुरुनानक जी से कोई 53 वर्ष पहले माना जाता है। यह किसान परिवार की जाट कौम की हरितवाल गौत्र में जन्में थे इनके जन्म पर एक दोहा भी है :

"जिन दिन धन्नो जन्मियो, बाज्या सोहन थाल।
हाथीसुत कहाइया, मांग गंगा गढवाल।।"

 ISSN 2277-5587

इनके पिता का नाम हाथीराम व माता गंगा गढ़वाल गौत्र की थी। पिताजी ग्राम चकवाड़ा, चौरु, फागी तहसील के रहने वाले थे जो टोडारायसिंह (वर्तमान में देवली के निकट) में अभयनगर (वर्तमान धुआँकला) गांव में बसे तथा यहीं धन्ना का जन्म हुआ। धन्ना बचपन से ही गाये चराया करते थे। जंगल में ही इनकी रामानन्दाचार्य से भेंट हुई तथा स्वामीजी के सान्निध्य में ईश्वर की सेवा करने लगे। लोकप्रचलित है तथा परवर्ती साहित्य में भी उल्लेख आता है कि संत धन्ना ने रामानन्दाचार्य के विदा लेते समय भगवान को वहीं छोड़ जाने की हठ की तब रामानन्दाचार्य ने उनको सालिगराम दे दिया, जिसको धन्नाजी ने भगवान समझ कर पूजा की तथा रोटी खिलाने की जिद करने लगे। सातवे दिन भगवान ने रोटी खाई तब तक धन्ना भी भूखे रहे। रामानन्दजी ने भी अपने अंतिम दिन धन्ना के साथ बिताए थे। धन्ना भगत निरक्षर थे तथा उनकी जीवनी परवर्ती कालीन साहित्य में मिलती है। इन्होंने रामानन्द जी से दीक्षा लेकर धर्मोपदेश एवं भगवत भक्ति का प्रचार किया संग्रह वृत्ति से मुक्त रहते हुये संतों की सेवा, ईश्वर में दृढ़ विश्वास, बाहरी आडम्बरों एवं कर्मकाण्डों का विरोध आदि इनके प्रमुख उपदेश हैं।[1]

- **संत पीपाजी (1383–1453 ई.):** इनका जन्म गागरोन नरेश कडावा राव खींची (चौहान) के घर हुआ था। इनकी माता का नाम लक्ष्मीवती था। इनका बचपन का नाम 'प्रतापसिंह' था। इन्होंने रामानन्द से दीक्षा लेकर राजस्थान में निर्गुण भक्ति परम्परा का सूत्रपात किया। इन्होंने युद्ध में दिल्ली के सुल्तान फिरोजशाह तुगलक को हराया। दर्जी समुदाय संत पीपा को अपना आराध्य देव मानता है। संत पीपाजी संत धन्नाजी के गुरु भाई थे। पीपाजी ने अपना अंतिम समय टोंक जिले के टोडा ग्राम में व्यतीत किया, वहाँ एक गुफा है जहाँ पीपाजी भजन किया करते थे, जो आज भी पीपाजी की गुफा के नाम से जानी जाती है। इन्होंने टोडा के शासक राव डूंगरसिंह सोलंकी को लल्लन खाँ पठान को हराकर टोडा वापस दिलवाया था।[12] संत पीपा ने जातिवाद एवं ऊँच–नीच की घोर निन्दा की उन्होंने भक्ति को मोक्ष का मार्ग बताया।

- **भगत नंगजी :** किसान परिवार के जाट कौम के सिरोठा गौत्र में अजमेरवाड़ा के बघेरा गांव में भक्त नंगजी का जन्म मिति ज्येष्ठ बुदी 8 वि.सं. 1782 में श्री पूराराम जी के घर हुआ। इनकी माता का नाम छरंग था। नंगजी गायें चराया करते थे तथा चारे के अभाव में अजमेर मेरवाड़ा को छोड़कर टोंक जिले के दूनी कस्बे को अपनी कर्मस्थली बनाया। भक्त नंगजी ने आत्मा व परमात्मा के एकत्व पर जोर दिया तथा ईश्वर की मौजूदगी प्रत्येक प्राणी में बताया।

नंगजी के मंदिर निर्माण का कार्य मगसर सुदी 4 वि.सं. 1807 व इतिहास लिखावट वि.सं. 1810 में हुई भक्त नंगजी से संबंधित एक दोहा है :

दूणी होय करावर दूणा ही नागर चालसर।
धन घायल रोज, बराला ज्याम सीहोठा का सुजस सर।।
दूणी धाम रणछोड़ की, किया कीरत कमठाण।
दोय बीसी घोड़ा दिया, ऊंट मोहर निसाण।।
घोडा मोहरा रोकड़ा, ऊंटा रूपया माल।
धन्य भाग दूणी हुई, नंगजी हुए निहाल।।[3]

- **संत रामचरण जी**

संत रामचरण जी का जन्म सोडाग्राम (टोंक) में 24 फरवरी 1720 ई. को श्री बखताराम विजयवर्गीय के यहाँ हुआ। बचपन का नाम रामकिशन था। दाँतड़ा (मेवाड़) में कृपाराम ने दीक्षा देने के बाद रामचरण नाम रखा। इनके पिता का नाम बखताराम व माताजी देऊजी थी। रामचरणजी महाराज ने रामस्नेही सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया जिसकी राजस्थान में चार पीठ हैं – 1. सिंहथल, 2. खेडापा, 3. रैण व 4. शाहपुरा। इनकी मृत्यु भी 5 अप्रैल, 1798 को शाहपुरा भीलवाड़ा में ही हुई।[4]

इन्होंने अपना मुख्य मठ शाहपुरा (भीलवाड़ा) में बनाया जिसकी स्थापना रामचरण जी महाराज द्वारा की गई। इस पंथ के प्रार्थना स्थल 'रामद्वारे' कहलाते हैं जिनमें टोंक जिले में स्थित प्रमुख रामद्वारे निम्न प्रकार हैं :

- **रामद्वारा बनवाडा:** ग्राम बनवाडा ब्रह्म स्वरुप प्रातः स्मरणीय परम वीतराग पूज्यपाद रामस्नेही सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक आद्याचार्य स्वामी श्री श्री 1008 श्री रामचरण जी महाराज के गृहस्थाश्रम का मूल निवास स्थान है। सम्वत 2023 विक्रमी तक यहां कोई भवन नहीं था किन्तु श्री महाराज द्वारा नीम की डाली से दांतुन कर वहां डाल देने से वह नीम का पेड़ बन गयी जो कि कुछ समय पहले वह नीम का वृक्ष गिर गया तथा फाल्गुन शुक्ला द्वितीया सम्वत् 2024 को हाजीपुरा गांव के सहयोग से रामद्वारा भवन की नींव

लगाई जिसका रामकिशोर महाराज (शाहपुरा पीठाधिपति) ने उदघाटन 22.फरवरी 1976 को किया। रामद्वारा में माघशुक्ल चतुर्दशी को जागरण एवं पूर्णिमा को वाणी जी का जुलुस निकाला जाता है।[5]

- **रामद्वारा सोडाः** सोडा ग्राम रामचरण जी महाराज का ननिहाल था। यह रामस्नेही सम्प्रदाय का एक तीर्थ धाम है। यहाँ जयन्ती उत्सव पर प्रतिवर्ष माघ शुक्ला त्रयोदशी को जागरण व शुक्ला चर्तुदशी को प्रातः स्वामीजी की वाणी का जुलुस निकाला जाता है।[6]

  रामस्नेही संप्रदाय में निर्गुण भक्ति तथा सगुण भक्ति की रामधुनी एवं भजन कीर्तन की परम्परा के संबंध से निर्गुण–निराकार परब्रह्म राम की उपासना की जाती है। इनका राम दशरथ पुत्र राम न होकर कण–कण में व्याप्त निर्गुण–निराकार परब्रह्म है। बाह्य आडंबरों व जातिगत भेदभाव का प्रबल विरोध, गुरु की सेवा, सत्संगति एवं राम नाम स्मरण आदि इनके प्रमुख उपदेश है। इस संप्रदाय के लोग दाढ़ी–मूंछ और सिर के बाल नहीं रखते तथा गुलाबी वस्त्र धारण करते हैं। मूर्तिपूजा नहीं करते। गुरु को सर्वाधिक महत्व देते हैं।[7]

- **लोकदेवता देवनारायणजीः** देवजी राजस्थान के प्रसिद्ध बगडावत कुल के थे।[8] बगडावत नागवंशीय गुर्जर थे। देवजी बगडावतों के प्रमुख भोजा की गुर्जर स्त्री सेडू के पुत्र थे।[9] इनका जन्म विक्रम 1300 के लगभग हुआ। इनकी पूजा का मुख्य स्थान आसींद (भीलवाड़ा) है। देवजी का एक प्रमुख देवालय निवाई तहसील के जोधपुरिया ग्राम में वनस्थली से 9 किमी की दूरी पर है। यह मंदिर गुर्जर समाज का भारतवर्ष में सर्वाधिक बडा पौराणिक तीर्थस्थल है। यहाँ वर्ष में दो बार मेला भरता है प्रथम मेला भाद्रपक्ष शुक्ला षष्ठी को भगवान देवनारायण के घोड़े लीलकरण के जन्मोत्सव पर एवं दूसरा माघ शुक्ला सप्तमी को देवनारायण के जन्मोत्सव पर इनकी पत्नी पीपलदे थी। इन्होंने अपने पराक्रम व सिद्धियों का प्रयोग अन्याय का बदला लेने में किया। देवमाली (ब्यावर) में इन्होंने अपनी देह त्यागी।

देवनारायण के देवरों में उनकी प्रतिमा के स्थान पर बड़ी ईंटों की पूजा की जाती है। गुर्जर जाति के लोग देवजी को विष्णु का अवतार मानते हैं। देवनारायण की फड गुर्जर भोपों द्वारा बाँची जाती है। इनका मेला भाद्रपद शुक्ला छठ व सप्तमी को लगता है। 1981 में मांसी नदी में बाढ़ आने पर मंदिर की छत से पानी निकल गया लेकिन अखंड ज्योति जलती रही तथा पानी में तैरने लगी इस चमत्कार को देख लोग अचंभित हो गये तथा 1987 में यहाँ मंदिर बनवा दिया। दिन में तीन बार यहाँ आरती होती है तथा अपाहिज, विकलांग निशक्तजन उपचार की आशा में यहाँ आते हैं। ये रोगी देवजी को पाती चढ़ाकर स्वस्थ होने की मन्नत मांगते हैं।[10]

देवजी की स्तुति में गाये जाने वाले भजनों, गीतों, पावडो आदि के रुप में विशाल लोक साहित्य का निर्माण हुआ। यह लिखित व मौखिक दोनों रुपों में उपलब्ध साहित्य राजस्थानी संस्कृति की महत्वपूर्ण धरोहर के रुप में अपना विशेष महत्व रखता है। देवजी से संबंधित साहित्य में 'देवजी री फड', 'बात देवजी बगडावत री', देवजी का मारवाड़ी ख्यात, तथा 'बगड़ावत' प्रमुख है। इसके अतिरिक्त देवजी से संबंधित अनेक गीत बगडावत री महागाथा आदि उपलब्ध होने वाले प्रमुख ग्रंथ है। बगडावत प्रति रात्रि तीन पहर गाये जाने पर छः मास में पूर्ण होती है। इनकी फड जंतर वाघ के साथ बांची जाती है।

- **लोकदेवता रालाबाबाः** टोंक जिले के निवाई तहसील के किंवाडा गांव में मनमोहक प्राचीन देवस्थान है। यहाँ ज्येष्ठ वदी अमावस्या को लक्खी मेला लगता है। राला बाबा की जीवनी काफी पुरानी है। एक कहावत है –

दिल्ली से निकले जाटा-जुवाण्या,
जो बस गये गाँव जारुँडा।।

इनका जन्म जाट जाति की जुवाणियाँ गौत्र में हुआ था। इनको गौरक्षक देवता माना जाता है। यहां आज भी पूर्णिमा, एकादशी व अमावस्या को जनमानस भजन कीर्तन करते हैं।[11]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *ठाकुर, देशराज – जाट इतिहास, महाराजा सूरजमल स्मारक शिक्षा संस्थान, दिल्ली, 1934, द्वितीय संस्करण, पृ. 611*
2. *राजस्थान पत्रिका, टोंक संस्करण*
3. *नवहिन्द सिहोठा, दूनी के साक्षात्कार एवं लेख के आधार पर।*
4. *स्प्रीचुअल हेरीटेज ऑफ राजस्थान, दिनेश चन्द्र शुक्ला, बुक्स ट्रेसर, 1992*

5. प्रीफेज लक्ष्य रामजी महाराज, ''राम रहस्य दर्शन''
6. गजट ऑफ द बोम्बे प्रेसीडेंसी, अहमदाबाद गर्वनमेंट सेन्ट्रल प्रेस, पृष्ठ 324, 1879.
7. गुप्ता, मोहन लाल, अजमेर संभाग – जिलेवार सांस्कृतिक सर्वेक्षण, पृ. 108
8. शर्मा, सागरमल, राजस्थान के लोकदेवता, शेखावाटी शोध प्रतिष्ठान संस्थान, चिड़ावा, झुन्झुनू, पृ. 85
9. बात देवजी बगडावत री : राजस्थान साहित्य संग्रह : ग्रंथाक 52, भाग 2, पृ. 1 फुटनोट, उद्धृत डॉ. पेमाराम की पुस्तक, मध्यकालीन राजस्थान में धार्मिक आन्दोलन।
10. शर्मा, गोपीनाथ, सोशियल लाइफ इन मेडिवल राजस्थान,पृ. 103
11. जन विकास पत्रिका, जयपुर, 15 मई 2012, वर्ष–3, अंक 11 (पाक्षिक)

नगरीयकरण की प्रवृत्तियाँ और मानवीय गुणवत्ता पर प्रभाव (टोंक शहर का भौगोलिक अध्ययन)

डॉ. ललित भारतीय
व्याख्याता, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बून्दी

राजेन्द्र प्रसाद
शोधार्थी, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश : *किसी भी देश की आर्थिक समृद्धि एवं विकास में शहरों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती हैं । बढ़ते आकार के अनुपात में नगरीय सुविधाओं का विकास नही हो पा रहा हैं, इसी कारण नगरो में अनेक समस्याये प्रभावशाली ढंग से विकसित होकर लोगो के स्वास्थ्य को प्रभावित कर रही हैं । टोंक शहर टोंक जिले का प्रमुख प्रशासनिक, व्यापारिक ऐतिहासिक केन्द्र हैं। कृषि के अलाभकारी होने व वैकल्पिक रोजगार अवसरो की कमी के कारण टोंक जिले की जनसंख्या का प्रवसन टोंक शहर की ओर बढ रहा हैं । फलस्वरूप शहर की जनघनत्व बढने से अनेक प्रकार की समस्याऐं उत्पन्न होने लगी है जैसे पीने के पानी की उपलब्धता,यातायात पार्किंग की समस्या, बढती अनाधिकृत कॉलोनिया और मलिन बस्तियां, कचरे के ढेर आदि जिससे शहर की जनसंख्या में मानवीय गुणवत्ता का ह्रास देखने को मिल रहा हैं । टोंक शहर के नियोजित विकास करने के लिए मास्टर प्लान को ठीक से लागू किया जाए । समीपवर्ती उपान्त क्षेत्रो का विकास विकास किया जाए जिससे मुख्य शहर पर दबाव कम हो । शहरी स्वच्छता का व्यावहारिक क्रियान्वन किया जाए । इसके लिए स्थानीय जनता को जागरूक, जिम्मेदार एवं सहयोगी बनाया जाए । लोगो को सभी मूलभूत नगरीय सुविधाऐ ,सार्वजनिक परिवहन, सफाई जिसमें ठोस अपशिष्ट प्रबन्धन भी शामिल हैं,उपलब्ध करवाया जाये ।*

संकेताक्षर : *नगरीयकरण, जीवन की गुणवत्ता, आबादी क्षेत्र, नगर नियोजन, गन्दी बस्तियां, नगरीय ग्रामीण उपान्त ।*

राजस्थान के उत्तरी पूर्वी भाग में बसा टोंक राजस्थान की पूर्व रियासतों में से एक है। टोंक जिला राज्य के उत्तरी पूर्वी भाग में 25°41' एवं 26°34' उत्तीय अक्षांश तथा 75°07' एवं 76°19' पूर्वी देशान्तरों के मध्य स्थित है। इस जिले की सीमा उत्तर से जयपुर, दक्षिण में बून्दी एवं भीलवाड़ा, पश्चिम में अजमेर एवं पूर्व में सवाईमाधोपुर जिले से मिलती है। समुद्र तल से यह जिला 274.32 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। इसका क्षेत्रफल 7194 वर्ग किमी है। टोंक शहर बनास नदी के किनारे स्थित है।

किसी देश या प्रदेश की जनसंख्या से आशय उस देश या प्रदेश की सीमा में एक निश्चित समय पर निवासित कुल जनसंख्या से होता है। जबकि नगरीय जनसंख्या से आशय एक निश्चित समय पर नगरीय अधिवास में निवासित जनसंख्या से होता है। अनेकानेक कारणों से जब ग्रामीण जनसंख्या नगरीय जनसंख्या में तीव्र गति से परिवर्तित होती है तो उस बदलाव की प्रक्रिया को नगरीयकरण कहा जाता है। टोंक शहर की नगरीय जनसंख्या बढ़ने के साथ ही यहाँ अनेक समस्याएं विकराल रूप से प्रकट हुई है, जो यहाँ के मानव जीवन को प्रभावित कर रही है। जिससे मानवीय गुणात्मक स्तर बिगड़ रहा है।

उद्देश्य

- नगरीयकरण की जानकारी के साथ उनकी विभिन्न प्रवृत्तियों का अध्ययन करना।
- शहर में विभिन्न दिशाओं में हुए क्षेत्रों के विकास का अध्ययन।

- शहर में संस्थागत सुविधाओं का विकास।
- शहर के चारों ओर गन्दी बस्तियों के विकास की दशाओं का अध्ययन।
- शहर के भावी नियोजित विकास हेतु मास्टर प्लान की सफलता व विफलता का विश्लेषण।

नगरीयकरण और मानवीय जीवन की गुणवत्ता :

टोंक शहर में मानवीय गुणवत्ता का अध्ययन करने के लिए 45 वार्डों में साक्षात्कार, प्रश्नावली, अनुसूची, अवलोकन के माध्यम से एकत्रित आंकड़ों का अध्ययन, संकलन, विश्लेषण, सारणीकरण व मानचित्रण किया गया। प्रत्येक वार्ड में आवासीय स्थिति, सड़कों की स्थिति, पेयजल, कचरा (अपशिष्ट) निस्तारण व प्रबन्धन की स्थिति, सीवरेज लाइन, खुले में शौच, प्रकाश की व्यवस्था, स्वास्थ्य सुविधाओं की जानकारी प्राप्त की गई।

टोंक शहर को मानवीय गुणवत्ता का अध्ययन तीन स्तरों में किया गया :

- निम्न स्तरीय मानवीय गुणवत्ता
- मध्यम स्तरीय मानवीय गुणवत्ता
- उच्च स्तरीय मानवीय गुणवत्ता

टोंक शहर के 45 वार्डो में से 25 वार्डो में निम्न स्तरीय गुणवत्ता है, जिसमें अधिकांश मकान कच्चे है, जहाँ सड़क, पेयजल, कचरा निस्तारण, सीवरेज लाइन की व्यवस्था नहीं है। वार्ड नं. 1 काली पलटन कच्ची बस्ती के रुप में है। मध्यम स्तर में कुल 15 वार्डो को सम्मिलित किया गया है। यहाँ 70 प्रतिशत तक पक्के मकान है, जहाँ सड़कों, पेयजल, बिजली कनेक्शन, शौचालय, कचरा निस्तारण की सामान्य सुविधायें है। टोंक शहर के 45 में से 5 वार्डो को गुणवत्ता के उच्च स्तर में शामिल किया गया है। जहाँ सड़कों, पेयजल, प्रकाश, कचरा निस्तारण, सीवरेज लाइन, नाली निर्माण, पार्को व सार्वजनिक स्थलों की उत्तम व्यवस्था है। इन वार्डो में नगरीय सुविधाएं अच्छी है।

टोंक शहर में बढ़ती नगरीय जनसंख्या के कारण परिवहन समस्या, पेयजल की समस्या, प्रदूषित वातावरण की झलक नगर के प्रत्येक भाग में देखी जा सकती है।

आंकड़ों का संकलन एवं विधितंत्र

अध्ययन क्षेत्र नगरीयकरण की प्रवृत्तियाँ और मानवीय गुणवत्ता से सम्बन्धित द्वितीयक आंकड़े राजस्थान जिला गजेटियर टोंक, सांख्यिकीय विभाग टोंक, पर्यावरण प्रदूषण विभाग जयपुर एवं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से प्राप्त किये गये है। प्राथमिक आंकड़े नगरीय क्षेत्र में आने वाली जनसंख्या से अनुसूची-प्रश्नावली एवं साक्षात्कार द्वारा महत्वपूर्ण सूचनाओं व सुझावों का संकलन किया है। क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर शोधकर्ता द्वारा नगरीय क्षेत्र की समस्याओं एवं गुणवत्ता की विस्तृत योजना तैयार की गई है।

प्राप्त आंकड़ों का सारणीयन, वर्गीकरण व विश्लेषण हेतु सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग करते हुए शोध पत्र का निर्माण किया गया है।

आबादी क्षेत्र

नगरीय मानचित्र के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि टोंक शहर में नगरीय जनसंख्या का फैलाव दक्षिण व दक्षिण पश्चिम व पूर्व दिशा की ओर हो रहा है। टोंक शहर में घण्टाघर से लेकर बड़ा कुआं तक सघन जमाव है। उत्तर पश्चिमी भाग पहाड़ी होने के कारण जनसंख्या कम है। सघन जमाव परकोटे के अन्दर है। पूर्वी क्षेत्र में जमाव तीव्र गति से बढ़ रहा है। उत्तरी पूर्वी भाग में भी जमाव तीव्र गति से बढ़ रहा है। परकोटे के अन्दर गन्दी बस्तियाँ विकसित हो रही है, जिसका मुख्य कारण यहाँ भूमि का किराया कम होना है। टोंक के आन्तरिक भाग में जनसंख्या सर्वाधिक है, जबकि बाहरी भाग में कम है। टोंक शहर को आवासीय दृष्टि से दो भागों में रखा गया है।

- पुराना आवासीय क्षेत्र
- नया आन्तरिक आवासीय क्षेत्र

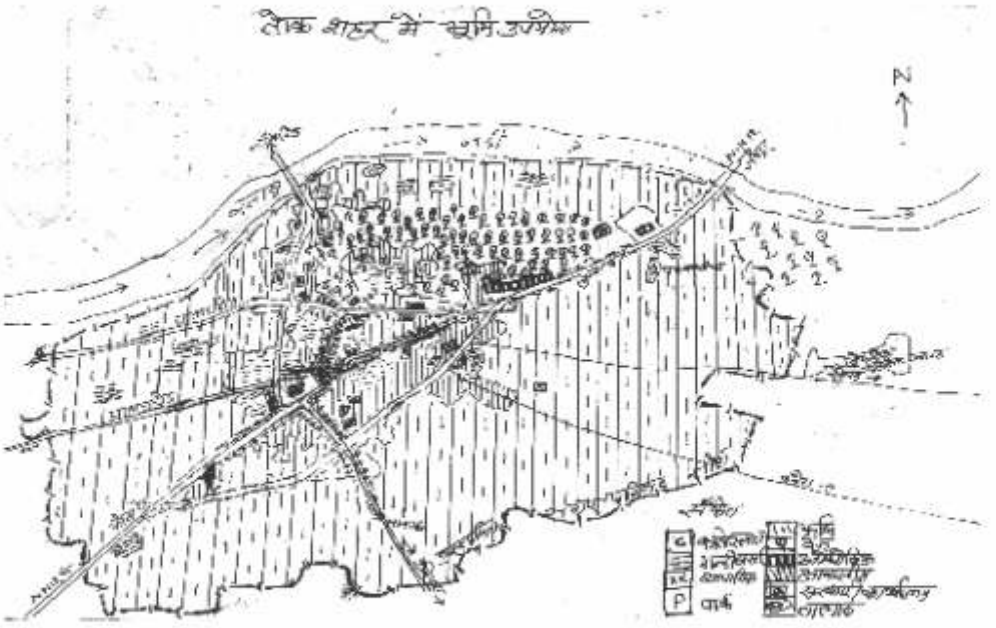

पानी व परिवहन के लिये लम्बी कतारे, सड़को पर फैला गन्दी नालियों का पानी, जगह-जगह कूड़े के ढेर से उड़ती दुर्गन्ध, धुंआ, घुटन, शोर, आर्थिक विसंगतियां, अपराध जीवन का पर्याय बन गए हैं । नगरो का आकार बढ़ता जा रहा हैं किन्तु नगरीय जीवन की गुणवत्ता घटती जा रही हैं ।

नगर नियोजन द्वारा प्रमुख ध्येय नगर वासियों के कल्याण तथा उनके जीवन स्तर को उंचा उठाना हैं । प्रोफेसर जैक्सन के अनुसार ''नगर एवं देहात नियोजन भूमि के विकास व उपयोग से अपना संबंध रखता हैं । नगर नियोजन, सौन्दर्य, स्वास्थ्य, सुविधा इन सिद्धान्तो पर आधारित होता हैं।

टोंक शहर के नियोजन की नीतियां

जिस गति से टोंक शहर का विकास हो रहा हैं इस आधार पर आगामी दशको में टोंक शहर एक महत्वपूर्ण औद्योगिक वाणिज्यिक शहर होने के कारण प्रशासन व्यापार, औद्योगिक शिक्षा, चिकित्सा, सामाजिक, सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र बनेगा। टोंक संपूर्ण जिले का मुख्यालय होने एवं रोजगार शिक्षा के कारण यहां जनसंख्या का जमावड़ा बढेगा । टोंक शहर के नगर नियोजन एवं मास्टर प्लान को सौन्दर्य, स्वास्थ्य, व सुविधा के आधार पर नियोजित किया जाना हैं । विकास की दिशा व दशा तथा मानवीय गुणवत्ता एवं स्वच्छ वातावरण को मध्यनजर रखते हुय इसके भूमि उपयोग का समुचित सुनियोजित आकलन किया जाना चाहिए ताकि इसी के अनुरुप सौन्दर्य स्वास्थ्य एवं सुविधाजनक संबंधित विकास हो सके । इन्हीं नीतियो की पालना हेतु नियोजन के निम्नांकित सिद्धान्त (लक्ष्य) निर्धारित किये गए हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. टोंक शहर में स्थित खाली भूमि पर अतिक्रमण तथा अव्यवस्थित विकास की प्रबल संभावना हैं, जहां पर कच्ची बस्तियां विकसित हो रही हैं । अतः सभी का समुचित एकीकरण करने की दृष्टि से एक समग्र विकास योजना तैयार की गई हैं।
2. ग्रामीण जनसंख्या तेजी से टोंक शहर की ओर आकर्षित हो रही हैं । इसको मध्यनजर रखते हुए योजनाबद्ध एवं व्यवस्थित ढंग से विकास करने का लक्ष्य।
3. नये क्षेत्रो को विकसित करते समय उनके एवं नगर के पुराने क्षेत्रो के बीच भौतिक एवं सामाजिक रुप से उचित तालमेल करने की कोशिश की जाये ताकि विभिन्न गतिविधियों के बीच में अधिक सांमजस्य स्थापित हो सके ।
4. भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए नगर में संगठित लघु उद्योग एवं गृह उद्योगो की स्थापना हेतु प्रावधान रखा जाना चाहिये,

जिससे नगरीय जनसंख्या को रोजगार प्राप्त हो सके व सामान्य व्यापार व व्यवसाय में व्यवस्थित वृद्धि हो सके । नगर के समीप प्रदूषणजनित उद्योगो की स्थापना पर रोक दी जानी चाहिये ताकि पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव नही पड़ें ।

5. टोंक शहर के आन्तरिक भाग में पुराने आवासीय क्षेत्रो में वाणिज्यिक गतिविधियों को बढावा नही देते हुए स्थान मांग को पूरा करने हेतु उपर्युक्त स्थानों पर वाणिज्यिक सुविधाओं की पदानुक्रमिक पद्धति विकसित की जाए ।

6. नगरों में प्रमुख सड़को के सहारे बहुत अधिक भीड़भाड़ होने के कारण सड़के संकरी हो रही हैं यातायात व विकास कार्यों का इसमें योगदान अधिक हैं ।

7. भारी यातायात को कम करने और अन्यत्र संचारित करने के लिये उपर्युक्त स्थान निर्धारित कर भवन निर्माण सामग्री, लकड़ी, लोहा सामग्री बाजार जो अधिक भारी यातायात को प्रोत्साहित करते हैं इनके थोक बाजार एवं औद्योगिक क्षेत्र के नजदीक भण्डार एवं गोदामों के लिए पर्याप्त भूमि आरक्षित की जाए ।

8. आवासीय घनत्व और स्वीकृत योजना मानदण्डो की पद्धति के अनुरुप सम्पूर्ण नगरीय क्षेत्र में सामुदायिक सुविधाओं सार्वजनिक एवं अर्द्धसार्वजनिक सेवाओं व जनोपयोगी सुविधाओं का विवेक सम्मत वितरण किया जाना चाहिये ।

9. औद्योगिक गतिविधियों जो वर्तमान में उत्तरी पूर्वी भाग में राष्ट्रीय राजमार्ग 12 पर पुलिया थाने के पास विद्यमान हैं उन्हें भावी आवश्यकताओं के अनुसार विकसित किया जाना चाहिए। जिससे नगर के पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव नही पड़े और स्थानीय लोगो को रोजगार भी उपलब्ध हो सके ।

10. नगर के लिये परिसंचरण प्रतिरुप की एक ऐसी पदानुक्रम की व्यवस्था की सड़को का अनुकूलतम उपयोग किया जाए। भूमि उपयोग योजना एवं यातायात संरचना एक दूसरे की पूरक होनी चाहिये ।

11. यातायात की समुचित व्यवस्था करने हेतु क्षेत्रीय यातायात को स्थानीय यातायात से मिश्रित न होने दिया जाए। इसके लिये बाह्य मार्गो व उपमार्गों का प्रावधान किया जाना चाहिये। जिससे भारी वाहन एवं बाहर जाने वाले अन्य वाहन शहर से होकर नही जाए । मुख्य सड़कों के यातायात दबाव को कम करने के लिए वैकल्पिक मार्ग प्रस्तावित किये जाने चाहिए। औद्योगिक क्षेत्रो के नजदीक नया ट्रक टर्मिनल भी प्रस्तावित किया जाना चाहिये ।

12. भविष्य में टोंक शहर में नगरीय दबाव व सम्पूर्ण जिले की ग्रामीण आबादी की प्रशासनिक, शैक्षणिक, वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु सरकारी कार्यालयों की संख्या में वृद्धि व विस्तार करना होगा । इस कारण नगर में राजकीय व अर्द्धराजकीय कार्यालयों के लिए भूमि सुरक्षित करनी होगी जिससे एकीकृत रूप से कार्यालय भवनों का निर्माण हो सके ।

13. नगरीकरण योग्य सीमा के बाहर क्षेत्रो में किसी प्रकार के अनाधिकृत विकास को नियंत्रित करने के उद्देश्य से चारो ओर एक परिधि नियंत्रण पट्टी का निर्धारण किया जाना चाहिये । इस पट्टी में स्थित ग्रामीण बस्तियों को नियंत्रित परन्तु सीमित नियोजन विकास के दायरे में लाना होगा ।

14. नगरवासियों को मानवीय गुणवत्तायुक्त वातावरण उपलब्ध कराने के लिये नगर नियोजन में सड़को की स्थिति, चौडाई, अण्डरब्रिज, शुद्ध पेयजल, कचरा निस्तारण, खुले स्थान, पार्क, मनोरंजन स्थल, खेल मैदान उपरोक्त भावी आवश्यकताओं एवं लोगो की भावनाओं को ध्यान में रखकर टोंक शहर का संपूर्ण नियोजित विकास करने के लिए आगामी 20 वर्षो के लिए टोंक शहर का मास्टर प्लान तैयार किया गया हैं। यह एक दीर्घकालीन योजना हैं जो भविष्य की अनुमानित आवश्यकताओं का संतुलित एवं समग्र विकास का अभिनव प्रयास किया गया हैं।

टोंक शहर की नगरीय जनसंख्या वृद्धि

टोंक शहर में नगरीयकरण का अध्ययन करने के लिए

प्राचीन काल से वर्तमान काल तक की नगरीय जनसंख्या की विभिन्न विशेषताओं से सम्बन्धित आंकड़ों को एकत्रित किया गया, जिससे यह जानकारी मिलती है कि टोंक शहर में नगरीयकरण की प्रवृत्तियाँ तेजी से बदल रही है। नगरीयकरण सामाजिक जीवन के सम्पूर्ण प्रारुप में क्रान्तिकारी परिवर्तन की ओर संकेत करती है, जो एक बार शुरु हो जाने के बाद गतिमान रहता है। टोंक शहर की नगरीय जनसंख्या प्रवृत्तियों को निम्न सारणी से स्पष्ट किया जा रहा है:

टोंक शहर में जनसंख्या वृद्धि 1901-2011

वर्ष	जनसंख्या	जनसंख्या वृद्धि	जनसंख्या वृद्धि प्रतिशत
1901	38759	–	
1911	33864	4895	-12.63
1921	30374	3480	-10.31
1931	35798	5423	17.86
1941	38650	2852	7.97
1951	42833	4183	10.82
1961	43413	580	1.35
1971	55866	12453	28.68
1981	77653	21787	39.00
1991	100235	22582	29.08
2001	135689	35454	35.37
2011	165363	29674	21.86

नगरीयकरण की विभिन्न विशेषताओं के अध्ययन से यह जानकारी मिलती है कि टोंक शहर की नगरीय जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है। बढ़ती नगरीय जनसंख्या को मूलभूत नगरीय सुविधायें नहीं मिलने के कारण मानवीय गुणवत्ता पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

गन्दी बस्तियां

टोंक शहर के कुल भूमि उपयोग में से 443.11 हैक्टेयर भूमि जो कुल भूमि उपयोग का 47.16 प्रतिशत हैं आवासीय उपयोग के अन्तर्गत हैं । यहां नगरीय क्षेत्र का औसत घनत्व 180 व्यक्ति प्रति हैक्टेयर तथा आवासीय घनत्व 393 व्यक्ति प्रति हैक्टेयर हैं। टोंक के आन्तरिक भाग में घनत्व अधिक एवं बाहरी भाग में यह कम हैं । आन्तरिक भाग की बसावट अनियोजित ढंग से हैं । जहां मकान एक दूसरे से सटे हुये हैं । यहां संकरी सड़के, दम घोटू वातावरण, सामुदायिक सुविधाओं का अभाव हैं । 2011 की जनसंख्या के आधार पर 7 व्यक्ति प्रति परिवार के आधार पर 26057 परिवार हैं । इस प्रकार बढते परिवारो के आधार पर आवासो की कमी हैं।

टोंक शहर में निरन्तर नगरीयकरण से गन्दी बस्तियों का विकास हो रहा हैं । यहां पर काली पलटन, बहीर, छावनी, अन्नपूर्णा क्षेत्र, धन्ना तलाई, पीली तलाई, अमीरगंज, गुड्डा पहाडिया, हीरा चौक, बड़ा तख्ता, ताल कटोरा में सर्वाधिक गन्दी बस्तिया हैं । टोंक शहर में कुल 35 कच्ची बस्तियां जो कि काली पलटन क्षेत्र में सर्वाधिक केन्द्रित हैं । यहां 30 वार्डो में गन्दी बस्तियां हैं । जहां मानवीय गुणवत्ता का निम्नतर स्तर एवं अपराध की उच्च दर हैं । यहां पेयजल, स्वास्थ्य, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक स्तर काफी कमजोर हैं । शराबखोरी, व्याभिचारी, जुआंखोरी, खुले में शौच जैसी समस्यायें यहां आसानी से देखी जा सकती हैं ।

नगरीय ग्रामीण उपान्तः टोंक शहर में निरन्तर नगरीयकरण के क्षेतिज विस्तार से ग्रामीण क्षेत्र का भूदृश्य समाप्त हो रहा हैं । टोंक शहर के विस्तार से आज आवासीय 24 गांव प्रभावित हो रहे हैं । आपसपास के गांवो कृषि भूमि पर भूमाफियाओं द्वारा आवासीय कॉलोनियो हेतु भूखण्ड बेचे जा रहे हैं । जिससे कृषि क्षेत्र समाप्त हो रहा हैं । ग्रामीण

क्षेत्रीय वातावरण में आज नगरीय कचरा डाला जा रहा हैं । सीमान्त क्षेत्रो पर गन्दी बस्तियां बढ़ रही हैं । यहां कचरा ढेरो के रुप में देखा जाता हैं ।

नगर सीमा के विस्तार के साथ जहां एक ओर कृषि भूमि पर अतिक्रमण होता हैं वही अनुपयुक्त भूमि पर निर्माण के कारण कृषि उत्पादों की नगर में आपूर्ति घटने लगी हैं । प्राकृतिक वनस्पति का आवरण समाप्त हो जाता हैं । जबकि पर्यावरण संरक्षण हेतु हरित पेटी का होना अति आवश्यक हैं।

नगर की सीमा पर अनियमित ग्रामीण नगरीय उपान्तीय विस्तार भी नगरीय समस्या को जन्म दे रहा हैं । यहां अनियोजित संरचनायें, गममागमन, कूड़ा निष्पादन आदि के लिये अवरोध बन जाती है। सीमा क्षेत्र में शहर की कूड़ा अपशिष्ट पदार्थ, शहरी गन्दा पानी भरा रहता हैं । यहां खुले में शौच, प्रदूषित वातावरण, गन्दी बस्तियां, अपराध, वैश्यावृति, मूलभूत सुविधाओं का अभाव आम समस्या हैं । ग्रामीण नगरीय उपान्त संस्थागत मरुस्थल के रुप में नगर चारो ओर विकसित हो रहे हैं ।

निष्कर्ष एवं समीक्षा

- नियोजित आवास उपलब्ध करवाकर गन्दी बस्तियों में रहने वाले लोगों को नगर के बाहर खुले स्थानों पर आवास उपलब्ध करवाना।
- गन्दी बस्तियों में जनयोपयोगी सुविधायें उपलब्ध करवाना। जैसे पेयजल, प्रकाश, चिकित्सा, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवायें, शौचालय निर्माण।
- यातायात परिवहन हेतु पदानुक्रमित व्यवस्था को स्थापित किया जाये। शहर में भारी वाहनों को रोकने हेतु नगर के चारों ओर वैकल्पिक मार्ग बनाना।
- घण्टाघर व बड़ा कुआं जहाँ भीड़–भाड़ अधिक रहती है, वहाँ ओवरब्रिज का निर्माण किया जावे।
- गन्दे नालों व नालियों के पानी को बनास नदी व आन्तरिक भाग में स्थित विभिन्न तालाबों में जाने से रोकना।
- ठोस व घरेलू कचरे का उपयोग बायोगैस संयंत्र लगाकर विद्युत निर्माण हेतु इकाईयां स्थापित की जावे। घरेलू कचरे का उपयोग खाद निर्माण में किया जाये।
- बूचड़खाने को कानूनी रुप से आबादी क्षेत्र से हटाकर दूर स्थानान्तरित करना।
- शहर की सीमा पर नगरीय ग्रामीण उपान्त को नियोजित रुप से विकसित किया जाये। यहाँ पर नगरीय सुविधाओं को उपलब्ध कराना होगा। जैसे रोजगार के साधन, चिकित्सा, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवायें, पेयजल, मनोरंजन के साधन, पार्क, रिसोर्ट, होटलें आदि ताकि ग्रामीण आबादी शहर के केन्द्रीय भाग की ओर आकर्षित न हो।
- शहर के चारों ओर परिधि नियन्त्रण पट्टी का निर्माण किया जाये।
- नवीन आवासीय कॉलोनियों को नियोजित ढंग से चौड़ी सड़कों के साथ मानवीय गुणवत्ता के अनुरुप बसाया जाये।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *बंसल, सुरेशचन्द्र, नगरीय भूगोल, मीनाक्षी प्रकाशन, नई दिल्ली , 1984*
2. Gill. D. & Bonnett.P. Nature in the urban Landscape: A study of the city Ecosystem Baltimore York Press, 1973
3. *हनुमान सिंघल, टोंक का इतिहास*
4. *राजस्थान जिला गजेटियर, टोंक*
5. *टोंक जिला एक दृष्टि में वर्ष 2016 आर्थिक एवं सांख्यिकी विभाग, टोंक*
6. *राजस्थान पत्रिका : टोंक पत्रिका*
7. *दैनिक भास्कर : टोंक भास्कर*

राजस्थानी कवियों का स्वतंत्रता संग्राम में योगदान

सुरेश कुमार सान्दू
व्याख्याता, राजकीय कन्या महाविद्यालय,अजमेर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांशः *भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम में राजस्थानी कवियों ने जो महत्वपूर्ण योगदान दिया है, वह स्वर्णाक्षरों में उल्लेखित है। उन्होनें अपनी वीररसपूर्ण कविताओं में जहाँ एक ओर मातृभूमि पर उत्सर्ग होने वाले वीरों का यशोगान किया है, वहीं दूसरी ओर राष्ट्र की विश्रृखल शक्तियों का परस्पर एक जुट होकर विदेशी शासन (ब्रिटिश सरकार) से लोहा लेने के लिए भी ललकारा है। ऐसे कवियों में सूर्यमल्ल मिश्रण, बाँकीदास, शंकरदास सोमर एवं केसरी सिंह जी बारहठ की गणना कर सकते है। राजस्थानी कवियों ने अपनी उद्‌बोधक कविताओं द्वारा देश–प्रेम की भावनाएँ जगाकर तथा मात्–भूमि को मुक्त करने का आह्‌वान कर हमारे स्वतंत्रता–संग्राम में ऐतिहासिक योगदान दिया है।*

संकेताक्षर : *वीररस,प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, वीर सतसई, चेतावणी रा चूंगटिया, दिल्ली दरबार, आउवा, ठकुर कुशाल सिंह चाम्पावत प्रशस्ति।*

राजस्थानी कवियों ने भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम में जो महत्वपूर्ण योगदान दिया है, वह स्वर्णाक्षरों में उल्लेखित है। उन्होंने अपनी वीररसपूर्ण कविताओं से जहाँ एक ओर मातृभूमि पर उत्सर्ग होने वाले वीरों का यशोगान किया है, वहीं दूसरी ओर राष्ट्र की विश्रृंखल शक्तियों को परस्पर संगठित होकर विदेशी शासन से लोहा लेने के लिए भी ललकारा है। राजस्थान के लिए यह निश्चिय ही गर्व और गौरव की बात है कि यहाँ के कवियों ने सर्व प्रथम जाति, धर्म, सम्प्रदाय एवं प्रान्तीयता की भावना से ऊपर उठकर समूचे देशवासियों को उस प्रथम स्वतंत्रता–संग्राम (1857) में कूद पड़ने का आह्‌वान किया था। इस प्रकार हमारे प्रथम स्वाधीनता–संग्राम में राष्ट्रीय चेतना को उद्‌बुद्ध कर मुक्तिका मार्ग प्रशस्त करने में राजस्थान के कवियों ने ऐतिहासिक भूमिका निभाई है।

शौर्य और स्वतंत्रता की परम्पराओं में पले राजस्थान के कवियों ने हमारे प्रथम स्वाधीनता–संग्राम का मुक्त कंठ से अभिनन्दन किया। उन्होनें तत्कालीन नरेशों सहित, हिन्दू–मुस्लिम सभी धर्मानुयायियों को मातृभूमि की मुक्ति के लिए उद्‌बोधित किया। उनका यह उद्‌बोधन कविराज बाँकीदास के एक डिंगल–गीत मे अत्यंत मार्मिकता से व्यक्त हुआ हैं, जिसका अंश हैः

आयां इंगरेज मुलक रै ऊपर, आहँस लीधा खैंचि उरा।
धणियाँ मरे न दीधी धरती, धणियाँ ऊभाँ गई धरा ।।
फौजाँ देख न कीधी फौजाँ, दोयण किया न खला डला।
खवाँ खाँच चूड़ै खाँवद रै, उणहिज चूड़ै गई यला।।

कविराज बाँकीदास से तत्कालीन नरेशों को धिक्कारते हुए हिन्दू मुसलमानों को एकजुट होकर विदेशी शासन से लोहा लेने का जो वीरतापूर्ण आह्‌वान किया है, उसमें स्वतंत्रता–संग्राम के बीच उभरती हमारी धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय चेतना का स्वर स्पष्टतया सुना जा सकता है।

राजस्थान के जिन वीरों और नरेशों ने अपने को उस मुक्ति संग्राम में झोंक दिया, राजस्थानी कवियों ने उन्हें अपनी कविताओं एवं लोकगीतों में अमर कर दिया। इन वीरों में भरतपुर के राजा रणजीत सिंह, नरसिंहगढ़ के राजकुमार चैनसिंह, आउवा के ठाकुर कुशाल सिंह चम्पावत, नींबाज ठाकुर सावन्त सिंह, कोठारिया के रावत जोधसिंह, सलूम्बर के रावत केसरी सिंह, शौपुर (बड़ौदा) के हाड़ा बलवन्त सिंह, अमरकोट के सोढ़ा राणा रतन सिंह आदि के नाम विशेष रुप से उल्लेखनीय है।

भरतपुर के राजा रणजीत सिंह द्वारा जसवंतराव होल्कर को शरण दिए जाने पर जनरल लेक ने विशाल सेना के साथ भरतपुर किले पर आक्रमण किया गया लेकिन अंग्रेजो द्वारा लाख कोशिश करने पर भी उसने होल्कर को उनके सुपुर्द नहीं किया और अपने अप्रत्याशित शौर्य से उनके छक्के छुड़ा दिये। कविराज बाँकीदास ने अपने एक अन्य गीत में रणजीत सिंह के अद्‌भुत पराक्रम की प्रशंसा करते हुए लिखा है

मेह मरजाद रणजीत आखाड़मल,
खेट दीधा डसण जबर खेह।
पुखत गुरगम मिली सेन पण पांकियौं,
भरतपुर फेर नह उसर भेटै।।

कविराज बाँकीदास के समान बूंदी के महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण ने भी तत्कालीन स्वतंत्रता-संग्राम के संदर्भ में अपनी वीररसात्मक कविताओं एवं दोहों द्वारा देशवासियों के सुप्त पौरुष को उद्‌बुद्ध किया। उनकी वीरसतसई वीररसपूर्ण ऋचाओं का एक ऐसा ही अमर उद्‌बोधन है, जिसमें राजस्थान के वीरोचित-आदर्शो एवं वीरता की गौरवमयी परम्पराओं की अत्यन्त ओजस्वी अभिव्यक्ति हुई हैं। कवि ने तत्कालीन स्वतंत्रता-संघर्ष (1857) का यों उल्लेख किया।

बीकम बरसौं बीतियौं, गुण चौ चंद गुणीस।
बिसहर तिथि गुरु जेठ बदि, समय पलट्‌टी सीस।।

कवि ने अंग्रेजी शासन के अधीन हुए तथा ऐशो-आराम में डूबें तत्कालीन राजा-महाराजाओं का सटीक चित्रण किया:-

इकडंकी गिण एक री, भूलै कुल साभाव।
सूरौं आलस अेस में, अकज गुमाई आव।।

साथ ही वीरसतसई में कवि ने शौर्य और पराक्रम से दीप्त वीर-जीवन के एक से बढ़कर एक अनूठे चित्र खींचे है, जिनमें स्वाभिमान, स्वामिभक्ति, भूमि प्रेम आदि वीरत्व के परम्परागत आदर्शों एवं जीवन मूल्यों को चरितार्थ करने का ही परोक्ष सन्देश निहित है। सच्चा वीर अपनी मातृभूमि को कभी भी दूसरों के हस्तगत नहीं होने देते। इस सन्देश को कवि ने एक वीर जननी के माध्यम से कितनी मार्मिकता से व्यक्त किया है:

इला न देणी आपणी, हालरियौं हुलराय।
पूत सिखायै पालणै, मरण बड़ाई माय।।

महाकवि सूर्यमल्ल ने आउवा ठाकुर कुशाल सिंह चम्पावत की प्रशस्ति में भी बहुत सुन्दर डिंगल गीत लिखा है । आउवा ठाकुर ने सन 1857 की क्रान्ति में भाग लेने वाले कुछ सैनिकों को आश्रय देकर अपने क्षात्र-धर्म एवं राष्ट्र-धर्म का पालन किया था। अंग्रेजों को खबर मिलते ही जोधपुर राज्य की सेना के साथ आउवा पर आक्रमण कर दिया। दोनों ओर से बिढोडा नामक स्थान पर घमासान युद्ध हुआ, जिसमें जोधपुर की सेना के छक्के छूट गये। आखिर बल से सफलता न मिलती देख कूटनीतिज्ञ अंग्रेजों ने छल का आश्रय लिया। उन्होंने आउवा के किलेदार और कामदार को अपनी और मिला कर किले पर अधिकार कर लिया। खुशाल सिंह किले से बाहर निकल गए तथा जीवन पर्यन्त अंग्रेजों का विरोध किया। महाकवि सूर्यमल्ल ने अपने एक डिंगल गीत में आउवा के उस महान देश-भक्त एवं शूरवीर ठाकुर कुशाल सिंह चाम्पावत की कीर्ति का यों बखान किया:

लोहां कंरतो झाटका फणां कंवारी घड़ा रौ लाडौ,
आड़ो जोधांण सूं खैचियौ वहै अंट,
जंगी साल हिन्दवाण रो आवगो जीनै,
आउवो खायगो फिरगांण रो अजंट।

आउवा का युद्ध राजस्थान में इतना प्रसिद्ध हुआ कि उसे लेकर अनेक प्रशस्तिमूलक दोहे भी लिखे गए। यथा:

हुआ दुखी हिन्दवाण रा, रुकी न गौरा राह।
विकट लड़ै सहियों विखो, वाह आउवा वाह।।
फिरिया दल फिरंगाणरा, धरहरिया लख वाह।
करिया जुध खुसियाल सूं, मरिया आले माट।।
कालां मूं मिल खुसलसी, टणके राखी हेक।
है ठावो हिन्दवाण में, ओ आउवों एक।।

कवियों ने क्रान्तिकारियों की सहायता करने वाले राजा-महाराजाओं की भी प्रशंसा की है, जैसे- आउवा दुर्ग से निकलने के पश्चात ठाकुर कुशाल सिंह की सहायता

करने वाले कोठारिया के रावत जोधासिंह का प्रशस्ति में इस प्रकार वर्णन हुआ–

मुरधर छांड खुशालसी, भागो चांपो भूप।
रावत "जोधे" राखिया, रजवट हंदे रुप।।

सन् 1857 के स्वतन्त्रता–संग्राम में अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध देशवासियों को सशक्त प्रतिरोध का आह्वान करने वाले कवियों में शंकरदान सामोर का स्थान सर्वथा विशिष्ट है। इस देश–भक्त, निर्भीक एवं क्रान्तिकारी कवि की कविता में तत्कालीन क्रान्ति को सफल बनाने हेतु राष्ट्रव्यापी आह्वान, इसमें भाग लेने वाले वीरों की प्रशंसा तथा इससे विमुख रहने वाले राजाओं की तीव्र भर्त्सना है। कवि ने अंग्रेजों को चंगेज खाँ से भी बढ़कर लुटेरा बतलाया है। चंगेज तो महलों को ही लूटता था, ये झौपड़ियों के लुटेरे है।

महलन लूटण मोकला, चढ़या सुण्या चिंगेज।
लूटण झूंपा लालची, आया बस इंगरेज।।

कविराज बाँकीदास के समान कविवर शंकरदास सामोर ने भी "मिल मुसलमान राजपूत ओ मरेठा" कह कर सभी को संगठित हो अंग्रेजों से जूझने का आह्वान किया तथा तत्कालीन क्रान्ति को देश को आजाद करने का एक अनमोल अवसर बताते हुए यह चेतावनी दी कि यदि यह अवसर खो दिया तो वापस नहीं आयेगाः

फाल हरिण चूक्यां फटक, पाछो फाल न पावसी।
आजाद हिन्द करवा अवर, औसर इस्यो न आवसी।।

कवि ने तत्कालीन बीकानेर–नरेश सरदार सिंह को भी, जो खुले रुप में अंग्रेजो का साथ दे रहे थे, धिक्कारने से नहीं चूकाः

लाज न कर चौड़ेह लड़, देस बचावण दीन।
बलिदानां बिन बावला, रजवट कदे रही न।।
देख मरै हित देस रै, पेख सचो रजपूत।
सिरदारा तौनै सदा, कैसी जगत कपूत।।

कवि ने स्वतंत्रता–संग्राम में भाग लेने वाले केवल राजस्थानी वीरों की ही प्रंशसा नहीं की, वरन् अन्य देश–भक्त एवं स्वतंत्रता सेनानी वीर तांत्या टोपे को भी अपनी प्रशस्ति से अभिनंदित किया है :

जठै गयो जंग जीतियों, खटके बिण रणखेत।
तकड़ौ लड़ियों तांतियों, हिंद–थान रे हैत।।

यद्यपि सन् 1857 में हुए अपने स्वतंत्रता–संग्राम में हम सफल न हो सके, तथापि राजस्थानी–काव्य में स्वतंत्रता–प्राप्ति हेतु संघर्ष की प्रेरणा कभी निष्फल नहीं हुई एवं समय–समय पर राजस्थान के कवि मातृभूमि को मुक्त कराने हेतु अपने कर्त्तव्य का स्मरण कराते रहे।

इस प्रसंग में कोटा के प्रसिद्ध देश–भक्त, क्रान्तिकारी केसरी सिंह जी बारहठ का नाम विशेष रुप से उल्लेखित है। जिन्होनें राष्ट्र की स्वाधीनता वेदी पर अपने पूरे परिवार को उत्सर्ग कर दिया। जब उदयपुर के महाराणा फतहसिंह सन् 1903 में तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन द्वारा आयोजित "दिल्ली दरबार" में जाने के लिए तैयार हो गये तो उन्होनें उन्हें संबोधन कर प्रताड़ना के ऐसे मार्मिक दोहे कहे कि महाराणा ने दरबार में शामिल होने का विचार ही छोड़ दिया। उनके वे दोहे "चेतावणी रा चूँगटिया" नाम से विख्यात है। उनमे से कुछ निम्न हैः

पग–पग भम्या पहाड़, धरा छोड़ राख्यों धरम।
महाराणा मेवाड़, हिरदै बसिया हिन्द रै।।
घण घलिया घमसांण, राण सदा रहिया निडर।
पेखंता फुरमांण, हलचल कियं 'फतमल' हुवै।।
सिरझुकिया सह साह, सींहासन जिण सामने।
रलणों पंगत राह, फाबै किम तौने 'फता' ।।
देखै लौ हिन्दवाण, निज सूरज दिस नेह सूं।
पण तारा परमांण, निरख निसांसा नाखसौ।।

राजस्थान का कवि केवल अतीतजीवी एवं परम्परावादी ही नहीं, वह नवयुग के नव विहान का भी गायक है। कविवर नाथूसिंह जी की 'वीर–सतसई' इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। इसमें उन्होंने वीरता के प्राचीन परम्परागत आदर्शो को राष्ट्रीयता के नूतन सन्दर्भो में अत्यन्त मार्मिकता से अभिव्यक्त किया है। देश की पराधीनता पर (तब देश स्वतंत्र नहीं हुआ था) कवि का अवसाद एक वीरमाता के माध्यम से निम्नांकित दोहे में कितनी मार्मिकता से व्यक्त हुआ है। जिसमें अपने पुत्र के होते हुए भी वह देश को पराधीन देख, अपने को निपूती रहने से कहीं अधिक दुखी अनुभव करती है।

रहत निपूती तौ इतौ, दुख्ख न करती आद।
देश पड़्यो परवस हुओ, पूत फिरै आजाद।।

इस सन्दर्भ में कवि में तत्कालीन जागीरदारों या सांमतों को धिक्कारते हुए लिखा।

ठाकर रहिया नाम रा, ठा करली सह ठाम।
ठाकर होता देस में, देस न हुतौ गुलाम।।

ISSN 2277-5587

डिंगल-काव्यों में वीर के लिए दो ही विकल्प मान्य है-युद्ध में विजयश्री या वीरगति, लेकिन कविवर नाथूसिंह जी इस परम्परागत आदर्शो को भी मोड़ दे दिया है। कवि ने देश की मुक्ति के लिए जेल-यात्रा करने वाले वीर-पुत्र को भी गौरव का पात्र बतलाया हैः

हक किम जावै दैस रौ, कहवै दादी माय।
बेटो कारागृह गयौ, पोतो सुरपुर जाय।।

इसी भाँति देश के लिए प्राणोत्सर्ग करने वाले पुत्र पर वीर जननी के हर्षातिरेक का वर्णन देखाः

सुत मरियौ हित देश रे, हरख्यो बंधु समाज।
मो नह हरखी जनम दिन, जतरी हरखी आज।।

कविवर नाथूसिंह जी ने अपनी वीरसतसई में राजस्थान की वीरोचित परम्पराओं के अनुरुप प्राचीन और नवीन का एक अद्‌भुत और चमत्कारिक समन्वय किया है। उन्होंने गाँधीजी के चरखे को तो स्वीकार कर लिया परन्तु उस पर धागा केसरिया निकलवाया है, जो राजस्थानी वीर परम्परा में उत्सर्ग और बलिदान का प्रतीक है। इस दृष्टि से कवि ने नूतन सन्दर्भो में हमारी राष्ट्रनीति को शक्तिसम्पन्न होने का परोक्ष सन्देश दिया है।

करियां केसरिया खुलै, देस मुगत रौ द्वार।
चरखा अब तो काढ़ रै, तू केसरिया तार।।

इस प्रकार हम देखते है कि राजस्थानी कवियों ने अपनी उद्‌बोधक कविताओं द्वारा देश-प्रेम की भावनाएँ जगा कर तथा मातृ-भूमि को मुक्त करने का आह्‌वान कर हमारे स्वतंत्रता-संघर्ष में ऐतिहासिक योगदान दिया है।

देश के स्वातंत्रय-सौध के सिंहद्वार पर जब तक वीरता के इन देवी-पुत्रों की वाणी गूँजती रहेगी, तब तक देश की धरती भी बलिदानों के शोणित से सिंचित होकर शहीदों को जन्म देती रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *महाकवि सूर्यमल्ल चित्रण कृत-वीरसतसई-सम्पूर्ण*
2. *सूर्यमल्ल चित्रण लिखित-आउवा ठाकुर कुशाल सिंह चम्पावत प्रशस्ति*
3. *कविराज बाँकीदास के गीत*
4. *कवि शंकरदान सामोर के दोहे*
5. *केसरी सिंह बारहठ कृत- चेतावणी रा चूगटियाँ*
6. *कविवर नाथू सिंह महियारिया कृत-वीर-सतसई*
7. *स्व.नारायण सिंह सान्दू (भदोरा) के काव्य संग्रह*
8. *राजस्थानी कवि - गोवर्द्धन शर्मा-खण्ड दूसरा पेज-126 से 130 तक*
9. *राजस्थानी साहित्य-कुछ प्रवृत्तियाँ-डॉ. नरेन्द्र भातावत*
10. *राजस्थानी शोध निबन्ध - पेज 65 से 79 राजस्थानी रसधारा- डॉ. शंभुसिंह मनोहर-पेज 49-54*

भारत में नक्सलवाद की समस्या एवं उसका प्रभाव

विजय कुमार मीना
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश: *वर्तमान समय में भारत की सबसे अहम् चिंता आतंरिक सुरक्षा है। केन्द्र एवं राज्यों को मिलकर संयुक्त रुप से इन समस्याओं का सामाधान खोजना चाहिए। केन्द्र और राज्यों के बीच नजदीकी सहयोग की आवश्यकता है क्योंकि ये समस्याऐं किसी राज्य विशेष तक सीमित नहीं है। देश में बढ़ता अपराध, नक्सलवाद और माओवाद एक बड़ी चुनौती है। केन्द्र सरकार पूरे विपक्ष को विश्वास में लेकर महासंकल्प ले कि अगले पांच वर्ष में देश से गरीबी दूर कर दी जाएगी। अत्यन्त गरीबों को विशेष पहचान पत्र दिये जाए, जिनमें पांच वर्ष के भीतर उनकी विपन्नता दूर करने का आश्वासन हो। नक्सलियों पर कोई भी गम्भीर कदम उठते समय सरकार को प्रत्येक पहलुओं पर गम्भीरता पूर्वक सोच विचार कर लेना चाहिए और नक्सलियों के बढ़ते काफिलें को रोकना होगा।*

संकेताक्षर : *नक्सल समस्या , रेलानाच, जोतदार, छापामार शैली, दलम ।*

नक्सलवाद भारत की आंतरिक सुरक्षा, विकास और सद्भाव के लिए सबसे बड़ा खतरा बनकर उभर रहा है। नक्सलवाद की चपेट में आने वाले भारतीय प्रदेशों की संख्या बढ़ती जा रही है। उनकी कार्यवाही से देश का एक बहुत बड़ा हिस्सा गम्भीर आंतरिक सुरक्षा अव्यवस्था से प्रभावित है। नक्सलवाद को भारत सरकार ने एक गम्भीर चुनौती के रुप में स्वीकार कर लिया है। इसका गहराई से अध्ययन करने के उपरान्त इसकी गम्भीरता प्रदर्शित होती है। अब प्रश्न यह उठता है कि वह कौन सी सहायक चुनौतियाँ है, जिन्होंने इसको इतना बलिष्ठ बनाकर एक बड़ी चुनौती बना दिया है। नक्सलवाद का प्रारम्भिक स्वरुप यह बताता है कि जिन क्षेत्रों में भूमि वितरण की समस्या, अशिक्षा की समस्या, आदिवासी, जनसमूह की समस्याओं को समाप्त किया जाना निश्चित ही यह कार्य भारत सरकार की एक चुनौती से कम नहीं है। गरीबों में भूमि वितरण की समस्या सरकार के लिए गम्भीर चुनौती पहले रहीं और आज भी है। अवितरित भूमि के आकड़े स्पष्ट कर रहें हैं। भूमि सीलिंग का कानून भले ही बहुत समय पहले बन गया हो, परन्तु देश के हित में सरकारों के यह सामंत और जमीदार आज भी बड़ी चुनौती बने हुए है।

यह भी एक चुनौती है कि सरकार यदि शक्ति के आधार पर नक्सलियों से निपटती है तो अनेक बार ऐसा हुआ है कि वास्तविक आतंक फैलाने वाले तत्व छिप जाते हैं या भाग जाते हैं और निर्दोष जनता कटती मरती है, जिससे वह और भी आक्रोशित हो जाती है। निश्चित ही इस परिस्थिति में अराजक तत्वों को पहचान पाना कठिन कार्य है।

सरकार के पास इस समस्या के समाधान हेतु भ्रष्टाचार भी बहुत बड़ी चुनौती बन कर उभरा है। नक्सलवाद वहीं फैला है जहाँ सरकारी तंत्र की लापरवाही या भ्रष्ट गतिविधियों के कारण आदिवासी गरीब दैनिक आवश्यकताओं के लिए परेशानी से जूझ रहे हैं तथा यह सिद्ध हो चुका है कि शासन प्रशासन की मिली भगत से नक्सलवाद जैसा भ्रष्टाचार भी भारत के लिए एक गम्भीर समस्या बन गया है। इस भ्रष्टाचार के रहते पिछड़े क्षेत्र के नागरिकों को हर प्रकार की सुविधा उपलब्ध कराना, जिससे कि वह नक्सलियों से दूरी बना सकें। निश्चित ही सरकार के लिए यह एक गम्भीर चुनौती है।

नक्सलवाद मुक्त भारत बनाने के लिए इन प्रमुख चुनौतियों के साथ और भी चुनौतियाँ है। जो भारतीय लोकतंत्र के सामने खड़ी नजर आ रहीं है। यदि सामंत, जमींदार, राजनेता, नौकरशाह तथा अन्य सभी इस समस्या से जुड़े तत्व राष्ट्रीय संकट के समय, देश के हित में मानवीय मूल्यों को सामने रखकर निजी स्वार्थो को त्यागकर यदि ईमानदारी से इनकी हर प्रकार की जायज समस्या का समाधान करने की पहल कर दें, तो विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि भारत की इस गम्भीर समस्या का आसानी से समाधान किया जा सकता है। इन क्षेत्रों में अधिकतर आदिवासी एवं गरीब आबादी सरल है और वह हिंसा में भी लिप्त नहीं है। आज आवश्यकता है कि हम आगे बढ़कर उनका हाथ थामें और उनको भरोसें में लें।[1]

''सत्ता बंदूक की नली से निकलती है'' के प्रतिपादक माओत्से तुंग की विचारधारा से प्रेरित नक्सली आन्दोलन मुख्यतः किसानों द्वारा शुरु किया गया था। धीरे-धीरे इसमें बुद्धिजीवी वर्ग होनें के कारण, यह देश के उन हिस्सों को भी अपने प्रभाव में लेता गया, जहाँ गरीबी, निरक्षरता, आर्थिक असमानता और भूमि का असमान स्वामित्व है। प्रारम्भ में जमीदारों के एकाधिकार पर आधारित गाँवों के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक ढाँचे पर प्रहार किया गया। भूमि को जोतने वाले को सीमाकंन के आधार पर भूमि सौंप दी गई। जो जमीन खाली थी एवं किसानों द्वारा स्वंय जोती नहीं जाती थी उनका किसानों समिति द्वारा पुर्नवितरण किया गया। भूमि सम्बन्धी वे सारे दस्तावेज जला दिये जिनका प्रयोग गरीब किसानों को ठगने के लिए किया जाता था। आटा चावल, कृषि के उपकरण एवं बड़ी संख्या में पालतू पशु एवं व्यक्तिगत वस्तुएं किसानों में वितरित कर दी गयी। किसानों द्वारा यह लड़ाई अपने बलबूते पर लड़ी गयी जिसमें उन्होने स्वयं द्वारा बनाये गये हथियारों, धनुषबाण, भालों एव जोतदारों से छीनी गयी बंदूकों को सुसज्जित करके इन्होने अपने सशस्त्र बलों को संगठित किया एवं पुलिस से आग्नेयशास्त्र छीनकर अपनी शक्ति में वृद्धि की। भूमि सुधार सम्बन्धी माँगों को लेकर किये जाने वाले इस आन्दोलन के पीछे माओवादी गतिविधियाँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगी थी। नक्सलियों की माओवादी गतिविधियाँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगी थी। नक्सलियों ने माओवादी युद्धनीति अपनाकर एव जनसमर्थन प्राप्त करके अपनी कार्यवाहियाँ शुरु की। गुप्त स्थानों पर बैठकें आयोजित करके नक्सलियों को भर्ती एवं प्रशिक्षण करके जमींदारों, पुलिसजनों तथा राजनीतिज्ञों का दमन एवं हिंसा का प्रतिहार करने के उद्देश्य से वे अस्त्र-शस्त्र एवं प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं से युक्त आधार क्षेत्र का निर्माण करके अपनी योजनायें बनाते, एवं अन्य लोगो से सशस्त्र संघर्ष के दौरान छिने गये हथियारों से अपने शस्त्र भण्डारों में वृद्धि करते हैं तथा व्यापक जनसमर्थन प्राप्त होने के बाद अपनी कार्यवाही शुरु करते है। जन समर्थन के माध्यम से ये अपने हर कार्य को आसानी से कर लेते है। मनोवैज्ञानिक पद्धति से लड़ी जाने वाली इस लड़ाई में नक्सली निम्न तरीके अपनाते हैः

प्रचार : प्रचार के द्वारा नक्सली अपनी कार्यवाहियाँ शुरु करते है। प्रारम्भिक दौर में लघु अवधि के प्रचार द्वारा पैम्पलेट वितरण करना,भाषण, दीवार पर लेखन कार्य, रैली, नाटक, प्रदर्शन आदि का सहारा लेते हैं। इसका प्रभाव कम समय तक रहता है। तत्पश्चात् दीर्घ अवधि में प्रचार का सहारा लेते हैं। जिसमें नक्सली साहित्य, पत्र-पत्रिकायें, पुस्तकें, नारे, व्यवहार आदि का प्रयोग किया जाता है। प्रचार के माध्यम से जनता को अपने कार्यो से अवगत कराते हैं तथा जन समर्थन प्राप्त करते है।

अफवाह : मनोवैज्ञानिक युद्ध में अफवाह का बहुत महत्व होता है। अफवाह में ऑखों देखी बातें कही नहीं जाती बल्कि पूर्व धारणाओं के आधार पर कहानियाँ बनाई जाती है। अफवाह फैलाने वाला उसकी जाँच नहीं करता है। इसका प्रभाव तेज होता है, तथा यह कम अवधि के लिए होता है। नक्सली सामान्यतः जनता के मध्य पुलिस-उत्पीड़न, हत्या, बलात्कार जैसी अफवाहें ज्यादा फैलाते है। अफवाह फैलाने का उद्देश्य ग्रामीणों के मन में पुलिसवालों के प्रति घृणा पैदा करना होता है। अफवाहें सुरक्षा बलों का मनोबल गिराती हैं।

बुद्धि परिवर्तन : बुद्धि परिवर्तन के द्वारा जनता के मस्तिष्क में बैठे पुराने विचारों को निकालकर नये विचार भरना है। नक्सली दो प्रकार से बुद्धि परिवर्तन का कार्य करते है- पहला चुने हुए व्यक्तियों या समूह (जिसमें कामगार समूह, बुद्धिजीवी वर्ग एवं छात्र समूह होते हैं) और दूसरा आम ग्रामीण जनता। चुने हुए व्यक्तियों के समूह के लिए नक्सली साहित्य एवं विचारधारा तथा आम जनता के लिए नाटक, भाषण सशस्त्र-प्रदर्शन, प्रशिक्षण आदि का प्रयोग किया जाता है। बुद्धि परिवर्तन के लिए रेलानाच का प्रयोग ज्यादा होता है। जिसमें ''शोषण के विरुद्ध संघर्ष'' को

विषय के रुप में चुनते है। रेलानाच का मंचन ग्रामीण एवं नक्सली दोनों मिलकर करते हैं। नक्सली उत्साह एवं मनोबल से भरे रहते हैं। अपने पक्ष को सही और कल्याणकारी मानते हुए जीतने पर विश्वास रखते हैं। नक्सली मनोबल और जीतने की आशा उनके उत्तेजना एवं प्रचार पर निर्भर करती है। माओवादी छापामार शैली में नक्सली आदिवासी या निचले तबके के लोगों को ही चुनते है, ताकि उनके भीतर दबे हुए असन्तोष का मनोवैज्ञानिक लाभ उठाया जा सकें।

नक्सली आन्दोलन मुख्यतः नौवे दशक से मजबूती प्राप्त करता जा रहा है। सबसे उल्लेखनीय प्रभाव 2004 में उस समय देखने को मिला जबकि आन्दोलन की 90 प्रतिशत गतिविधियाँ चलाले वाले सबसे बड़े समूह माओवादी कम्युनिस्ट सेन्टर और पीपुल्स वार ग्रुप ने मिलकर एक नया समूह सी.पी.आई. (माओवादी) बनाया। इसका उद्देश्य भूमि या फसलों पर नहीं बल्कि सत्ता पर कब्जा करना है। दोनो गुटों के एकजुट होने से यह आन्दोलन और मजबूत होता गया है। दोनो गुटों की संयुक्त गुरिल्ला सेना का नाम पीपुल्स लिब्रेशन गुरिल्ला आर्मी रखा गया है। इन दोनों गुटों के अलावा लगभग 20 और छोटे-बड़े नक्सली संगठन सक्रिय हैं। नक्सलियों ने खुद को आधुनिक गुरिल्ला सेना में तब्दील कर दिया है। देशी पिस्तौलों पर उनकी निर्भरता कम होती है। आधुनिक संचार प्रणाली और ए.के. 47 राइफल ग्रेनेड, रॉकेट लांचर और बारुदी सुरंगों जैसे हथियारों को इन्होने हासिल कर लिया है। इनके पास भली -भाँति प्रशिक्षित और प्रेरित लगभग 50000 से अधिक लड़ाके है। यहाँ पर नक्सली संगठन का अध्ययन भी समीचीन होगा।

संगठन संरचना : नक्सली संगठनों की संरचना केन्द्रीय समिति से लेकर दलम में तक होती है। 6 सदस्यों वाली केन्द्रीय संगठनिक समिति प्रमुख इकाई होती है। इस समिति का प्रमुख सचिव होता है। ऑचलित समितियों में किसान-संघ, आदिवासी महिला, स्टूडेन्ट यूनियनों की ज्यादा भागीदारी होती है। मण्डल समिति का प्रमुख कार्य सभी कार्यकर्ताओं को पार्टी लाइन में रखना है। दलम पूरे संगठन की रीढ़ होता है, जो कि प्रारम्भ से अपना ठेस आधार बनाये। यह सशस्त्र गुरिल्ला हस्ती है ।दलम का कोई भी सदस्य निहत्था नहीं होता है। दलम के सभी सदस्यों को गुरिल्ला युद्ध एवं घात लगाकर हमला करने का प्रशिक्षण प्राप्त होता है। पीपुल्स वार ग्रुप द्वारा निर्मित इस सैनिक इकाई का नामकरण उसके कार्यो के अनुरुप किया गया है। जंगल दलम सिर्फ जंगलों में ही सक्रिय रहता हैं। प्लेन एरिया दलम गाँवों एवं कस्बों में कार्य करता है, जबकि सिटी दलम राज्य के प्रत्येक प्रभावित शहरों में कार्यरत् हैं।

नक्सल आन्दोलन के खिलाफ लडाई आतंकवाद के खिलाफ अभियान से कही अधिक मुश्किल, दुरुह एवं चुनौती भरा कार्य है। इस समस्या के समाधान हेतु विशेष प्रशिक्षित बलों की तैनाती के साथ ही प्रभावित क्षेंत्रों की जनता की आर्थिक, सामाजिक स्थिति में सुधार करना जरुरी हैं। नक्सली समस्या स्थानीय लोगों की भूख, गरीबी बेरोजगारी एवं पिछडेपन से उपजी है। इसके स्थायी समाधान के लिए राज्य सरकारों को दृढ संकल्प के साथ आगे आना होगा। ग्रामीणों में व्याप्त निराशा दूर करने के लिए मजबूत एवं लम्बे समय तक जारी रहने वाला अभियान चलाना होगा इस सन्दर्भ में ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजनाओं भूखे एवं बेराजगारों को राहत प्रदान कर सकती है। शहरी, अर्द्ध-शहरी विकास के साथ-साथ शहरीकरण औद्योगिकरण एवं रोजगार की शुरुआत की जानी चाहिए, राज्य सरकारों की नीतियाँ एवं योजनायें और केन्द्र सरकार का सहयोग दोनो के सामूहिक प्रयास के द्वारा नक्सलियों पर अंकुश लगाया जा सकता है, और तभी पथ विचलित अपने लोगो को पुनः राष्ट्रीय मुख्यधारा में जोड़ा जा सकता है।[2]

नक्सलवाद एवं भारत की आंतरिक सुरक्षा

आज भारत आतंकवाद एवं अलगाववाद के साथ-साथ नक्सली समस्या से भी जूझ रहा है। नक्सल आन्दोलन की शुरुआत 1960 के दशक में हुई माना जाता है। 1967 में नक्सलवाद शब्द पश्चिम बंगाल के एक छोटे से गांव नक्सलबाड़ी से उत्पन्न हुआ, जहाँ कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया के उग्रवादी धड़ो ने चारु मजूमदार एवं कानू सान्याल के नेतृत्व में हिंसक गतिविधियों को अंजाम दिया। धीरे-धीरे यह आन्दोलन पूरे पश्चिम बंगाल में फैल गया। चारु मजूमदार का चीन के माओं देग की विचारधारा में गहरा विश्वास था। उनका मानना था कि भारत के दलित तथा शोषित लोगों को माओं की उग्र-नीतियों का सहारा लेकर एक क्रान्तिकारी आंदोलन को जन्म देना चाहिए। चारु मजूमदार ने अपने लेखों और भाषणों के माध्यम से आंदोलन को मजबूती प्रदान की। उनके द्वारा लिखित 'आठ ऐतिहासिक दस्तावेजों को नक्सली विचारधारा का मुख्य

ग्रंथ समझा जाता है। नक्सलवाद का दावा है कि उसे पिछड़े दलित और शोषित समाज एवं छोटे किसानों को जनसमर्थन प्राप्त है। इस जनसमर्थन का मूल्य पूंजीपतियों पर हमले के रुप में अदा किया जाता है। नक्सलवाद की समस्या एक प्रकार से असमान नीति का परिणाम है। भौगोलिक दृष्टि से नक्सलवाद का प्रभाव औद्योगिक रुप से पिछड़े जिलों पर अधिक पड़ा है। भूमि का असमान वितरण, वन विस्थापन जन जातियों का स्वशासन, गरीबी एवं बेरोजगारी की समस्या, समाज में व्याप्त जातिवाद, सरकार की ढुलमुल नीति, असुरक्षा की भावना जैसे सामाजिक सरोकार के मुद्दों पर विचारात्मक रुप अपनाकर नक्सलवादी भारत के बहुत बड़े भू-भाग को अपने प्रभाव क्षेत्र में समेट लिये, जिसमें सामाजिक सम्बन्धों की जडें हिल गयी। नक्सलवादी हिंसा फैलाने, पुल उडानें, जेल तथा सरकारी प्रतिष्ठानों पर हमला करने और पुलिस पर हमला करने जैसे मामलों में समक्ष हुए है।[3]

शुरुआती दौर में नक्सली आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य भूमिहीन गरीब किसानों की समस्याओं को दूर करना तथा उनके समर्थन से स्थानीय स्तर पर बड़े-बड़े भू-स्वामियों का विरोध करना था, लेकिन बाद के दिनो में उन पर चीन की हिंसक विचाराधारा का प्रभाव पड़ा और उन्होंने रक्तपात करना शुरु कर दिया। इन्होंने अपने आंदोलन में किसानों मजदूरों तथा जनजातीय लोगों को सम्मिलित कर अपना आधार मजबूत किया सरकार ने जब भी इनकी नीतियों का दमन करने के लिए प्रयास किया तो कोई बड़ी सफलता हासिल नहीं कर पाई, बल्कि इनका संगठन और भी मजबूत हुआ। आज देखने से यह लगता है कि यह अलगाववाद और आतंकवाद से भी बड़ी समस्या बन चुकी हैं। अगर इसमे सख्ती के साथ नहीं निपटा गया तो नक्सलियों का लक्ष्य "2050 तक दिल्ली घेरी लेबों" सच साबित हो सकता है।[4]

नक्सली आतंवादी के दो आयाम प्रत्यक्ष एवं प्रछन्न है। प्रत्यक्ष आयाम में हिंसा अराजकता और व्यवस्था भंजन जैसे तत्त्व विद्यमान रहते है। प्रछन्न आयाम के सम्पूर्ण कार्यक्रम को रणनीति के रुप में देखा जाता है। इसे ध्यानाकर्षण का एक अनन्य मार्ग माना जाता है। नक्सली आतंकवाद का प्रत्यक्ष आयाम मात्र मुखौटा है। उसका प्रछन्न आयाम इस आंदोलन का यथार्थ है। नक्सलवाद का सबसे चिन्ताजनक पहलू यह है कि जिन कारणों से देश में नक्सलवाद को बढ़ावा मिला था वे सभी कारण व्यवस्था में आज भी मौजूद है और सरकार इसकी अनदेखी कर रही है। वैश्वीकरण और उदारीकरण के फलस्वरुप आज जहाँ एक तरफ अरबपतियों की संख्या में वृद्धि हो रही है, वही दूसरी तरफ गरीब किसानों की संख्या में वृद्धि हो रही है और किसान आत्मदाह करने को मजबूर है। सरकारी आंकड़ों के मायाजाल में बेशक गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों की संख्या में कमी आई है किन्तु आँकड़ों से न तो किसी का पेट भरता है और न तन ढकता है।[5]

भारत आज आंतरिक अशांति के दौर से गुजर रहा है। आज नक्सलवाद का झारखण्ड, बिहार, उत्तरप्रदेश, पश्चिमी बंगाल, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, उड़ीसा, कर्नाटक, केरल तथा उत्तरांचल आदि स्थानों पर असर रहा है। नक्सलियों ने 27 अक्टूबर, 2009 को पश्चिम बंगाल राज्य के मिदनापुर जिले के बंसला नामक स्थान पर दिल्ली आ रही राजस्थानी एक्सप्रेस के यात्रियों का बंधक बना लिया। अपने इस दुस्साहसिक कृत्य से उन्होंने कानून व्यवस्था को ऐसी चुनौती दी उसकी मिसाल मिलना मुश्किल है। 28 मई, 2010 को हावड़ा से मुबई जा रही ज्ञानेश्वरी एक्सप्रेस ट्रेन जैसे ही खाशामोली स्टेशन को पार की, वैसे ही नक्सलवादियों ने रेलवे ट्रैक उड़ा दिया और एक्सप्रेस ट्रेन मालगाड़ी से टकरा गई जिसमें लगभग 150 लोगों की मृत्यु हो गयी।

नक्सल प्रभावित राज्यों में ये नक्सली खूनी खेल खेल रहे हैं जिसकी कल्पना करना भी कठिन होगा और इसका सबसे घातक पक्ष यह है कि यह अपने आपसी सम्पर्क, सहयोग व सूचना द्वारा राज्य मशीनरी को बिल्कुल अस्तित्वहीन बना देते हैं। छत्तीसगढ़ व झारखण्ड में नक्सली हमलों द्वारा जितनी हत्यायें की गई उसकी संख्या जम्मू व कश्मीर में उग्रवादियों द्वारा की गई हत्याओं से कहीं अधिक है। राज्य के दंतेवाड़ा जिले के रानी बोदली में पुलिस शिविर पर हमला कर जिस तरह से 55 जवानों, जिसमें विशेष पुलिस बल के 39 लोग भी शामिल थे, उनको मौत के घाट उतार दिया। 17 जुलाई, 2006 को नक्सली हमले द्वारा दंतेवाड़ा के राहत शिविर को निशाना बनाया गया, जिसमें 26 लोगों की मौत तथा 15 लोग बुरी तरह से घायल हुए। लगभग 300 घरों में आग लगाई, महिला पुलिस अधिकारी सहित 23 लागों का अपहरण तथा 250 लोग लापता हो गए। नक्सलियों की धमकी के डर से राहत शिविर में लगभग 5000 लोग रह रहे थे।[6]

नक्सलवादी आंदोलन समकालीन भारतीय समाज में जिस तरह तेजी से अपना विस्तार कर रहा है और अपनी समानान्तर सरकार स्थापित करने की दिशा में प्रयत्नशील है उसे देखते हुए सरकार एवं समाज को इस पर अंकुश लगाने के लिए गंभीर प्रयास करने होंगे। लेकिन देखा जाए तो हमारी सरकार भी विफल साबित हो रही हैं। छत्तीसगढ़ राज्य में सुकमा के जिलाधिकारी एलेक्स पाल मेनन को नक्सलियों नें 21 अप्रैल 2012 को अपहरण कर लिया एवं उनके दो सुरक्षाकर्मियों को भी गोली मार दी जिसकी मौके पर ही मृत्यु हो गयी। जिलाधिकारी उस समय ग्राम मांझीपारा में ग्राम सुराज अभियान के दौरान चल रही किसान सभा में ग्रामीणों से चर्चा कर लौटने की तैयारी में थे। प्रदेश में 11 साल के इतिहास में किसी अधिकारी या नेता के अपहरण का संभवतः यह पहला मामला है। यह सच है कि पूरा प्रदेश माओवादी हिंसा के शिकार है। इस घटना से एक बार फिर साबित हो गया है कि प्रदेश का खुफिया तंत्र कितना लाचार है।[7]

देश की आंतरिक सुरक्षा से निपटने के लिए सरकार ने नई रणनीति बनाई है इसके तहत् नक्सलवादियों के खिलाफ अभियान की कमान राज्य पुलिस संभालेंगी और केन्द्रीय पुलिस यहाँ पर सहायक का कार्य करेगी। भावी अभियानों के लिए विशेष कमांडो दस्ते के 70 हजार अर्द्ध सैनिक बल तैनात किये गये हैं तथा नक्सल विरोध अभियानों के लिए लगभग एक अरब रुपये के वित्त का प्रावधान किया गया है। नक्सल विरोध अभियानों में ऑपरेशन ग्रे डॉड्स (आन्ध्र प्रदेश), ऑपरेशन सलवा जुडूम (आन्ध्र प्रदेश) ऑपरेशन सलवा जुडूम (छत्तीसगढ़), ऑपरेशन कोबरा (उड़ीसा) ऑपरेशन हॉक (झारखण्ड) ऑपरेशन ग्रीन हंट तथा एकीकृत कमान का गठन मुख्य है। नक्सल विरोधी ऑपरेशन के लिए 20 से 35 एम आई-17 हैलीकॉप्टर मुहैया करायें जायेंगे। एयरफोर्स द्वारा नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में सुरक्षा बलों एवं घायलों को एक जगह से दूसरे जगह लाने ले जाने में इनका इस्तेमाल होगा। गृह मंत्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान में नक्सली हिंसा में 20,000 से अधिक हथियार बंद कार्यकर्ता तथा 50,000 नियमति कार्यकर्ता और उसके पीछे लाखों समर्थकों की संख्या कार्यरत हैं। इसलिए सरकार के सामने एक गंभीर चुनौती है कि इससे कैसे निपटा जाए।[8] आज नक्सलवाद की समस्या बहुआयामी समस्या है। इसके समाधान के लिए योजनाबद्ध तरीके से हर स्तर पर लड़ाई लड़नी होगी।

इस संदर्भ में निम्नलिखित तथ्यों की तरह ध्यान देने की आवश्यकता है :

- नक्सलियों को अपनी लड़ाई लोकतंत्रात्मक ढ़ग से लड़नी होगी और अगर ये अपनी लड़ाई संविधान के दायरे में रहकर लड़ेंगे तो अल्पमत को बहुमत में बदलकर गरीबों की किस्मत बदल सकते हैं।[9]
- हमारी योजनाएँ कागज पर कितनी ही अच्छी बनी हो इनके क्रियान्वयन में बहुत कमी हैं आज स्वतन्त्रता के साठ वर्ष बाद भी हमारी एक चौथाई से ज्यादा आबादी गरीब हैं। विकास हुआ है, जीडीपी बढ़ी है, परन्तु विकास का लाभ अभी सभी वर्गो को उनकी आवश्यकतानुसार नहीं मिला हैं। जन-जातियों के साथ सौतेला व्यवहार हुआ हैं। भूमि संबंधी सुधार जो देश में होनें चाहिए थे व आशिंक रुप सें ही हुए और प्रदेश सरकार इस दिशा में उदासीन है। सरकार को इन सभी मुद्दों पर गंभीरता पूर्वक विचार चाहिए।[10]
- सशस्त्र कार्यवाई के बाद यदि सरकार अपने पुराने ढर्रे पर फिर से चलने लगती है तो नक्सलवाद पुनः उभरकर आयेगा और उसका स्वरुप वर्तमान से भी ज्यादा भंयकर होगा। देश में बहुत से ऐसे क्षेत्र है जहाँ प्रशासकीय व्यवस्था एकदम लचर है। छत्तीसगढ के नारायणपुर जनपद में अबुझमाड. चार हजार वर्ग किमी का एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ सरकारी तंत्र आज भी नहीं पहुँच पाया है।
- नक्सलवाद की चुनौती देश में व्याप्त सामाजिक-आर्थिक असमानता और असन्तुलित नीतियों के कारण है। ऐसे में सरकार को विकास की नवीन योजनाओं को ईमानदारीपूर्वक लागू करना चाहिए।
- आज अहिंसा के विचार की पराजय देश को मँहगी पड़ रही है। आंतरिक युद्ध से बचना है तो उन्हें जीवित करना होगा। आज राजनीतिक और अतिवादी बुद्धिजीवी नहीं गांधी, नेहरु, लोहिया अम्बेडकर और उनके जैसे अन्य मध्यमार्गी विचार ही हिंसा की बढती संस्कृति और आंतरिक युद्ध से भारत को बचाया जा सकता है।[11]

- नक्सलियों के खिलाफ सख्ती बरतना इसलिए आवश्यक है क्योंकि उन्हें लोकतांत्रिक तौर-तरीकों में यकीन नही। आज देश के एक बड़े हिस्से में मनमानी करने में लगे हुए है और आदिवासी इनका साथ देने के लिए विवश है, क्योकि वहाँ सरकार का कोई आधिपत्य नहीं रह गया है।[12]
- नक्सलवादियों के खिलाफ जंग में जीत हासिल करने के लिए सुरक्षा बलों के ढांचे में आमूल-चूल परिवर्तन आवश्यक है। आंतरिक सुरक्षा पर सतत् पुनर्विचार एन.एस.जी.को करना चाहिए जबकि इसका क्रियान्वयन गृह मंत्रालय के हाथ में होना चाहिए।
- राजनीतिक क्षेत्र में हमें ढुलमुल नीति का परित्याग करना होगा तथा हमारे राजनेताओं को वोट बैंक की ओछी राजनीति को त्यागकर कुछ कड़े फैसले करने होंगे। नक्सलियों के खिलाफ लड़ाई में दृढ-इच्छाशक्ति और एकता की आवश्यकता है।[13]
- आदिवासी बुनियादी तौर पर विकास की कमी और भ्रष्टाचार से त्रस्त है। दरअसल वे खुद को सरकार की उपेक्षा और माओवादियों की बंदूक के बीच फँसा पाते है। आदिवासी अपने उस पुराने जीवन की ओर लौटना चाहते है, क्योंकि जंगल उन्हें उनकी आवश्यता की हर चीज सुलभ कराते थे। जल, जमीन और जंगल की उदारता वस्तुतः यही उनकी मांग है। सरकार को इन मुद्दों पर भी ध्यान देना होगा।[14]
- सत्ता प्रतिष्ठान की जिम्मेदारी है कि वह ऐसी परिस्थिति का निर्माण करें कि गरीब आदिवासी किसान नक्सलियों के प्रभाव में न आ पाए। नक्सलवाद के पनपने में मूल रुप से सत्ता प्रतिष्ठान ही जिम्मेदार है।[15]
- नक्सलियों के भय के कारण जो भी अधिकारी विकास कार्य नहीं कर पा रहे है उन्हें यथोचित सुरक्षा उपलब्ध कराई जाए ताकि वे अपना कार्य कर सके तथा साथ ही साथ ऐसे नक्सली जिन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया है उन्हे उचित पुनर्वास, शिक्षा व रोजगार की व्यवस्था कराया जाए ताकि वे भी एक अच्छे नागरिक की तरह जीवन जी सके।

मौजूदा व्यवस्था से बहुत से भारतीय खुश नहीं है। इसकी वजह से अनेक असमानताएँ उभरी है और बहुत से लोग हाशिये पर आ गए है। नौकरशाही की भ्रष्टाचार और राजनीतिक संलिप्तता भी स्पष्ट है। यह एक घिसी -पीटी बात लग रही है, किंतु इससे स्थिति साफ ही हो जाती है कि अपराध का राजनीतिकरण हो गया है और राजनीति का अपराधीकरण। आज देश के समाने सवाल है कि इस प्रणाली को बदला कैसे जाए ?[16] क्या बंदूक के बल पर या फिर मतदान के जरिए ? अब जबकि नक्सलियों ने हत्याओं का दौर शुरु कर दिया है, यह प्रश्न और भी प्रासंगिक हो गया है।

नक्सलवादी इस बारे में चिंतन और आत्मनिरीक्षण कर सकते हैं कि उनकी सशस्त्र क्रांति कैसे एक विवेकशून्य हिंसा का रुप लेती जा रही है। इन्हें गांधी और भगत सिंह के विचारों से सबक लेना चाहिए। नक्सली भले ही देश के पिछड़े क्षेत्रों मे विकास कार्य न होने की बात कर रहें हों लेकिन वास्तवविकता यह है कि अब वे खुद इसके विरोध हो गये हैं। दूसरी तरफ सरकार की भी जिम्मेदारी है कि वह नक्सलवाद की समाप्ति के अभियान के पहले इसके उदय के मूल कारणों की पहचान अवश्य करें। बगैर सामाजिक-आर्थिक विकास तथा समन्वित उपायों को अपनाएँ नक्सलवाद को समाप्त करना आसान न होगा। सशक्त नक्सलियों के पनपने से हमारी आंतरिक सुरक्षा और आर्थिक विकास के समाने चुनौती उठ खड़ी हुई है। घरेलू राजनीति में भी इनका दखल बढ़ रहा है। ऐसे में आंतरिक सुरक्षा का प्रबंधन बहुत ही कुशलता से करने की जरुरत उत्पन्न हुई है इस उभरते खतरे के मद्देनजर केन्द्र और राज्य सरकारों को आंतरिक सुरक्षा प्रबन्ध पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए।[17]

वास्तव में, प्रायोजित या सीमापार आतंकवाद की भाँति नक्सली हिंसा कानून-व्यवस्था की समस्या नहीं है बल्कि इसे सामाजिक-आर्थिक समस्या के रुप में सुलझाने की जरुरत है क्योंकि जब तक आर्थिक विषताएँ दूर नहीं होगी, ये नक्सलवादी आतंरिक अशांति एंव अस्थिरता उत्पन्न करते रहेगें। भारत देश के निर्धनतम लोग नेपाल से सटे बिहार की सीमा से लेकर आंध्रप्रदेश के रायल सीमा तक की नक्सल प्रभावित पट्टी में सकेन्द्रित है और जब तक इनकी

समस्याओं और शिकायतों का त्वरित समाधान नहीं होगा इनका असंतोष एवं आक्रोश नक्सलियों को सहयोग व समर्थन देता रहेगा। इसलिये नक्सलवाद की समाप्ति हेंतु चलाये जाने वाले किसी भी अभियान के पूर्व निम्न बिंदुओं पर विचार-विमर्श भी आवश्यक है।

- नक्सलवाद की उत्पति के मूल कारक तत्व
- नक्सलवाद का उद्देश्य विस्तार विषेताएँ एवं कार्यविधि
- नक्सलवादियों का अन्य उग्रवादी-आतंकवादी संगठनों एवं प्रयोजकों के साथ सम्बध
- नक्सलवादी हिंसा का राष्ट्रीय हितों व आतंरिक सुरक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव के विभिन्न स्वरुप
- नक्सलवादी समस्या का प्रस्तावित समाधान

तकनीकी व गैर-तकनीकी नक्सली समस्या की गंभीरता पर विचार करने और इससे निपटने की कार्य योजना बनाने के सम्बन्ध में बुलाई गई राज्यों को मुख्यमंत्रियों की बैठक के तत्काल बाद अप्रैल 2006 में पूर्व प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने नक्सलवादी खतरे को देश में व्याप्त अब तक की सबसे बड़ी आंतरिक सुरक्षा की चुनौती बताया था। अपनें खूनी तरीकों से राजनेताओं, पुलिस-प्रशासन तथा सामान्य जनता का संहार करके किस समानता व सामाजिक न्याय की लड़ाई ये नक्सली लड़ रहे है; ये तो समय ही बतायेगा किंतु आज भारत में इनकी जड़ें बेहद गहरी हो चुकी है। भारत के 15 राज्यों के 170 जिलों में नक्सलवादियों का प्रसार हो चुका है। वर्तमान में छत्तीसगढ़ नक्सलवाद का प्रमुख गढ़ बन कर उभरा हैं केन्द्रीय गृहमंत्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार, यदि नक्सलवादियों के ठिकानो को नेस्तनाबूद नहीं किया गया तो ये नक्सली कुछ वर्षो में छत्तीसगढ़ की भूमि का 60 प्रतिशत भाग अपने संजाल में पकड़ लेंगे। फिलहाल यह कहना कठिन है कि केन्द्र व राज्य सरकारें नक्सलवाद से निपटने के लिए किसी रणनीति में कार्य कर रही है या नहीं। यद्यपि इस विकट आंतरिक सुरक्षा चुनौती से निजात पाने के लिये केन्द्र सरकार ने नई द्विस्तरीय नीति घोषित की थी जिसमें एक तरफ नक्सलवाद का खात्मा और दूसरी तरफ विकास को बढ़ावा देने की बात कही गई थी जिसके अन्तर्गत चालीस हजार अर्द्धसैनिक बलों की भर्ती और सात हजार तीन सौ करोड़ के पैकेज का प्रावधान था। वर्ष 2011 के आम बजट में नक्सल प्रभावित 60 जिलों के लिए तीस-तीस करोड़ की मदद की घोषणा की गई जो पिछले वर्ष से 5 करोड़ अधिक है। मगर क्या इससे स्थितियों में सुधार आ जायेगा? इनकी संभावना फिलहाल नजर नहीं आती।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में भारत की सबसे अहम् चिंता आतंरिक सुरक्षा है। केन्द्र एवं राज्यों को मिलकर संयुक्त रूप से इन समस्याओं का सामाधान खोजना चाहिए। देश के आतंरिक सुरक्षा की जटिल समस्याओं एवं खतरे के एक वृहद् रुप से रु-ब-रु है। इनमें से प्रत्येक के साथ अलग अलग तरीकों से निपटने की जरुरत है। यही नहीं इसके लिए केन्द्र और राज्यों के बीच नजदीकी सहयोग की आवश्यकता है क्योंकि ये समस्याऐं किसी राज्य विशेष तक सीमित नहीं रही वरन् विभिन्न राज्यों को अपनी चपेट में ले लिया है। भारत जैसे प्रजातान्त्रिक व संघीय व्यवस्था में जहाँ विधि व्यवस्था राज्य का विषय है, समन्वित रुप से कार्य करना आसान नहीं है फिर भी हमें इस स्थिति से निपटने के रास्ते व तरीकें खोजने होंगे और अतिथि के कुछ कार्यकलापों पर पुनः विचार करना होगा। जो भी प्रयास किये जाये वे बहुत ही गम्भीरता व सहानुभूति पूर्ण होने चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अरुण कुमार दीक्षित व पकज कुमार वर्मा, ''नक्सलवादः मुद्दें, चुनौतियाँ एव विकल्प'', सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2014, पृ. 12-13*
2. *अजय कुमार सिन्हा, अनिल कुमार सिन्हा, ''नक्सलवाद एव भारत की आंतरिक सुरक्षा'', राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2013, पृ. 73-78*
3. *संपादकीय डी. एन. सिह, ''राष्ट्रीय सुरक्षा,'' लोकप्रिय प्रकाशन मेरठ, 2008, पृ. 14*
4. *संपादकीय ''सेना के पास है नक्सलियो की दवा'', राष्ट्रीय सहारा, 22 मई, 2010, पृ. 6*
5. *दिलीप मण्डला, राष्ट्रीय सहारा, गोरखपुर, 17 मार्च, 2007*
6. *संजय कुमार (सम्पादकीय) ''भारत की आन्तरिक सुरक्षा चुनौतियाँ'' 2010, पृ. 2*
7. *पत्रिका, बिलासपुर सस्करण, 22 अप्रैल, 2012*
8. *संजय कुमार (सम्पादक), ''भारत की आन्तरिक सुरक्षा चुनौतियाँ'', सनराईज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2011, पृ. 214*
9. *आशुतोष, ''सर कलम करने की विचारधारा'', हिन्दुस्थान, वाराणसी, 2 नवबर, 2009, पृ. 14*

10. प्रकाश सिंह, ''नक्सली हिंसा की चुनौती'', दैनिक जागरण, वाराणसी, 5 नवबर, 2009, पृ. 4
11. अरुण कुमार त्रिपाटी ''युद्ध के नगाड़ों के बीच शांति की तूती'', हिन्दुस्तान, वाराणसी, 10 नवबर, 2009, पृ. 6
12. संजय गुप्ता, ''राष्ट्रद्रोह का मुकाबला'' दैनिक जागरण, वाराणसी, 11 अप्रैल, 2010, पृ. 13
13. बलबीर पुंज, ''राजनीतिक एकता जरुरी'', दैनिक जागरण, वाराणसी, 13 अप्रैल, 2010, पृ. 14
14. कुलदीप नैयर, ''माओवादी और त्रस्त आदिवासी'', दैनिक जागरण, वाराणसी, 17 मार्च, 2010, पृ. 11
15. संपादकीय निरंजन कुमार, ''नक्सलवाद की जड़े'', दैनिक जागरण, वाराणसी, 16 अप्रैल, 2010, पृ. 12
16. कुलदीप नैयर, ''बन्दूक के बूते नही बदलेगी तस्वीर'', दैनिक जागरण, वाराणसी, 14 अप्रैल, 2010, पृ. 4
17. करीम अफसर, ''आन्तरिक सुरक्षा प्रबंधन जरुरी'' पत्रिका बिलासपुर, अप्रैल 2012

सुधा अरोड़ा के कथा साहित्य में परम्परा एवं आधुनिकता का द्वन्द्व

पूर्णिमारानी
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश: *बहुमुखी प्रतिभा संपन्न सुधा अरोड़ा हिन्दी की सुप्रसिद्ध कथाकार हैं। उनकी कहानियाँ आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य में मील का पत्थर साबित हुई हैं। मानवीय मूल्यों के आलोक में व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार और जीवन यथार्थ को अपनी कहानियों की कथावस्तु बनाकर उन्होंने भारतीय जीवन-मूल्यों के मूल तत्वों को उजागर किया है तो मानवीय व्यवहारों की पृष्ठभूमि का आधार ग्रहण करते हुए मूल्यों के सापेक्ष वर्तमान जीवन-संघर्षों का प्रभावी चित्रांकन भी उनकी कहानियों में सहज ही परिलक्षित होता है। साहित्यिक अवदान के सन्दर्भ में सुधा अरोड़ा की साहित्यिक चेतना जड़ न होकर मानवतावादी है। वे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की पक्षधर हैं तथा भारतीय समाज को उन गुणों से समन्वित करना चाहती हैं जो उसकी मानवता का उत्कर्ष करने वाले हों। इसी विचारधारा के अनुरूप उनके कथा साहित्य में कथानक, पात्र-योजना एवं संवाद की सृष्टि की गई है।*

संकेताक्षर : *मानवीय मूल्य, जीवन यथार्थ, मानवतावादी, स्वचेतना, परम्परागत संस्कार, अवमूल्यन, पीढ़ी-अंतराल, दायित्वबोध, द्वन्द्व, प्रतीयमान।*

सामान्य अर्थ में 'आधुनिकता' को 'समय' के सापेक्ष मान लिया जाता है, परन्तु अपने विशिष्ट, अर्थ में आधुनिक का अर्थ सर्वथा अलग है। इसकी पहली शर्त है – 'स्वचेतना'। इसके उदाहरण प्रायः ज्ञान के समस्त क्षेत्रों, यथा – काव्य , विज्ञान, इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि में मिलते हैं। यही वजह है कि अपनी इस स्वचेतन वृत्ति के कारण आधुनिकता भी प्रमुख चिंतना के लिए है, क्योंकि 'स्व' का सबसे अधिक सम्बन्ध वर्तमान से होता है। वर्तमान में चिंतना के माध्यम से ही आधुनिक व्यक्ति भविष्य को रुपायित करता है। हालाँकि, इसके दूसरे छोर पर रोमांटिसिज़्म है, जहाँ वर्तमान से बोझिल होकर और कभी-कभी उसके प्रति विद्रोह करके व्यक्ति अतीत में डूबना चाहता है इसलिए आधुनिक दृष्टि अनिवार्यतः बौद्धिक है। वैसे तो आधुनिकता का बोध समय-समय पर प्रत्येक युग में होता रहा है, परन्तु आधुनिकता से हम प्रायः उस चिंतना का अर्थ लेते हैं जो पुनर्जागरण काल में पाश्चात्य प्रभाव के कारण ग्राह्य हुआ है। प्रत्येक देश की अपनी सभ्यता, संस्कृति, मान्यताएँ व परम्पराएँ होती हैं और उन्हीं का अनुसरण कर विकास की ओर अग्रसर होता हुआ वह देश महान् बनता है और श्रेष्ठ कहलाता है। भारतीय परिदृश्य में युगीन परिस्थितियों व विदेशी आक्रान्ताओं के भारत आगमन के परिणामस्वरुप भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर तदनुरुप प्रभाव सहज ही परिलक्षित होता है। दरअसल परिस्थितियाँ बड़ी द्रुत गति से बदलती हैं। इस आलोक में स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में बदलाव सहज ही परिलक्षित होता है। वैसे तो अंग्रेज भारत से वर्ष 1947 में ही पलायन कर गए थे, किन्तु उनकी पाश्चात्य संस्कृतिजनित तथाकथित 'आधुनिकता' का प्रभाव आज भी भारतीय समाज में गहरे विद्यमान है। वर्तमान जीवन शैली व व्यवहार समकालीन जनजीवन की वास्तविकता है और कदाचित् इसे पूरी तरह से नियंत्रित कर पाना अथवा रोकना संभव भी नहीं है। तथाकथित 'आधुनिकीकरण व विकास' की इस अनवरत प्रक्रिया के फलस्वरुप प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन तो हुए, किन्तु संकल्पनाओं के अनुरुप व्यक्ति व समाज की 'वास्तविक' स्थिति में कोई उल्लेखनीय सुखद परिवर्तन नहीं हुआ

क्योंकि, आधुनिक भारतीय समाज में अशिक्षा, बेकारी, नारी-शोषण, भ्रष्टाचार, गरीबी आदि मुद्दों के कारण हमारी सामाजिक चेतना व व्यवस्था निरन्तर प्रभावित हुई है। उदाहरण के तौर पर जहाँ एक ओर वर्तमान युवा पीढ़ी परम्परागत संस्कारों की विरोधी प्रतीत होती है, वहीं दूसरी ओर पुरानी पीढ़ी का मानना है कि चूँकि परम्पराओं के प्रवाह में से ही वर्तमान आकार लेता है, इसलिए परम्पराओं से कटकर वर्तमान की पहचान संभव नहीं है। शायद यही कारण है कि कहीं परम्पराओं का निर्वाह होता है तो कहीं उनका विरोध। समर्थन और विरोध के इस द्वन्द्व से साहित्य जगत् भी प्रभावित हुआ है। इस आधार पर हिन्दी साहित्य जगत् में दो वर्ग दिखाई देते हैं। हिन्दी साहित्य का एक वर्ग वह है जो आदर्शों और परम्पराओं के निर्वहन में ही मानव जीवन की सार्थकता स्वीकार करता है तथा उन्हीं को मानवीय जीवन-मूल्यों के रुप में प्रतिरुपायित भी करता है। दूसरी ओर साहित्यकारों का एक वर्ग ऐसा भी है जो जड़ परम्पराओं व मान्यताओं के विरोध में पूरी तत्परता से खड़ा है और परम्पराओं का अनुसरण करने वालों को लकीर का फकीर मानता है। इतना ही नहीं, उनकी यह प्रबल धारणा है कि समाज की वैचारिक रुढ़ियाँ व परम्पराएँ व्यक्ति समाज तथा देश की उन्नति में बाधक हैं। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार, "जीर्ण पुरातन का त्याग, संशोधन तथा पुनर्मूल्यांकन की पद्धति से नव-नव रुपों के विकास की आकांक्षा, वैचित्र्य और नवीनता के प्रति आकर्षण आधुनिकता के सहज अंग हैं। अतः रुढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह और नवजीवन के विकास के लिए प्रयोग के प्रति आग्रह यहाँ अनिवार्य है"।[1] हालाँकि, परम्परावादी व आधुनिकवेत्ताओं के मध्य एक तीसरा वर्ग उन साहित्यकारों का भी है जो नए व पुराने के बीच संतुलन का प्रयास करते हैं।

प्रस्तुति एवं विश्लेषण

हिन्दी साहित्य के परम्परावादी व आधुनिकवेत्ताओं के मध्य के तीसरे वर्ग के साहित्यकारों, जो नए व पुराने के बीच संतुलन का प्रयास करते हैं, की परम्परा में सातवें दशक की प्रख्यात एवं चर्चित कथाकार सुधा अरोड़ा एक समन्वयवादी दृष्टिकोण से अभिप्रेरित हैं। जहाँ एक ओर सुधा अरोड़ा परम्परागत संस्कार और आधुनिक जीवन-मूल्यों के द्वन्द्व को अपने कथा साहित्य में बड़ी निष्पक्षता से अभिव्यक्त करती हैं तो वहीं दूसरी ओर उनका यह भी मानना है कि यह आवश्यक नहीं कि हम परम्परागत संस्कारों या आधुनिक जीवन-मूल्यों के पक्ष में खड़े हों, अपितु अनिवार्य यह है कि हम सच्चाई एवं यथार्थ की भावभूमि पर मजबूती से पैर जमाएँ।"... सुधा अरोड़ा की रचनाएँ शाश्वत मूल्यों के साथ-साथ समकालीन परिस्थिति से संवाद भी करती चलती हैं और अपने को निरन्तर बदलते समाज से जोड़े रखती हैं ... कुरुतियों और अवमूल्यन के खिलाफ बेबाक बयानी करती हुई, सच के समर्थन में अपनी आवाज बुलन्द करती हुई ....।"[2]

दरअसल परम्परागत संस्कार व आधुनिकता का द्वन्द्व यानी दो पीढ़ियों के बीच मूल्यों व मान्यताओं को लेकर सदैव मतभेद रहा है, परन्तु वर्तमान में यह भेद अधिक गहराया है। इसे पीढ़ियों का अन्तराल अर्थात् 'जेनरेशन गैप' कहना सर्वथा उचित होगा। ध्यातव्य है कि समकालीन भारतीय समाज के परम्परागत संस्कारों से मुक्त युवा पीढ़ी आज सामाजिक रीति-रिवाजों व रस्मों से मुक्तिपाने की लालसा में मूल परिवार व समाज से दूर होती जा रही है। इस परिप्रेक्ष्य में सुधा अरोड़ा की कहानी 'पति परमेश्वर' में जहाँ एक ओर परिवार में विवाह के अवसर पर परम्परागत रुप में रस्मों का निर्वाह किया जा रहा है तो वहीं दूसरी ओर इन संस्कारों के प्रति नकारात्मक रवैया रखने वाली नायिका का संवाद अत्यन्त उल्लेखनीय है - "फूलों का मंडप, झालरें, चारों कोनों में कलश, मंडप के ऊपर बना सफेद हंस। जाने क्यों परियों की कहानियाँ याद आयीं। लग रहा था, जमीन से ऊपर होकर कोई चीज देख रहे हैं - अयथार्थ ! आकाशी !"[3] विवाह संस्था जो एक पवित्र और अटूट बंधन का माध्यम है उसकी भूमि सूखे अकाल की भाँति चटकने लगी है। आधुनिक नारी को विवाह रुपी परम्परागत 'टेबूज' से बाहर निकलने की अदम्य लालसा है। अग्नि के समक्ष फेरे लेना उसके लिए व्यर्थ है। तभी तो सुधा अरोड़ा की कहानी 'पति परमेश्वर' की नायिका कहती है - "आग के चारों ओर सात फेरे लेने से मन नहीं बंध जाता।"[4]

चूँकि, आज का युवा वर्ग एकांकी जीवन जीना चाहता है, इसलिए अपने स्वतंत्र जीवन में उन्हें बाहरी हस्तक्षेप कदापि ग्राह्य नहीं है। इस आलोक में सुधा अरोड़ा की कहानी 'अविवाहित पृष्ठ' की बड़ी बहन परम्परागत संस्कारों का अनुसरण करती है, किन्तु छोटी बहन आधुनिकता की पर्याय है। बड़ी बहन के वैवाहिक जीवन के प्रति उसके मन में एक आक्रोश है, वह कहती है - "तुम्हें सत्रहवीं शताब्दी के पति और ससुराल वाले मिले हैं। न कहीं जाने देते हैं न कहीं आने। जरुरत पड़े तो तुम्हें बुरका भी पहना दें। .... तुम कैसे 'टोलरेट' करती हो इन सबको ?"[5]

दरअसल समय के परिवर्तन के साथ स्त्री हो या पुरुष दोनों की मानसिकता में बहुत बड़ा परिवर्तन आया है। ऐसे में सुधा अरोड़ा की कहानी 'स्वप्नजीवी' की नायिका मित्रा दी आधुनिक जीवन-मूल्यों को अपनाने वाली स्त्री है और परम्परागत संस्कारों वाली लड़कियों पर व्यंग्य करती हुई कहती है - "हिन्दुस्तानी लड़कियों के दिमाग ही मजबूत नहीं होते। हुंह एकनिष्ठ बनती है। अरे, पूछो भला, वह उधर विदेशी लड़की के साथ गुलछर्रे उड़ा रहा है, ये उसके नाम को रो रही है। जिसके साथ इतने महीने टेन्शन में काट दिये, उसके प्रति भावुकता ?"[6]

युग परिवर्तन के प्रवाह के साथ युवा पीढ़ी की मानसिकता में भी परिवर्तन आया है। जिस स्त्री को परम्परागत संस्कार सीता बनाने के पक्ष में थे वही स्त्री आज आदर्शवादी बनकर कष्ट सहन करने को कमजोरी मानती है। उदाहरण के लिए सुधा अरोड़ा के उपन्यास 'यहीं कहीं था घर' में सुजाता की शादी में एक परम्परागत गीत के माध्यम से वर्तमान स्त्री की मानसिकता को दर्शाया गया है -

"नी बेटी केहो जेहा वर लोडिये।
वे बाबुल वर मंगा सिरी राम,
कि छोटा देवर लछमन होवे।
वे बाबुल सस्स ताँ होवे मात कौसल्या,
सौहरा दशरथ होवे।।"[7]

इस महत्त्वपूर्ण परम्परागत गीत के माध्यम से विशाखा ने अपनी बहन सुजाता, जिसका विवाह हो रहा था, उससे विनोद किया - "बाप रे, दीदी, वर भगवान राम जैसा माँगोगी तो अग्नि परीक्षा देनी पड़ेगी और देवर लक्ष्मण जैसा हुआ तो लक्ष्मण रेखाएँ ही खींचता रहेगा तेरे चारों ओर, और सास माता कौसल्या जैसी हुई तो सौत के कहने पर तुझे और तेरे राम को चौदह साल वनवास दे देगी और एक कहाँ, सौतेली सासें भी तो होंगी....."[8] हास्य-विनोद से यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि पति चाहे पुरुषोत्तम राम ही क्यों न हो, आधुनिक नारी को वह स्वीकार नहीं।

आज की पीढ़ी ने विवाह को स्त्री के बंधन का मूल कारण मान लिया है और इसके विकल्प के रुप में 'लिव इन रिलेशनशिप' को चुना है। 'आज के जटिल समय में 'प्रेम : एक साक्षात्कार' में सुधा अरोड़ा का कथन है कि 'लिव इन रिलेशनशिप' एक बेहद संश्लिष्ट और जटिल स्वतंत्रता है। एक तरह से ये विवाह की प्रतिबद्धता, सन्नद्धता और दायित्वबोध का विलोम है। आज की पीढ़ी ने विवाह को स्त्री के लिए बंधन और गुलामी का दर्जा दिया, इसलिए बंधन से आजाद रहने के ख़याल से 'लिव इन रिलेशनशिप' का चुनाव किया गया, जहाँ वह एक साथी के साथ, एक ही छत के नीचे रहते हुए भी अपने को बंधन मुक्त समझे, लेकिन क्या ऐसा हो पाता है !"[9] उल्लेखनीय है कि आधुनिकता के रंगीन चश्मे को आँखों पर चढ़ाए आज का युवा परम्पराओं और मर्यादाओं के उज्ज्वल पक्ष को देखना ही नहीं चाहता, क्योंकि ये परम्पराएँ उन्हें बाध्यताएँ प्रतीत होती हैं। यही कारण है कि व्यक्ति परिवार व समाज से दूर होता जा रहा है।

भारतीय संस्कृति के अनुसार समाज में परिवार का महत्त्व अनादि काल से स्वीकार्य है। 'मातृ देवो भव', 'पितृ देवो भव' की भारतीय परम्परा हमें गौरवान्वित करती है, किन्तु सन् 1960 के बाद भारतीय समाज में मध्यमवर्गीय जीवन के स्वरुप में तेजी से परिवर्तन आया। संयुक्त परिवारों के अन्तर्गत आपसी सम्बन्धों में बदलाव विद्रूपता के साथ सामने आया। जीवन की व्यस्तता, अर्थकेन्द्रित दृष्टि तथा स्वतंत्र जीवन जीने की चाह के कारण परिवार की अवधारणा संकुचित होकर संयुक्त परिवार के स्थान पर मात्र पति-पत्नी और बच्चों में ही सिमट गई है। इस सन्दर्भ में सुधा अरोड़ा की कहानी 'युद्ध विराम' में पत्नी की मृत्यु के बाद पति अपने संयुक्त परिवार के विघटन की तत्कालीन स्थितियों का स्मरण करके कहता है - "घर इतना अपरिचित हो उठा था। धीरे-धीरे बेटे बड़े हुए, बहुएँ आईं, तो उनसे बड़े कमरे छिन गए ..... पत्नी ने तब भी बड़े संतोष के साथ इस कोने वाले कमरे में अपना सारा समान सजा लिया, जो कभी सर्वेंट्स क्वार्टर हुआ करता था।"[10]

समकालीन आधुनिक पीढ़ी में परिवारों में जन्म-मृत्यु के समय होने वाले परम्परागत संस्कारों के प्रति भी नकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो रहा है। सुधा अरोड़ा की 'युद्ध विराम' कहानी में माँ की मृत्यु पर उसके बेटे तेरह दिन के संस्कार नहीं करना चाहते थे। बड़ा बेटा पिता से कहता है - "आप तो खुद अंधविश्वासों का विरोध करते रहे हैं फिर तेरह दिनों के नियम-संस्कारों की क्या दकियानूसी दलीलों का पक्ष ले रहे हैं !"[11] बेटे के अनुसार तेरह दिनों के शोक के ढकोसले हेतु ऑफिस से तेरह दिनों की छुट्टियाँ लेना बेवकूफी है। वह दलील देता है - "उसे ऑफिस से सिर्फ दो दिन की छुट्टी मिली है, माँ के मरने पर कौन सा दफ्तर तेरह दिनों की छुट्टी देता है और अपनी पत्नी तथा बच्चों को लेकर हिल स्टेशन पर जाने की जो साल में एक महीने की छुट्टी मिलती है, उसके पन्द्रह दिन इस मातमपुर्सी में खर्च करना कितनी हास्यास्पद बात है।"[12]

माता-पिता की उपेक्षा करती युवा पीढ़ी में संवेदनहीनता बढ़ती जा रही है। उदाहरण के तौर पर 'युद्ध विराम' कहानी में इस संवेदनहीनता का सबसे घिनौना रुप उस समय उभर कर आता है जब बेटे अपनी माँ की मौत के पाँचवे दिन जश्न मना रहे थे। "शहर में 'इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल' चल रहा था।.... ऐसी फिल्में कौन रोज-रोज आती हैं और फिल्म न देखने से मरी हुई माँ तो लौट आती नहीं।"[13]

तथाकथित 'आधुनिकता' के नाम पर आज बच्चों का पालन-पोषण भी नए रुप में किया जाता है। संयुक्त परिवार से पृथक् युवा पीढ़ी परिवार तो बना रही है, किन्तु आरोपित पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित पालन-पोषण को ही प्राथमिकता देती है। इस सन्दर्भ में सुधा अरोड़ा की कहानी 'सुरक्षा का पाठ' का राघव अपनी विदेशी पत्नी स्टेला व दो बच्चों पॉल और जिनि के साथ भारत आता है। रात में राघव व उसकी पत्नी जिनि को झूले में डालकर अपने कमरे में सोने के लिए चले जाते हैं तो राघव की माँ के जिनि के प्रति चिन्तित होने पर स्टेला कहती है - "डोन्ट वरी, मॉम ! उसे अपने समय से फीड कर दिया है। अब सुबह से पहले कुछ नहीं देना है।"[14] किन्तु परम्परागत संस्कारों में ढली माँ रात में जिनि के रोने पर उसे अपने पास सुला लेती है। राघव माँ का विरोध करता हुआ कहता है - "माँ, प्लीज स्टॉप दिस नॉनसेन्स ! आप बच्चों को तीस साल पहले के झूले में नहीं झुला सकतीं। उन्हें इंडिपेंडेंट होना बचपन से ही सीखना है ... आप अपने तौर-तरीके, रीति-रिवाज भूल जाइए....।"[15] इस तरह जहाँ पहले बच्चों को आत्मीयता के साथ पाला जाता था, किन्तु अब आत्मनिर्भर बनाने के नाम पर संघर्ष के लिए उन्हें अकेला छोड़ दिया जाता है।

वैसे तो आज की युवा पीढ़ी परम्परागत रस्मों-रिवाजों के प्रति अपनी आस्था खो चुकी है फिर भी समकालीन परिवेश में आधी आबादी कहा जाने वाला स्त्रीवर्ग कहीं-न-कहीं पुरुषों की अपेक्षा मूल्यगत संस्कारों के प्रति अधिक ईमानदार है और अपने मन की तमाम कमजोरियों पर विजय प्राप्त कर वह मूल्यों की रक्षा करने का निरन्तर प्रयास करता है। हालाँकि, हमारा युवा वर्ग अतीत की बजाय वर्तमान में जीवन जीना चाहता है। अतः स्वाभाविक रुप से स्वतः ही द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है। जैसा कि सुधा अरोड़ा की कहानी 'करवाचौथी औरत' की नायिका सविता करवा चौथ का व्रत परम्परागत विधान के अनुसार करना चाहती है, किन्तु सविता के पति व युवा होती बेटियों की नजर में सविता के इस करवा चौथ के व्रत का कोई महत्त्व नहीं है। उनके लिए घर की पालतू कुतिया फ्लॉपी अधिक महत्त्वपूर्ण है। भारतीय संस्कारों में व्रत-पूजा विधान में शाकाहारी भोजन का विधान है, अतः फ्लॉपी को भी सविता ने शाकाहारी भोजन दिया। परन्तु, आधुनिक बेटियों ने यह देख नाक-भौं सिकोड़ लिया और सविता से बोलीं - "ममा, आप इसे घास-फूस खाने को क्यों देते हो ? हाऊ कैन शी ईट दिस रॉटन फूड ?"[16] क्योंकि, आधुनिक युवा परम्पराओं और सामाजिक मर्यादाओं की जटिलता से मुक्त होना चाहता है, इसलिए वह सामाजिक बदलाव की चाह रखता है तथा वैज्ञानिक व भौतिकतावादी उपलब्धियों का अपने जीवन में भरपूर उपयोग करना चाहता है, किन्तु समाज में परम्परा की नींव आस्था और विश्वास पर टिकी है और परम्परावादी व्यक्ति अपनी आस्था को टूटने नहीं देना चाहता। यही मूल वजह है कि दोनों के बीच निरन्तर एक द्वन्द्व बना रहता है।

लेकिन यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इस द्वन्द्व के लिए मात्र युवा पीढ़ी ही नहीं, अपितु परम्परावादी पीढ़ी भी बराबर जिम्मेदार है। जहाँ तक संस्कारों व आदर्शों की बात है वहाँ तक तो परम्परावादी पीढ़ी की मान्यताएँ ठीक हैं, किन्तु जब परम्परावादी पीढ़ी द्वारा अन्धविश्वास, कुरीतियाँ और रुढ़ियाँ युवा पीढ़ी पर बलात् थोपी जाएँ तब उनका विरोध और आक्रोश स्वाभाविक और उचित है। इस सन्दर्भ में डॉ. लक्ष्मीराय का कथन है - "जिसकी गति रुढ़िवादी और गतानुगतिक होती है और वे एक निर्धारित व्यवस्था के पक्षधर होते हैं, ऐसे पात्र स्थापित .... आदर्शों के परिपालन में ही अपने कार्य की इतिश्री मानते हैं। वे अपने वर्ग की प्रचलित मान्यताओं के मूर्त रुप होते हैं । किसी भी दशा में रुढ़ियों का तिरस्कार उन्हें अभिप्रेत नहीं होता है। ये पात्र बहुधा स्वार्थी, संकीर्ण विचार वाले, आत्मकेन्द्रित और कल्पनाविहीन पात्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं।"[17] सुधा अरोड़ा की कहानी 'तीसरी बेटी के नाम - ये ठंडे, सूखे, बेजान शब्द' में जब सुनयना की दादी के श्राद्ध के अवसर पर भोजन करने आये साधुओं के जत्थे में से एक गेरुएँ वस्त्रधारी ने सुनयना को जबरन पकड़ लिया तो सुनयना की माँ गुस्से से भड़क गई पर सुनयना की दादी ने उसे रोकते हुए कहा कि "लड़की की जात है, तमाशा मत कर ! आगे से घर में कोई साधू नहीं आएगा। इस बार इस हादसे को पी जा।"[18]

बुजुर्ग पीढ़ी कभी-कभी धर्म व जाति के नाम पर महत्त्वहीन कुरीतियों को थोपने का प्रयास करती है। इस

सन्दर्भ में सुधा अरोड़ा की कहानी 'जानकीनामा' उल्लेखनीय है जिसमें करुणा अपने कस्बे से ड्राइवर अनवर की बेटी जुलेखा को बम्बई ले आती है। पहले तो धर्म की आड़ लेकर उसके नाम पर विरोध किया जाता है। करुणा की सास कहती है – "यह जुलेखा नाम तो हमारी जबान पर ना चढ़े। इसका नाम बदलकर सीता-गीता कुछ भी रख दो।"[19] साथ ही, "पड़ोसन गुप्ताइन चाची को जुलेखा के रसोई में काम करने से आपत्ति है, क्योंकि वह एक मुस्लिम लड़की है। वह फिकरा कसती है, "मुसले की बेटी से कोई रसोई का काम करवाता है भला !"[20]

चूँकि, परम्परावादी अपनी मान्यताओं के प्रति कट्टरता से निष्ठावान होते हैं, इसलिए चाहे युग बदले या परिस्थितियाँ, उनके कायदे-कानून नहीं बदलते। सुधा अरोड़ा की कहानी 'काला शुक्रवार' में ड्राइवर मीराज के नाना सरदार थे और उनका मानना था कि सरदार का बाल काटना सिक्ख धर्म का अपमान है। वे कहते हैं – "बालों में कैंची लगा लें, ये तो मजहब की तौहीन है।"[21]

कुछ परम्पराएँ तो समाज में इतनी गहराई तक जड़ें जमा चुकी हैं कि वे विकृत रुढ़ियों के रुप में ढल चुकी हैं और आज की पीढ़ी भी कहीं-न-कहीं उनकी जकड़ में है। वैसे तो हम परम्पराओं को कोसते रहते हैं किन्तु व्यवहार में कभी कभी उसी परम्परा की लीक को पकड़कर चलने को मजबूर हो जाते हैं। इन्हीं विकृत रुढ़ियों में से एक है – 'बेटियों से वंश नहीं चलता, बेटों से ही चलता है'। सुधा अरोड़ा अपनी कहानी 'बेटियाँ बड़ी नियामत हैं' में नायिका के माध्यम से व्यंग्य करती हैं – "बेटियों से वंश नहीं बढ़ता, बेटियाँ पराया धन हैं, बेटियों को दान-दहेज देना पड़ता है, बेटियाँ गले में पड़ा पत्थर है इसलिए राजस्थान, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश के कई कस्बों की औरतों के लिए बेटियों का होना बच्चे होने में शुमार नहीं होता।"[22]

आधुनिक जीवन-मूल्यों के सापेक्ष एक ओर भारतीय समाज में चल रही प्राचीन परम्पराएँ हैं तो दूसरी ओर पाश्चात्य प्रभाव से ग्रहण किये गए आधुनिक विचार, भाव व तर्क की संस्कृति का यथार्थ। बुजुर्ग पीढ़ी अपने प्राचीन संस्कार व मान्यताओं को त्यागना नहीं चाहती और युवा पीढ़ी को ये संस्कार व मान्यताएँ दकियानूसी लगते हैं। आज के बदलते परिवेश में इन दोनों में सामंजस्य होना अति आवश्यक है, क्योंकि हमारा वर्तमान समाज मानवीय मूल्यों का ह्रास, संयुक्त परिवारों का विघटन, व्यक्तिवादिता, रिश्तों की टूटन, अजनबीपन, अकेलेपन की मानसिकता, मिथ्या प्रदर्शन की भावना, संत्रास व असुरक्षा बोध जैसी गंभीर समस्याओं से जूझ रहा है। इस विकट समय में परम्परागत संस्कार व आधुनिक जीवन-मूल्यों में संतुलन अपेक्षित ही नहीं, आवश्यक भी हो जाता है। डॉ. उर्मिला मिश्र के शब्दों में – "आधुनिकता, परम्परा के प्रतीयमान अर्थों को स्पर्श करती है, उसे माँजती है, खरोंचती है और परिमार्जित कर उसमें से चमत्कारिता तथा नूतन अर्थवत्ता को जन्म देती है।"[23]

निष्कर्ष

समवेततः सातवें दशक की संवेदनशील कथाकार सुधा अरोड़ा अपनी रचनाओं के माध्यम से न केवल लुप्त होती प्राचीन भारतीय संस्कृति व परम्परागत संस्कारों के रक्षार्थ प्रयास कर रही हैं प्रत्युत निरन्तर ह्रासोन्मुख आधुनिक जीवन-मूल्यों का यथार्थ अंकन कर युवा पीढ़ी को राह भी दिखा रही हैं। परिवर्तन तो सृष्टि का नियम है जिसे रोका नहीं जा सकता। आवश्यकता सिर्फ इस बात की है कि हम द्वन्द्वों को भुलाकर परम्परागत संस्कारों व आधुनिक जीवन-मूल्यों को संतुलित एवं सकारात्मक रुप में ग्रहण कर समाज व देश के विकास हेतु अग्रसर हों। 'बुत जब बोलते हैं' कहानी संग्रह की भूमिका 'मुश्किल होते जा रहे समय में' के अंतर्गत सुधा अरोड़ा का यह कथन काफी महत्त्वपूर्ण है – "चुप्पियों और बोलने की कई पारियों में फैली इन कहानियों को देखकर लगता है, साहित्य के नितान्त अलहदा दौर से हम कैसे अपने समय के सवालों और अपने समय की भाषा को आत्मसात् करते हुए, अपने ही बीते हुए से खुद को अलगाकर एक अलहदा साँचे में इतनी आसानी से ढाल लेते हैं इस सूक्ष्म कायान्तरण का कोई प्रकट अहसास तक नहीं होता। शायद निरन्तर बदलता समय और निरन्तर ढहता-बनता समाज अपने बहाव में आपके जाने बगैर भी आपको आगे ठेल देता है, पीछे रुके रहने का मौका नहीं देता.....। रुक जाना एक तरह से चुक जाने का पर्याय-सा लगता है।"[24]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 *शुक्ल, राजनारायण, आधुनिकता बोध एवं मोहन राकेश का कथासाहित्य, पृ.17, बी. आर. पब्लिकेशिंग कार्पोरेशन, दिल्ली.*

2 *अरोड़ा, सुधा, बुत जब बोलते हैं (कहानी संग्रह), आवरण पृष्ठ, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली.*

3 अरोड़ा, सुधा, युद्ध-विराम (कहानी संग्रह), पृ.74, पराग प्रकाशन, दिल्ली.

4 वही, पृ.75.

5 अरोड़ा, सुधा, बगैर तराशे हुए (कहानी संग्रह), पृ.76, इकाई प्रकाशन, इलाहाबाद.

6 अरोड़ा, सुधा, कांसे का गिलास (कहानी संग्रह), पृ.120, आधार प्रकाशन, पंचकुला.

7 अरोड़ा, सुधा, यहीं कहीं था घर (उपन्यास), पृ.103, सामयिक बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली.

8 वही, पृ.103.

9 अरोड़ा, सुधा, बुत जब बोलते हैं (कहानी संग्रह), पृ.167, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली.

10 अरोड़ा, सुधा, 21 श्रेष्ठ कहानियाँ (कहानी संग्रह), पृ. 36, डायमंड बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली.

11 वही, पृ.33.

12 वही, पृ.34.

13 वही, पृ.40.

14 वही, पृ.186.

15 वही, पृ.187.

16 वही, पृ.182.

17 सी.लाइ, प्रदीप, मन्नू भण्डारी की कहानियों के प्रमुख पात्र, पृ.113.

18 अरोड़ा, सुधा, 21 श्रेष्ठ कहानियाँ (कहानी संग्रह), पृ. 190, डायमंड बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली.

19 अरोड़ा, सुधा, रहोगी तुम वही (कहानी संग्रह), पृ.110, रेमाधव पब्लिकेशन्स प्रा.लि., नोएडा.

20 वही, पृ.111.

21 अरोड़ा, सुधा, काला शुक्रवार (कहानी संग्रह), पृ.15, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.

22 अरोड़ा, सुधा, 21 श्रेष्ठ कहानियाँ (कहानी संग्रह), पृ. 188, डायमंड बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली.

23 मिश्र, उर्मिला, आधुनिकता और मोहन राकेश, पृ.6, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी.

24 अरोड़ा, सुधा, बुत जब बोलते हैं (कहानी संग्रह), पृ.10, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली.

मनरेगा का राजस्थान के ग्रामीण विकास में योगदान

प्रो. डॉ. डी. एस. खींची
प्रोफेसर, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

हेमसिंह गौड
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांशः *राजस्थान में बेरोजगारी से संघर्ष कर रहे गरीबों के लिए वरदान बनी महात्मा गांधी नरेगा रोजगार प्रदान करने की राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार अधिनियम, 2005 के अन्तर्गत फरवरी 2006 से शुरू हुई ऐसी ही एक योजना है, जो ग्रामीण क्षेत्र में आम आदमी को जीने का सहारा उपलब्ध कराती है। यह योजना श्रम की महत्ता महिला सशक्तीकरण एवं मजदूरों के पलायन रोकने में भी कारगर साबित हो रही है। यह विश्व का सबसे वृहत मजदूरी कार्यक्रम हैं। यह रोजगार गारन्टी कार्यक्रम सर्वाधिक कमजोर तबको तथा सीमान्त लोगों के साथ उनके मैत्री भाव को दर्शाता है। वास्तव में महात्मा गांधी नरेगा अपने जवाबदेही संबंधी प्रावधानों के लिए विशेष रुप से जाना जाता है। महात्मा गांधी नरेगा में क्रियान्वयन की सभी प्रक्रियाओं खासतौर पर निधि प्रवाह प्रणाली में काफी अधिक पारदर्शिता देखने को मिली है।*

संकेताक्षरः *श्रम, गारन्टीशुदा रोजगार, पलायन, सामाजिक अंकेक्षण, पंचायत राज।*

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005 लोक सभा में 23 अगस्त, 2005 को पारित किया गया, जो दिनांक 07 सितम्बर 2005 को अधिसूचित किया गया। इस अधिनियम को भारत सरकार द्वारा प्रथम चरण में देश के 200 जिलों में 02 फरवरी, 2006 को लागू किया गया है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005 के अधीन संचालित राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी योजना के जरिये यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है कि अगर किसी ग्रामीण परिवार के कोई वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करने को तैयार है तो एक वित्तीय वर्ष की अवधि में उस परिवार को कम से कम एक वित्तीय वर्ष की अवधि में उस परिवार को कम से कम 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराया जाए।

राजस्थान में मनरेगा की शुरुआत

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 3(1) के अन्तर्गत राज्य में अधिसूचित ग्रामीण क्षेत्रों में लागू है। भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा जारी अधिसूचना के अनुसार राजस्थान में 02 फरवरी 2006 से प्रथम चरण में 6 जिले यथा बाँसवाड़ा, डूँगरपूर, करौली, सिरोही, झालावाड़ एवं उदयपुर में यह कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया।

द्वितीय चरण में दिनांक 01 अप्रैल 2007 से यह योजना राज्य के अन्य 6 जिलो यथा बाड़मेर चित्तौड़गढ़, जैसलमेर, टोंक, जालोर एवं सवाई माधोपुर में प्रारम्भ की गई।

तृतीय चरण में यह योजना राज्य के शेष रहे सभी जिलों में 01 अप्रैल 2008 में प्रारम्भ की गई।

योजना के उद्देश्य

- ग्रामीण क्षेत्र के ऐसे प्रत्येक परिवार को एक वित्तीय वर्ष के दौरान 100 दिन का गारन्टीशुदा रोजगार उपलब्ध कराना है।

- ग्रामीण इलाकों में स्थाई परिसम्पतियों का निर्माण करना, जिससे आजीविका में वृद्धि हो।
- गाँवों के जंगल, जल एवं पर्यावरण की रक्षा करना।
- महिला सशक्तिकरण।
- गाँवों से शहरों की ओर होने वाले पलायन पर अंकुश लगाना।
- सामाजिक समरसता एवं समानता सुनिश्चित करना।

योजना की मुख्य विशेषताएँ

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारन्टी अधिनियम, 2005 की मुख्य विशेषताओं का सारांश निम्नानुसार है:

- इस योजना को सम्पूर्ण ग्रामीण क्षेत्र में लागू है, अतः समस्त ग्रामीण परिवारों के वयस्क सदस्य योजना में लाभ पात्र है।
- योजना का लाभ लेने के लिए परिवार को स्थानीय ग्राम पंचायत में पंजीयन करना आवश्यक है। जिसके लिये ऐसे परिवार को लिखित या मौखिक तौर पर स्थानीय ग्राम पंचायत में आवेदन करना होगा।
- समुचित जाँच के बाद ग्राम पंचायत द्वारा आवेदक को जॉब कार्ड जारी किया जाता है।
- योजनान्तर्गत प्रत्येक ग्रामीण परिवार को रोजगार की मांग किये जाने पर एक वित्तीय वर्ष में न्यूनतम 100 दिवस की गारंटीशुदा रोजगार के माध्यम से अपनी आजीविका का अधिकार है।
- आवेदकों को यथा संभव उनके गाँव के 5 किलोमीटर के दायरे में ही रोजगार उपलब्ध कराया जायेगा। कार्यस्थल की दूरी उक्त दायरे से दूर होने की स्थिति में उन्हें 10 प्रतिशत अतिरिक्त मजदूरी दी जायेगी।
- ग्राम सभा द्वारा 6 माह में एक बार कार्यो का सामाजिक अंकेक्षण किया जायेगा।
- कार्यस्थल पर पीने का पानी, छाया, पालना आदि व्यवस्थाएं किया जाना अनिवार्य है।

मनरेगा की राजस्थान राज्य में प्रगति

तालिका संख्या 1

क्र.स.	विवरण	2014-15	2015-16	2016-17
1	जॉब कार्ड परिवारों की संख्या (लाखों में)	98.46	99.36	95.24
2	कार्य पर नियोजित परिवारों की संख्या (लाखों में)	36.87	42.21	46.35
3	कुल सृजित दिवस (लाखों में)	1686.19	2341.34	2596.84
4	100 दिवस पूरे करने वाले परिवारों की संख्या (लाखों में)	2.81	4.69	4.27
5	औसत रोजगार दिवस (प्रति परिवार)	46	55	56
6	व्यय राशि (रुपये करोड़ो में)	3252	3268.53	5152.21
7	औसत श्रमिक दर रुपये प्रति मानव दिवस	115	120	131
8	औसत व्यय प्रति जिला (रुपये करोडो में)	98.55	99.04	156.13
9	औसत व्यय प्रति पंचायत समिति (रुपये करोड़ो में)	13.11	11.08	17.47
10	औसत व्यय प्रति ग्राम पंचायत (रुपये लाखों में)	35.44	33.04	52.07
11	औसत व्यय रुपये प्रति मानव दिवस	193	140	198

स्त्रोत :- nrega.raj.nic.in

राजस्थान में वित्तीय वर्ष 2016-2017 के दौरान उत्पन्न रोजगार

तालिका संख्या 2

क्रं.स.	जिला	100 दिनों का रोजगार पूर्ण कर चुके परिवारों की कुल संख्या (रिपोर्टिंग महीने तक)
1	अजमेर	10394
2	अलवर	971
3	बाँसवाड़ा	36621
4	बाँरा	11796
5	बाड़मेर	90306
6	भरतपुर	2827
7	भीलवाड़ा	33215
8	बीकानेर	5220
9	बूँदी	1206
10	चित्तौड़गढ़	2297
11	चुरु	13425
12	दौसा	423
13	धौलपुर	671
14	डूंगरपुर	46198
15	हनुमानगढ़	21111
16	जयपुर	1639
17	जैसलमेर	19140
18	जालौर	11529
19	झालावाड़	7732
20	झुन्झुनूं	3283
21	जोधपुर	12088
22	करौली	736
23	कोटा	1793
24	नागौर	12340
25	पाली	7736
26	प्रतापगढ़	6414
27	राजसमंद	18026
28	सवाई माधोपुर	1736
29	सीकर	2094
30	सिरोही	1378
31	श्रीगंगानगर	15562
32	टोंक	1877
33	उदयपुर	25529
	कुल उत्पन्न रोजगार	**427313**

स्त्रोत :- nrega.raj.nic.in

राजस्थान में मनरेगा के बदलावः रचनात्मक व प्रेरक

राजस्थान में मनरेगा के बदलाव भिन्न है। कई मायने में रचनात्मक और प्रेरित करने वाले। मनरेगा जातियों में भेद नहीं करता है। वह हर श्रमनिष्ठ को काम की गारन्टी देता है। ग्रामीण क्षेत्रों में इस योजना के पश्चात् मजदूरों की आमदनी बढ़ने से उनके जीवन स्तर में सुधार हो रहा हैं सरकार द्वारा मनरेगा पर किया गया व्यय एक प्रकार का निवेश है क्योंकि इस कार्यक्रम के द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में निर्माण कार्यो एवं विकास कार्यो का संचालन किया जा रहा है। वस्तुतः नरेगा पर किया गया व्यय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में किया गया निवेश है। यह जनता के लिए चलाया गया विश्व में सबसे बड़ा रोजगार कार्यक्रम है। जिसमें 5 करोड़ ग्रामीण परिवारों को कार्य उपलब्ध कराया गया है। प्रत्येक तीन ग्रामीण परिवार में से लगभग एक परिवार को इस कार्यक्रम का लाभ प्राप्त हुआ है।

क्रियान्वित कार्यो का शोधात्मक अवलोकन

राजस्थान के गांवों में मनरेगा कार्यो का शोधात्मक मूल्यांकन करते हुए यह पाया कि मनरेगा की सफलता के लिए ग्रामीण आचंल में सज्ञा व्यवस्था की निर्णायक भूमिका होती है। यदि गांव का सरपंच शिक्षित, समझदार और व्यापक दृष्टिकोण रखता हो तो गांव में विकास हो सकता है। इसके अतिरिक्त ग्रामसभा के सदस्यों की रुचि और जागरुकता के स्तर का भी उतना ही प्रभाव पड़ता है।

निःसन्देह इस अधिनियम के तहत निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया गया और सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह देखने को मिली कि गांव के लोगों में आपसी सहयोग बढ़ा है। इसी कारण से गांव के लोग गांव से सम्बन्धित गतिविधियों में भी रुचि लेने लगे है। अब प्रत्येक ग्रामीण परिवार खुशहाल है।

विभिन्न सफलताओं के बावजूद गांवों में कुछ समस्याएँ भी है। गांव के विकास के लिए निर्धारित निधि को समय पर जारी नहीं किया जाता है। इसके लिए खण्ड-स्तर पर ग्रामीण विकास अधिकारी मुख्यतः उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त गांव सरपंच ने यह भी बताया कि गांव के सरपंच को मासिक पारिश्रमिक भी अदा किया जाना चाहिए क्योंकि यदि सरपंच खुद गरीब है तो वह ग्रामीण विकास के फंड़ो का दुरुपयोग कर सकता है। राजस्थान में कई पिछड़े जिलों ने महात्मा गांधी नरेगा के माध्यम से ग्रामीणों की जिन्दगी में सुधार लाने के इस प्रयास ने अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किये है। इस सफलता का श्रेय पंचायती राज प्रतिनिधियों की कर्त्तव्यपरायणता और सभी ग्रामवासियों के सहयोग और सहभागिता को जाता है। इससे यह साबित होता हैं कि ग्रामीण नौकरशाही को ग्रामीणों के इस योगदान से शिक्षा लेनी चाहिए कि समर्पित ग्रामीण नागरिक और कर्त्तव्यपरायण ग्रामीण विकास अधिकारी ग्रामीण आंचल की काया पलट कर सकते हैं इसलिए अधिकारियों को गाँवों में क्षेत्रीय यात्रा करनी चाहिए और गांव के लोगों से बातचीत करके और उनकी समस्याओं का सूक्ष्म परीक्षण करके ही प्रशासिनक सुधार कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करना चाहिए।

इस क्रान्तिकारी कार्यक्रम के सुचारु क्रियान्वयन में सबसे बड़ी बाधा है भ्रष्टाचार। हालाकि श्रमिकों के चयन और धन के भुगतान की प्रक्रिया को पारदर्शी रखने के उपाय किए गए है किन्तु नौकरशाहों और कुछ स्थानों पर पंचायतों के कर्मचारियों की भ्रष्ट गतिविधियों के समाचार मिलते रहते है। वैसे तो कहा जा सकता है कि भ्रष्टाचार अन्य सरकारी योजनाओं में भी चल रहा है लेकिन इस पर रोक लगाए बिना यह कार्यक्रम अपने उद्देश्य से भटक जायेगा और देश के गावों से गरीबी मिटाने का यह सुनहरा प्रयास विफल हो जायेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *गठला, कोटिया : महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना (हरित राजस्थान, जल संरक्षण, 2010) नेशनल मीडिया एण्ड पब्लिसिटी, जयपुर, पृ. 39*
2. *कुरुक्षेत्र : ग्रामीण भारत में सुधरता जीवन-स्तर, अक्टूबर 2013, पृ. 21*
3. *सुजस : फरवरी 2015, पृ. 36*
4. *मनरेगा प्रतिवेदन : ग्रामीण विकास विभाग, फरवरी 2012, भारत सरकार, नई दिल्ली पृ. 29, 30, 32, 33, 34, 35, 36*
5. *वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन : ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग (2012-13), जयपुर, पृष्ठ 14 से 23*
6. *वार्षिक प्रगति प्रतिवेदन : ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग, 2014-15, राजस्थान सरकार, जयपुर, पृ.16*
7. *मनरेगा, एक दशक की उपलब्धि (2016), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली पृ.17, 18*
8. *इलेक्ट्रानिक निधि प्रबन्ध व्यवस्था मार्गदर्शिका (2015), ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग, जयपुर, पृ.25, 37, 53, 61*
9. *nrega.raj.nic.in*

बीदावाटी का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व

डॉ. श्रवणसिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, यूनिवर्स गर्ल्स कॉलेज, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांशः *सन् 1599 ई. तक बीदावाटी स्वंतत्र राज्य रहा तथा यहाँ के शासक बीकानेर राज्य के सहयोगी रहे परन्तु बीकानेर महाराजा रायसिंह के समय मनसबदारी प्रथा के परिणामस्वरुप बीदावतों की स्वायतत्ता समाप्त हो गई। अब बीदावत बीकानेर राज्य के सामंत बन गए । बीदावत ठिकानेदारो का बीकानेर राज्य के साथ भाई-बंट का कुलीय सम्बन्ध था। समय के साथ-साथ बीकानेर शासको का बीदावतों पर नियंत्रण बढ़ता गया तथा बीदावाटी के ठिकानों का विभाजन भी बढ़ता गया। बीदावतों ने सदा बीकानेर राज्य की शक्ति के विकास का कार्य किया बीकानेर राज्य के अधिकांश युद्धों में बीदावतों की शूरवीरता दृष्टिगोचर होती है। बीदावाटी का भू-भाग विविधता को संजोए हुए है एक और विशाल रेतीले टीले तथा दूसरी ओर ताल (पथरीली भूमि) यहाँ की अनूठी विशेषता है।*

संकेताक्षर : *ठिकाना, संस्कृति, वंश, दोलड़ी ताजीम, सादी ताजीम, स्थापत्य, गढ, रियासत।*

"राव जैतसीरो छन्द" के रचयिता बीठू सूजा ने 16वीं शताब्दी के बीकानेर क्षेत्र का विवरण देते हुए उचित ही लिखा है कि "रेतीले समुद्र से घिरे इस स्थल का जीवन नीरस व सूखा नहीं है बल्कि यहाँ के वीर पुरुषों, साहित्यकारों, कलाकारों आदि के चमत्कारी कार्यों से सजीव हो उठा है।"[1] बीठू सूजा का यह कथन उसके बाद आने वाली शताब्दियों के लिए उतना ही नहीं बल्कि उससे भी अधिक प्रभावशाली अर्थ रखता है इसकी पुष्टि बीदावत ठिकानों की वंशावलियों से होती है।

बीदावत ठिकानों के रुप में बीदावाटी प्रदेश बीकानेर राज्य के दक्षिण पूर्व में 2500 वर्गमील में फैला था। यह क्षेत्र प्राचीन काल में द्रोणपुर के नाम से जाना जाता था सम्भवतः महाभारत काल में इसे गुरु द्रोणाचार्य ने बसाया था।[2] यह प्रदेश अक्षांश 27°25' से 28°42' उत्तर तथा देशांतर 74°25' से 75°25' से 75°3' पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है।[3] बीदावाटी से पूर्व इस प्रदेश का नाम मोहिलवाटी था जहाँ चौहानों की मोहिल शाखा का शासन था। बीदवाटी प्रदेश के अन्तर्गत सुजानगढ़, लाडनूँ, छापर, बीदासर, रतनगढ़, डूंगरगढ़ आदि क्षेत्र आता है।

बीदवाटी के मूल पुरुष राव बीदा थे जो जोधपुर के शासक राव जोधा के पुत्र थे। राव जोधा के 17 पुत्र थे सभी पुत्रों के लिए पृथक ठिकानें बांधने की आवश्यकता अनुभव होने लगी। जोधाजी के साले नापा सांकला तथा भाई रावत कुंधल ने जोधाजी की सहमति लेकर वि.सं. 1515 में कुंवर बीदा को मोहिलवाटी भेजा उस समय द्रोणपुर में कान्हा, छापर में बछराज तथा लाडनूं में राणा अजीत तीन मोहिल सरदार थे।[4] इस समय मोहिल चौहान इतने बड़े क्षेत्र पर शासन करते थे इस क्षेत्र से एक व्यापारिक मार्ग रतनगढ़-सुजानगढ़ होता हुआ पाली तक जाता था इस प्रकार मोहिलों का राठौड़ों में निरन्तर सम्पर्क बना रहा।[5] इसी सम्पर्क को बनाए रखने के लिए जोधा ने अपनी पुत्र राजबाई का विवाह राणा अजीत से कर दिया। इसे अतिरिक्त जोधा के पुत्र जोगा की विवाह भी मोहिलों में हुआ परन्तु दयालदास की ख्यात के अनुसार वि.स. 1521 को राठौड़ों का अजीत से युद्ध हुआ जिसमें अजीत मारा गया।

 ISSN 2277-5587

सन् 1465 में रावत कांधल, राव मण्डलाजी, रुपाजी, साण्डणजी, नाथजी आदि ने कुंवर बीका व बीदा को साथ लेकर जोधपुर से प्रस्थान किया तथा माता करणी जी का आशीर्वाद लिया।[6] सन् 1466 में राठौड़ों ने मोहिलों पर चढाई की व उनकी शक्ति को आघात पहुंचाया। बीदावतों व मोहिलों के आपसी संघर्ष की अनेक देवलियां आज भी बीदावाटी में देखने को मिलती हैं।[7] सन् 1474 में कुंवर बीदा ने राव जोधा व नापा सांखला की संयुक्त सेना के साथ मोहिलों की शक्ति का नाश कर दिया। इस प्रकार राव बीदा बीदावाटी के तथा राव बीका बीकानेर के स्वतंत्र शासक बनें।[8] राव बीका व बीदा सदा एक दूसरे की स्वतंत्रता का सम्मान करते थे राव बीदा के पश्चात उनके वंशज निरन्तर बढ़ते गए। अतः इस क्षेत्र में बीदावतों के अनेक ठिकाने कायम हो गए।

बीदावत ठिकानों को बीकानेर राज्य द्वारा मुख्यतः 3 श्रेणियों में विभक्त किया गया। बीदासर, साण्डवा, गोपालपुरा, चाहड़वास, मलसीसर, हरासर, लोहा, खूड़ी तथा शौभासर ठिकानों को प्रथम श्रेणी के ठिकानों में रखा गया। इनके ठिकानेदारों को दोलड़ी ताजीम वाले सरदारों की श्रेणी में रखा गया जबकि पडिहारा, काणूता, चरला, लाखणसर व घंटियाल को द्वितीय श्रेणी के इकलोड़ी ठिकानों में स्थान दिया गया तथा बीदावाटी के शेष ठिकाने बडाबर, कक्कू, गौरीसर, नौसरिया, जोगलिया, हामूसर, सारोठिया, पातलीसर, बीनादेसर व मालासर को तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत सादी ताजीमों में स्थान दिया गया। ठिकानेदारों को श्रेणी के अनुसार स्थान प्राप्त होता था। बीदावतों की 25 ताजीमों में 10 प्रथम श्रेणी, 5 द्वितीय श्रेणी तथा 10 ताजीमें तृतीय श्रेणी में थी।[9]

राव बीदा के वंशजों की बीकानेर राज्य में शूरवीरता दृष्टिगोचर होती है। अकबर के गुजरात अभियान के समय बीकानेर महाराजा रायसिंह के साथ-साथ बीदासर के गोविन्ददास, हारासर के पृथ्वीराज, लोहा के खंगारसिंह, शौभासर के बलभद्र आदि सरदार भी गए थे।[10] बीदावतों की बीकानेर राज्य में महत्ता इस दोहे में प्रकट होती है :

उदियापुर चूण्डा अचल शेखा घर आम्बेर।
दूदा माँजी मेड़ता बीदा बीकानेर।।

बीदावत ठिकानों की वंशावलियों का ऐतिहासिक एवं कलात्मक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। सामरिक व स्थापत्य कला की दृष्टि से बीदावत ठिकाने आरम्भ से ही महत्त्वपूर्ण माने गए हैं। यहाँ के ठिकानेदारों ने गढ़, नगर, महल, हवेलियाँ, देवलियाँ, तालाब, कुएँ आदि का निर्माण करवाकर जनकल्याणकारी भावना का परिचय दिया।[11]

बीदावतों के प्रमुख गढ़ों में बीदासर का गढ़, गोपालपुरा का गढ़, खुडी का गढ़, मलसीसर का गढ़, हरासर का गढ़, भींवसर का गढ़, रतनगढ़ का गढ़ व सुजागढ़ का गढ़ आदि प्रमुख हैं। यह गढ़ ऊँचे स्थान पर बनाए जाते थे।[12] प्रत्येक गढ़ में ठकुरजी व माताजी का मन्दिर होता था। इसके अतिरिक्त गढ़ में कुण्ड, तहखाने, तिबारे, धान की कोठियाँ आदि होती थे।

बीदावत ठिकानों में मन्दिर होते थे जो हिन्दू मन्दिर शैली से प्रभावित होते थे। इन पर गुम्बद व शिखर बनाए जाते थे। इन मन्दिरों में बीदासर का चारभुजा मन्दिर, तोलियासर का भैरवजी मन्दिर, मालासी का भैरव मन्दिर, द्रोणगिरी का बालाजी मन्दिर, ठरडा का रामदेवजी का मन्दिर प्रमुख है। बीदावत ठिकानों में लोकदेवता गोगाजी की मेडियाँ तथा नाथ सम्प्रदाय, विश्नोई सम्प्रदाय, दादूपंथी आदि के मठ भी देखने को मिलते हैं। राव बीदा ने नाथ योगी सिजरनाथ को अपना गुरु बनाकर गाँव घंटियाल में उनका आसन स्थापित किया।[13] बीदावाटी में जैन धर्म के उपाश्रयों की भी प्रधानता रही है। राजलदेसर का आदिनाथ मन्दिर कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसे अतिरिक्त सुजानगढ़ का देवसागर जिनालय तथा छापर के मन्दिर में चन्द्रप्रभु की प्रतिमा लगी होना भी अनूठी कला को दर्शाता है।[14]

बीदावाटी के कुँए, बावड़ी, तालाब आदि भी यहाँ के जीवन स्तर को दर्शाते हैं। बीदासर का बीदाणा कुँआ, पडिहारा का सुधासर कुँआ, हरासर का कुँआ, अजीतसागर कुँआ आदि प्रमुख है। अधिकांश कुँए गहरे बनाए जाते थे। इनमें लाव, चड़स की सहायता से ऊँट-बैलों से खींचकर पानी निकाला जाता था। बीदावाटी के तालाबों में गोपालपुरा का सिरोलाव तालाब, बीदासर का मालाणा तालाब, फताणा तालाब आदि प्रमुख हैं।

बीदावत ठिकानेदारों व ठकुरानियों की याद में छतरियां बनाई जाती थी। इनमें गोपालपुरा की राव बीदा की छतरी, चाहडवास की राम की छतरी आदि प्रमुख हैं। यह छतरियां कई स्तम्भों वाली होती थी। इनमें अनेक गुम्बद व अर्द्धगुम्बद होते थे। बीदावतों की अनेक देवलियां थीं जिन पर लेख व चित्र अंकित मिले हैं। जो विभिन्न जानकारियों के स्रोत हैं। इनमें पडिहारा की संसारचन्द्र की देवली, गनोड़ा

की अजीत की देवली, गोपालपुरा की देवली आदि प्रमुख है।[15]

बीदावत ठिकानों की हवेलियां भी स्थापत्य के अनूठे नमूने हैं इनमें पडिहारा, छापर, सुजानगढ, बीदासर, राजलदेसर आदि की हवेलियां प्रमुख हैं। इन हवेलियों में भित्ति चित्र, लकड़ी की सुन्दर नक्काशी आदि का कार्य होता था इस कार्य के लिए कलाकारों को अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए हैं।[16] हवेलियों में चौबारा, रसोई, पोळी आदि भाग होते थे। हवेलियों के मध्य विशाल प्रांगण खुले रहते थे। बाहर चौक होते थे इन पर बैठक के तख्ते रहते थे। यहां की विभिन्न वैश्य हवेलियों में बैदों की हवेली, दुधेडियों की हवेली, बोथरों की हवेली, दुगड़ों की हवेली आदि प्रमुख हैं।

बीदावत ठिकानों में विश्नोई सम्प्रदाय के संत जाम्भोजी का ऊँचा स्थान रहा है। उनकी राव बीदा पर असीम कृपा रही है।[17] आज भी इस क्षेत्र में विश्नोई सम्प्रदाय के लोगों की बहुलता देखने को मिलती है। नाथ सम्प्रदाय के सिजरनाथ को राव बीदा ने अपना गुरु बनाया। उनके अनेक मठ देखने को मिलते हैं। बीदावाटी के अनेक लोग दादूजी के शिष्य हैं। जसनाथ सम्प्रदाय के संत जसनाथ का भी यहाँ विशेष प्रभाव रहा है। इनकी समाधियां घंटियाल, लिखमादेसर, छाजूसर आदि स्थानों पर है। इस प्रकार बीदावाटी की भूमि विविधताओं से परिपूर्ण रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *छन्द राव जैतसी रो कैयो सर्ग 96–99, न. 59/99 अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर*
2. *राजेन्द्रसिंह, बीदावत राठौड़ों का इतिहास, पृ. 1*
3. *गोविन्द अग्रवाल, चूरु मण्डल का शोधपूर्ण इतिहास, पृ. 1*
4. *बीदावतां री विगत, 233/6, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर*
5. *डॉ. करणीसिंह, बीकानेर राज्य का केन्द्रीय सत्ता से सम्बन्ध, पृ. 13*
6. *ठा. सगतसिंह, मण्डलावत राठौड़ों का इतिहास, पृ. 24*
7. *बीदा स्मारिका, पृ. 11, राव बीदा स्मारक समिति, गोपालपुरा, चूरु*
8. *रेऊ, मारवाड़ का इतिहास, भाग 1, पृ. 101*
9. *दीनानाथ खत्री, बीकानेर राज्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 221*
10. *राजेन्द्रसिंह, बीदावत राठौड़ों का इतिहास, पृ. 94–95*
11. *गोविन्द अग्रवाल, चूरु मण्डल का शोधपूर्ण इतिहास, पृ. 514*
12. *वही, पृ. 515*
13. *बहादुरसिंह, बीदावतों की ख्यात (अप्रकाशित), पृ. 17*
14. *शोध पत्रिका वरदा, वर्ष 15, अंक 2*
15. *रामसिंह भींवसर, बीदावतों का इतिहास, पृ. 34*
16. *शोध पत्रिका मरुश्री, भाग 1, अंक 3 व भाग 2 अंक 2–3*
17. *डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, जाम्भोजी विश्नोई सम्प्रदाय एवं साहित्य, पृ. 368*

साहित्य में श्रम-निरुपण : हिंदी साहित्य के विशेष संदर्भ में

तारावती मीना
सहायक आचार्य, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश: *श्रम और साहित्य का परस्पर घनिष्ठ रिश्ता है। श्रम की अभिव्यक्ति से ही जीवन की अभिव्यक्ति संभव हो पाती है और जीवन की अभिव्यक्ति ही साहित्य के रुप परिणत होती है। साहित्य श्रमशील वर्ग से अपने वर्ण्य-विषय चुनता है और श्रमशील वर्ग को अपने शोषण से मुक्ति के लिए प्रेरणा देता है। साहित्य में श्रम की अभिव्यक्ति 'वैदिक साहित्य' से ही देखने को मिलती है। प्रगतिवाद की स्थापना के साथ हिन्दी साहित्य की कविता, कहानी, उपन्यास आदि विधाओं में 'श्रम की अभिव्यक्ति' को महत्ता मिली। प्रेमचन्द, निराला, नागार्जुन, धूमिल, महादेवी वर्मा, भीष्म साहनी आदि साहित्यकार श्रम के प्रति जितने सजग थे उतने ही श्रम के मूल्य के प्रति भी सजग थे। लोकसाहित्य में लोकगीतों व लोककथाओं के द्वारा श्रम की यथार्थ अनुभूति को साकार रुप दिया जाता रहा है। श्रमजीवी वर्ग के द्वारा भोगे हुए 'जीवन के अनुभव' संवेदनाओं से ओत-प्रोत होकर श्रमगीतों के रुप में अभिव्यक्ति पाते हैं। राजस्थान के कवि 'ऋतुराज' और 'प्रभात' की कविताओं में भी श्रमजीवी वर्ग की अनुभूतियों को शब्द-रुप प्रदान किया गया है। लगभग हर युग के रचनाकार में श्रमजीवी वर्ग को लेकर संवेदना रही है, यही संवेदना 'श्रम के साहित्य' के रुप में अभिव्यक्त हुई है। जिस प्रकार श्रम से जीवन सार्थक होता है उसी प्रकार श्रम की अभिव्यक्ति से साहित्य सार्थक होता है।*

संकेताक्षर : *श्रम का साहित्य, जीवन की अनुभूति, श्रम की अभिव्यक्ति, श्रमजीवी वर्ग, सौन्दर्यबोध, निराला, नागार्जुन, मेहनतकश वर्ग।*

आदिम युग से ही गीत, कविता, कहानी के रुप में साहित्य और शिकार, पशुपालन, खेती जैसे श्रम पर आधारित काम मनुष्य की प्रगति में लगातार साथ चले हैं। लेकिन जब मनुष्य आदिम युग से विकास की ओर अग्रसर हुआ तब जाने क्यों, श्रम विभाजन में बौद्धिक कार्यो को शारीरिक श्रम से श्रेष्ठ माना जाने लगा और शारीरिक श्रम करने वाले लोग निम्न वर्ण में मान लिए गए। इस कारण हमारी परिष्कृत साहित्यिक रचनाएँ श्रम और श्रमजीवी वर्ग से काफी हद तक कट गई।

वेदों में एक प्रसंग आता है जिसमें एक कवि की माँ चक्की पीसने का काम करती है अर्थात् एक ही परिवार में साहित्य रचने वाला और श्रम करने वाला दोनों विद्यमान हैं लेकिन वैदिक युग के बाद संस्कृत साहित्य में श्रमजीवी वर्ग का उल्लेख करने वाली 'मृच्छकटिकम' जैसी रचनाएँ अपवादस्वरुप ही दिखाई देती हैं। रामचरितमानस में एक प्रसंग है जिसमें वनवास के बाद राम के अयोध्या लौटने पर भरत सुग्रीवादि को अपने हाथों से बनाए हुए वस्त्र भेंट करते हैं जो राजा के भी श्रमशील होने का प्रमाण है :

"तब प्रभु भूषन बसन मगाए। नाना रंग अनूप सुहाए।।
सुग्रीवहि प्रथमहिं पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए।।[1]

साहित्य में श्रमजीवी वर्गो का बड़ा योगदान भक्तिकाल से ही शुरु होता है। निर्गुण ज्ञानमार्गी शाखा के अधिकांश कवि श्रमजीवी वर्ग के थे, जैसे कबीर जुलाहे थे, रैदास चर्मकार थे तो धन्ना जाट किसान थे। इन कवियों के साहित्य में भी इनके

कर्म की झलक आती है जैसे कबीर की इन पंक्तियों में उनके जुलाहे कर्म की झलक दिखाई दे रही है :

''झीनी झीनी बीनी चदरिया,
काहै के ताना काहै के भरनी,
कौन तार से बीनी चदरिया।।''[2]

रीतिकाल में दरबारी साहित्य की प्रधानता रही, इस कारण इस काल में श्रम के साहित्य के सर्जक गिने-चुने ही दिखाई देते हैं, जैसे – वृन्द, गिरधर आदि कवियों ने श्रम करने वालों के सरोकारों को अपने साहित्य में स्थान दिया है। आधुनिक काल में साहित्य जन-सामान्य के साथ गहराई से जुड़ा, इस काल में जन-सामान्य को महत्त्व मिलने के साथ-साथ श्रम की महत्ता भी साहित्य की केन्द्रीय प्रवृत्ति के रुप में उभरकर आई।

प्रगतिवाद के उभार के कारण सौन्दर्य की परिभाषा भी बदली और साहित्य भी बदला तथा श्रममूलक साहित्य केन्द्रीय धारा बना। छायावादी कवि निराला जो 'जूही की कली', 'शैफालिका' जैसी सौन्दर्यबोध की कविताएँ लिख रहे थे, उनका सौन्दर्यबोध भी बदल जाता है और वे श्रम के सौन्दर्य को 'तोड़ती पत्थर' कविता में इस प्रकार चित्रित करते हैं :

''वह तोड़ती पत्थर,
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर,
वह तोड़ती पत्थर,
कोई न छायादार पेड़,
वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन प्रिय-कर्म-रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार,
सामने तरु मालिका अट्टालिका, प्राकार।[3]

'बादल राग -1' में प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करने वाले कवि निराला 'बादल राग -2' में भारत के किसान को अपनी कविता का विषय बनाते हुए कहते हैं :

''जीर्ण बाहु है, शीर्ण शरीर
तुझे बुलाता कृषक अधीर।
ऐ विप्लव के वीर!
चूस लिया है उसका सार,
हाड़ मात्र ही है आधार,
ऐ जीवन के पारावर![4]

'अप्सरालोक' के कवि सुमित्रानन्दन पंत भी युग बदलने के साथ 'भारतमाता ग्रामवासिनी' कविता में भारतमाता को ग्रामवासिनी कहने लगते हैं क्योंकि भारत की तीन-चौथाई जनता गाँवों में रहती है, उसकी उपेक्षा कोई कवि कैसे कर सकता है ?

प्रगतिवादी कवि केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन ने श्रमशील वर्ग को अपनी कविता का नायक बनाया। 'वे और तुम' कविता में नागार्जुन श्रमजीवी वर्ग को कवियों के समकक्ष रखकर कहते हैं :

''वे लोहा पीट रहे हैं
तुम मन को पीट रहे हो
वे पत्तर जोड़ रहे हैं
तुम सपने जोड़ रहे हो
उनकी घुटन ठहाकों में घुलती है
और तुम्हारी घुटन
उनींदी घड़ियों में घुमती है।
वे हुलसित हैं
अपनी ही फसलों में डूब गए हैं
तुम हुलसित हो
चितकबरी चाँदनियों में खोए हो
उनको दुःख है
नए आम की मंजरियों को पाला मार गया है
तुमको दुःख है
काव्य-संकलन दीमक चाट रहे हैं।''[5]

परिश्रम करने के बाद भी मेहनकश वर्ग अभावों का जीवन जीता है, इसका चित्रण भी नागार्जुन ने 'अकाल और उसके बाद' कविता में किया है। धूमिल 'मोचीराम' कविता में 'श्रम के प्रति निष्ठा' को इस तरह व्यक्त करते हैं :

''बाबूजी सच कहूँ
मेरी निगाह में न कोई छोटा
न कोई बड़ा है
मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने मरम्मत के लिए खड़ा है।''[6]

वास्तविकता यह है कि प्रगतिवादी कविता में श्रम की अभिव्यक्ति जीवन की अभिव्यक्ति है, मानवीय अभिव्यक्ति है। शिवमंगल सिंह 'सुमन' अपनी प्रसिद्ध कविता 'मिट्टी की बारात' में मजदूर की मेहनत को सबसे बढ़कर मानते हैं और कहते हैं :

''कीचड़-कालिख से सने हाथ, इनको चूमो
सौ कामिनियों के लोल कपोलों से बढ़कर
जिसने चूमा दुनिया को अन्न खिलाया है
आतप-वर्षा पाले से सदा बचाया है।'' [7]

राजस्थान के विख्यात कवि रितुराज अपनी कविता 'संगीत रुपक' में श्रम के संगीत को इस प्रकार साज देते हैं –

''सबको अपना संगीत अच्छा लगता है,
लुहार को निहाई पर हथौड़े की धमक,
तो बढ़ई को अपने रंदे की खरर-खरर
सुनार को धोंकनी की फर-फर-फर
और जब ठठेरा लगातार ठोंकता है
तो सारे साज शांत हो जाते हैं।'' [8]

केवल कविता ही नहीं बल्कि साहित्य की अन्य विधाओं में भी श्रम और श्रम करने वालों को हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में प्रमुख स्थान दिया गया है। प्रेमचन्द ऐसे रचनाकार हैं जिनके कथा साहित्य में श्रमिक वर्ग के पात्रों को नायक बनाया गया है। इनके 'गोदान' उपन्यास में 'होरी' किसान के साथ-साथ पशुपालक 'भोला', दूध बेचने वाली 'झुनिया', दुकान पर काम करने वाली दुलारी सहुआइन, ताँगेवाले तथा मजदूरी करने वाले मजदूरों का भी चित्रण किया गया है। इसी तरह रंगभूमि, कर्मभूति और प्रेमाश्रम आदि उपन्यासों में भी प्रेमचन्द ने किसान व मजदूरों की समस्या को प्रमुखता से उठाया है। इनकी 'पूस की रात' नामक कहानी में किसान से मजदूर बनने को मजबूर 'हल्कू' किसान की पीड़ा को चित्रित किया गया है। किसान रात-दिन मेहनत करता है और अंततः उसकी मेहनत का फल कोई और ले जाता है। जयशंकर प्रसाद की 'पुरस्कार' कहानी में 'मधुलिका' भी एक किसान-कन्या है जो मेहनत करके अपना जीवनयापन करती है।

आँचलिक कहानीकार फणीश्वर नाथ 'रेणु' की 'ठेस' कहानी में सिरचन 'चिक' बनाने का काम करता है तो आलमशाह 'खान' की कहानी 'कुल्फी मलाई' में कहानी का नायक कुल्फी बेचता है।

भीष्म साहनी के नाटक 'हानूश' में एक घड़ीसाज़ नायक है। वह इतनी सुन्दर घड़ी बनाता है के बादशाह उसकी आँखें निकलवा देते हैं ताकि वह फिर किसी और के लिए इतनी सुन्दर घड़ी न बना सके। इस नाटक में श्रमजीवी वर्ग की पीड़ा का मार्मिक चित्रण किया गया है। 'जादू का कालीन' नाटक में मृदुला गर्ग बँधुआ बनाए गए बाल मजदूरों के शोषण को आवाज देती हैं।

रेखाचित्रों और संस्मरणों की दुनिया भी श्रम करने वालों की दुनिया से गहरे रुप में जुड़ी रही हैं। रामवृक्ष बेनीपुरी के 'रजिया' नामक रेखाचित्र में एक चूड़ीहारिन के मेहनती जीवन का चित्रण है और महादेवी वर्मा के रेखाचित्र 'पर्वतपुत्र' में पहाड़ी कुलियों तथा 'चीनी फेरी वाला' में फेरी लगाकर कपड़े बेचने वाले के श्रम के महत्त्व को निरुपित किया गया है।

अब तक हमने साहित्य में प्रतिबिम्बित श्रम और श्रमशील वर्ग की बात की। अब हम श्रमशील वर्ग द्वारा स्वयं रचे गए साहित्य की बात करेंगे, जिसमें प्रमुख हैं – लोकगीत और लोककथाएँ।

श्रम के साथ गीत अपरिहार्य रुप से जुड़े हुए हैं क्योंकि गीत श्रम की थकान का परिमार्जन और शमन करते हैं, पूर्वी राजस्थान में गाए जाने वाले 'कन्हैया' व 'पद-दंगल' में श्रोताओं के उल्लास को देखकर इसकी जीवंत अनुभूति होती है। सामूहिक रुप से खेती के काम करते हुए लोकगीत गाए जाते हैं जैसे 'रामभणत' विशेष रुप से निंदाणी व लावणी के समय गाया जाने वाला लोकगीत है। विश्नोइयों के लोकगीतों में 'बारहमासा' के अन्तर्गत कृषि से संबंधित गीत गाए जाते हैं।

श्रमगीतों में श्रम को शब्द-रुप ही नहीं मिलता बल्कि जीवन की अच्छी और बुरी अनुभूतियाँ भी संवेदना से ओत-प्रोत होकर इन गीतों में ढलती हैं। मल्लाह मछली पकड़ते हुए गीत गाते हैं तो महिलाएँ चक्की पीसते हुए गाती हैं –

''आधी के उठावै म्हांसू पीसणियों पिसावै जी।''
सवा पहर के तड़के सासड़ दही रिलावे जी।
भूं भूरली के सासड़ मेरी बलदां ने निरवा वै जी।'' [9]

पश्चिमी राजस्थान में दूर-दूर से पानी लाना पड़ता है जो बहुत श्रमसाध्य काम है, इस कारण 'पणिहारी' के गीतों की एक पूरी शृंखला है।

लोकगीतों में पौराणिक पात्र भी मेहनतकश वर्ग के रुप में नज़र आते हैं जैसे एक लोकगीत देखिए :

''हल हांको महादेव हल हांको ईसर।
दुनिया ने धंधे लगाय दीज्यौ जी।।'' [10]

इन लोकगीतों में देवता भी श्रम की दुनिया से बाहर नहीं है।

श्रम के साथ लोकगीतों के संबंध को राजस्थान के सशक्त कवि 'प्रभात' ने अपनी कविता 'लोकगायिकाए' में इस प्रकार निरूपित किया है –

"वे सभा में नहीं गा रही होती
तो चूल्हे के पास बैठकर गा रही होती
उन्हें गाने से मतलब है सुनाने से नहीं
इसलिए वे खलिहान में बैठी-बैठी गाती हैं
तारों के नीचे सोती-सोती भी
सदियों उन्होंने मुँह अँधेरे जागकर
घासलेट की चिमनी की रोशनी में
अनाज पीसते हुए गाया है।"[11]

लोककथाओं में भी हम देखते हैं कि लोक की सहानुभूति उस पात्र के साथ होती है, जो मेहनती होता है।

इस प्रकार वैदिक साहित्य से लेकर समकालीन लोकसाहित्य तक श्रम के महत्त्व को साहित्य में चित्रित करने की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। इन सभी उदाहरणों से यही अर्थ निकलता है कि श्रम साहित्य की शक्ति है, जीवन की शक्ति है। संसार का कोई भी छोटे से छोटा काम बिना श्रम के नहीं किया जा सकता। इसी क्रम में जब रचनाकार के अनुभव जगत् में विभिन्न दूसरी अनुभूतियों के समान ही श्रम की महत्ता बढ़ जाती है, तब वही भावना श्रम के साहित्य के रुप में अभिव्यक्ति पाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 *तुलसीदास, रामचरितमानस (सचित्र मोटा टाईप), गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण – संवत् 2073, पृ. 927*

2 *दास, डॉ. श्यामसुन्दर (सं.), कबीर ग्रन्थावली, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, संस्करण 2013, पृ. 44*

3 *शर्मा, रामविलास (सं.), राग-विराग (महाकवि निराला की सर्वश्रेष्ठ कविताओं का संकलन), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 2014, पृ. 118-119*

4 *वही, पृ. 56*

5 *जोशी, राजेश, नागार्जुन रचना संचयन, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृ. 97*

6 *धूमिल, संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 1997, पृ. 37*

7 *तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद, समकालीन हिन्दी कविता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण 2014, पृ. 65*

8 *ऋतुराज, कवि ने कहा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृ. 100*

9 *राठौड़, जयपालसिंह (सं.), 'लूर' पत्रिका, गोपालबाड़ी चौपासनी, जोधपुर, 'श्रम लोकगीत विशेषांक', वर्ष – 8, अंक 15-16, जनवरी-दिसम्बर, 2010, पृ. 40*

10 *वही, वही, पृ. 169*

11 *प्रभात की फेसबुक वॉल से*

Students' Perception Towards Effective Teaching & Quality of Higher Education (Study Based on Selected U.G. Commerce Students)

Jitendra Singh
Research Scholar, University of Rajasthan, Jaipur

Ritu Agrawal
Research Scholar, University of Rajasthan, Jaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract *: Today the significance of quality higher education in a growing nation like India is not only a matter of debate and concerns among academicians, government and organizations of stake but also an area drawing meticulous observation and sensitive action at both individual and institutional levels. Higher Education Institutions (HEIs) seek change in their approach as per contemporary economic and social scenario. They need innovative reforms at the physical infrastructure at the grass-root of teaching. This paper intends to reach students and assess their perceptions towards what they think about the effectiveness of teaching, which they are being provided. It is an attempt to bring forward the inputs for further development of effective policies measures in direction of quality education in HEIs of India.*

Keywords: *Effective Teaching, Higher Education Institutions, Quality of Education.*

Globally, Higher Education Institutions (HEIs) operate in an ever changing environment. There is always a need to enhance the system of higher education along with accommodating the influence of technology on the educational delivery. Globalization and participation of private sector in higher education have compelled necessary changes in the Indian higher education system.

India has been a nation of learning since the advent of civilization. Learning has been an inseparable part of India's identity. Formal and informal systems of education find traces in history of this country. The present arrangement of Higher education in India had its roots in year 1857. At present, India holds a vastly developed higher education system which includes facility of education in major of spheres of human creative and intellect, enabling individuals to grow and prosper. According to IBRD (World Bank) report the higher education system in India ranks third largest in the world, after China and the United States of America.

A 10+2+3 pattern of education is mostly followed in India. Students generally enroll themselves to degree programs i.e. bachelor's degree in arts, commerce or science after passing the Higher Secondary Examination (10+2).The other options have also evolved which offer professional degree programs such as management, law, engineering, agriculture, pharmacy, medicine etc. Master's degree is generally of two-year duration in both the professional and non-professional courses with or without coursework accompanied by a mandatory requirement of dissertation. Diploma Courses are also available along with the undergraduate and postgraduate courses with varying duration from one to three years. University Grants Commission (UGC) was set up under UGC Act 1956 of parliament which is entrusted

with the responsibility for coordination, determination and maintenance of standards for higher education and management of grants to universities and research organizations. All India Council of Technical Education (AICTE) had been established under the AICTE Act, 1987. The Council is accountable for ensuring integrated development of technical education along with maintenance of standards for the same.

The core concern of this paper is not the quantity but the quality of higher education with effective teaching as its pivot. The developmental mechanism in education is no doubt contributing to the highest good of the system. There have been sufficient standards incorporated to ensure quality in teaching inputs but the ground realities are challenging and still rely significantly on the academic leadership in private colleges. This paper is a meager effort to bring forth perception of students with a view to expect curative measures from related parties specially the administration.

The economic development of a country to a largely is contingent to quality of education. Sustained economic progress can be ensured only if higher education system is furnished with strict quality devoted practices. Quality is a sensitive element in inducing the educational outcome along with the employability of the graduates. This ultimately is subject to the quality of teachers in higher educational institutions. The challenges faced by teachers in educational institutions put valid questions for both the College systems and the governments.

The overall education level of India's population remains lower compared to other developing countries (Singh, SC-2015). The large proportion of students who belong to average-learner category needs to be educated and trained for ensuring skill inventory. Sustainable academic culture, educating qualified academics and development of higher education are significant challenges central to future economic growth of Indian (Altbach, Philip G.-2009). Higher education system where students spend crucial 3 years in under graduate courses can be utilized significantly through effective teaching approach. The culture of learning in college education is still seen elusive for average learners.

The feedback of students has been the vital base of many studies before. The criteria basically focus on two categories, first is the perception of students towards the teaching inputs they are being provided with and second category relates to 4 major expectations of students from the college with regard to the quality of education, from the academic administration in particular.

The aspect of the students' perception towards the quality in higher education has received substantial attention- Henard, F.-(2008). Lagrosen, S. et al (2004) have mentioned about systematic quality management in higher education. Prosser (1998) has stressed on importance of quality learning, focus should be on meaning not on reproduction. According to Ramsden (1992) the academic efforts should be based on understanding the comprehension ability of students related to subject.

Defining Quality and Effectiveness in Teaching:

According to Henard, F.(2008) Quality teaching lacks clear parameters and definition. Selecting reliable and measurable pointers to evaluate the quality of teaching and the competence of teaching inputs is challenging."Quality" is definitely a multifaceted and intricate term. Biggs (2001) noted, "Quality" can be defined as an outcome, a property, or a process depending on the context. So it is not surprising that the expression "Quality Teaching" has been assigned numerous definitions.

Another challenge is faced when it comes to defining "quality", and therefore "Quality Teaching", as observed by Harvey et al. (1992), there are many ways to define quality in higher education in regard of stakeholder relative context, where "stakeholders" include students, teaching and non-teaching personnel, academic

management, government and funding agencies, and the society at large.

Quality Parameters by National Assessment and Accreditation Council (NAAC) for Ensuring Quality in Higher Education:

In current scenario the interests of stakeholders like students, parents, future employers, the government and funding bodies is of prime importance when it comes to craft a strategy pertaining to quality in higher education. Privatization, prevalent expansion, augmented autonomy and introduction of academic programs in emerging areas has expanded the purview and access to higher education. Concurrently it has also led to widespread debate and concern on the quality and significance of the higher education in terms of outcomes.

With a view to address these concerns, the National Policy on Education (NPE, 1986) and the Program of Action (PoA, 1992) brought up strategic plans for the policies, proposing the establishment of autonomous national accreditation machinery for an efficient monitoring mechanism to maintain and improve the standards of education. Hence UGC came up with the establishment of National Assessment and Accreditation Council (NAAC) for ensuring quality standards in higher education.

Vision of National Assessment and Accreditation Council (NAAC):

"To make quality the defining element of higher education in India through a combination of self and external quality evaluation, promotion and sustenance initiatives".With a view to define quality in higher education and frame a viable directive NAAC has worked on the fundamentals of quality.Harvey (1995) has defined five correlated elements of quality,1) exceptional (excellence), 2) perfection (consistency or flawless outcome), 3) fitness for the purpose (fulfilling acustomer's requirements), 3) value for money and transformation.

UNESCO's definition of quality as quoted in Analytic Quality Glossary refers to Academic Quality in higher education as a multi-dimensional, multi-level, and dynamic concept that is subjective to the contextual factors of an educational model, to the institutional mission and objectives, as well as to particular standards in an institution ,system, program or discipline.

The meaning of quality may vary depending on: (1) the understandings of various interests of different constituents or stakeholders in higher education (i.e. the quality standards determined by student/university discipline, society/ government), (2) its orientations: inputs, processes, outcomes, vision, objectives and (3) the attributes or features of the academic environment which are worth considering. Universities UK (UUK, 2008) observed Academic 'quality' as the effectiveness of the learning experience i.e. the comprehensive aptness and efficacy of teaching, learning, teaching, evaluation and supporting efforts provided to assist students attain their learning objectives.

Taking a holistic view the NAAC ensures to assess the inputs, processes and outputs of a higher education institution. The Manual for Self-Studies for the universities (NAAC, 2008) has provided a detailed list of criteria that may be used for setting quality parameters - measurements, indicators and benchmarks:

1. Curricular Aspects	5. Student Support and Progression
2. Teaching-Learning and Evaluation	6. Governance and Leadership
3. Research, Consultancy and Extension	7. Innovative Practices
4. Infrastructure and Learning Resources	

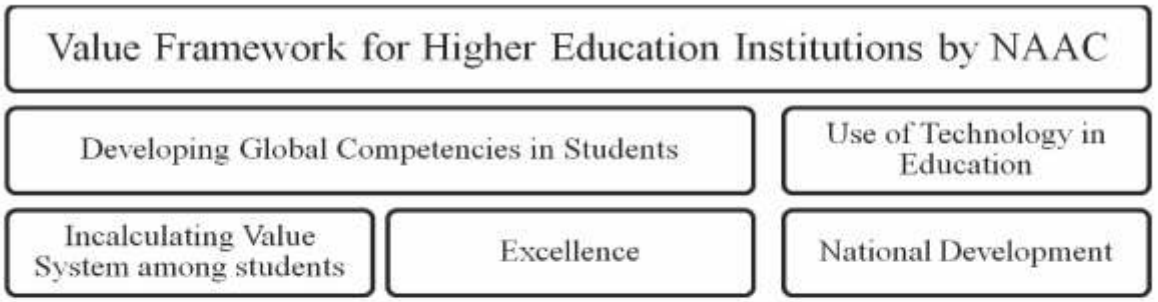

Implications of Study:

The rationale of this study is to ascertain the true state of education at under graduate level. Through the feedback of students based on selected parameters an effort has been made to look into the teaching inputs. The criteria include teachers' efforts towards concept building along with the effectiveness in delivering the concept to the class. Is it ensured that the classroom sessions are participatory? Such classroom sessions where maximum students are motivated to contribute with the help of interactive ambience is being practiced or not? Are teachers using innovative teaching pedagogy along with technological aids to arouse and sustain interest of students in classroom?

Without evaluation learning outcomes cannot be known. Are there regular planned and spot evaluations and efforts in the direction of learning the practical aspects of the concepts? The Presence of remedial support after class and efforts to improve and maintain good attendance in classes are a part of core parameters on which the feedback is based on.The expectations of students have been classified into student-centered policies and development of aptitude for a particular skill.

Students' feedback could prove to be a mirror to mend the loopholes in the roots of teaching approach. If reforms are to be incorporated they should be based on the unbiased feedback of the direct audience that is the students.

Research Methodology:

a. Objective of Study: To analyze students' perception and expectations towards effective teaching

b. Population: students pursuing under graduate course in commerce

Analysis:

Table-1 showing perception of students towards teaching efforts:

S.no.	Variable	SA	A	UD	D	SD	Mean Score
1	Teachers' Efforts towards Concept Building and Effective Delivery	36	40	30	30	64	2.77
2	Participatory approach in classes	25	40	15	42	78	2.46
3	Innovative teaching Techniques Modern teaching aides	18	15	27	77	63	2.24
4	Regular Evaluation Tests with Assignments and projects	28	46	10	49	67	2.595
5	Life skills and personality development sessions	44	38	12	65	41	2.895
6	Efforts for Improving Attendance	28	28	22	42	80	2.41
7	Assistance of teacher after class and special attention to below average students	44	50	13	33	60	2.925
8	College is understaffed	85	46	22	29	18	3.755

Table-2 showing Expectations of students towards Quality of Teaching:

S.No.	Expectation Variable	SA	A	UD	D	SD	Mean Score
1	More emphasis on Practical learning	83	73	2	23	19	3.89
2	sensitive & psychologically effective teaching	70	66	8	38	18	3.66
3	Recognizing the inner aptitude of students	77	46	37	23	17	3.715
4	Student-centered Management policy	94	66	17	18	5	4.13

	B.com Part 1	B.com Part 2	B.com Final Year	Total
No. of Respondents	85	63	52	200

c. Sample Size: 200 students of Jaipur district

d. Data Collection method: Questionnaires for primary inputs

Discussion

The highest mean score of 4.13 indicates that students perceive and expect more student-centric policies of college as most significant. Emphasis on Practical orientation in teaching is rated second most with mean score of 3.89. This hints at students' need of skill-based learning. Along with an education which helps in recognizing their inner aptitude, students responded to their expectation of psychologically effective teaching, with a mean score of 3.71 and 3.66 respectively.

In table-1 the feedbacks exhibit that efforts of improving attendance in class and use of innovative teaching techniques scored least with mean scores 2.41 and 2.24. It may be a significant indicator of lack of use of interactive technology in classrooms. Participatory classroom session scored 2.46 as mean which shows a need of improving pedagogy at higher education level. Regular evaluation tests and assignments scored 2.59 as mean score. To the variable whether college is understaffed students responded with highest mean score of 3.75.

Conclusions

Effective teaching can be attributed as most significant determinant of quality education. As far as higher education in India is concerned the policy is still on the way to make its impact in dimension of pedagogy. In current scenario teaching to be effective needs participation of students and practical orientation. A feedback from 200 students is not enough to make concrete deductions but fair enough to have a glimpse of reality. The matter relates to the mass not to the bunch of few self-driven motivated, more capable students.

In order to make higher education system a success and facilitate economic development of nation, it is imperative to focus on student and skill centric techniques of teaching. Collaborative and autonomous teachers' training in private and government colleges along with sincere discussions and workshops could be a great help in stimulating the process of shared learning and development. This would be in mutual interest of students, survival of colleges and attainment of educational outcomes.

On the basis of students' feedbacks use of innovative technology, availability of proper and regular teaching staff and regular evaluation should be worked on for ensuring aptitude recognition and practical knowledge of the subject matter in students. To survive and grow private colleges need students and students come with an expectation of receiving quality in teaching. A trend analysis could evidently reveal disappearance of institutions in higher education which failed to deliver quality. Having few numbers of premier IITs and IIMs is not good enough to cater a large section of average students.

To be effective higher education at under graduate level in commerce needs a revolutionary shift in terms of teaching techniques. With growing number of employment opportunities and expanding global trade education in commerce is subject to continuous reforms not only in curriculum but in teaching endeavors significantly.

References

1. *National Assessment and Accreditation council, Bengaluru, NAAC Manual for Self Study Report*
2. *UGC Annual Report 2012-13, ugc.ac.in, 20-04-2015*
3. *Henard, F.(2008). "The Path to Quality Teaching in Higher Education". OECD working paper*
4. *Harvey, L. & Green, D. (1993). "Defining quality: Assessment & Evaluation in Higher Education", 18(1), 9–34.*

   http://dx.doi.org/10.1080/0260293930180102
5. *Singh. S.C. (2015). "Role of Education in Social Transformation and Sustainable Development in India". South -Asian Journal of Multidisciplinary Studies. Volume 2 Issue 4.*
6. *Altbach, Philip G. (2009). "One-third of the globe: The future of higher education*
7. *in China and India". UNESCO. Published online. Prospects. DOI 10.1007/s11125-009-9106-1*
8. *Lagrosen, S. et al. (2004). "Examination of the dimensions of quality in higher education".*
9. *Quality Assurance in Education. Research Library. pg. 61*
10. *Ramsden, P. (1992). Learning to Teach in Higher Education. Routledge. London*
11. *Biggs, J. (2001). "The reflective institution: assuring and enhancing the quality of teaching and learning". Higher Education. Vol.41, No.., pp.221-238*
12. *Harvey, L., Burrows, A. and Green, D. (1992). "Criteria of quality in Higher Education report of the QHE Project".The University of Central England. Birmingham*

The Role of CAGI In Financial Accountability And Management

Sarla Gehlot
Research Scholar,Jai Narayan Vyas University, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Abstract *: The Comptroller and Auditor General of India (CAGI) is an important constitutional functionary. The constitution is founded on principle of high public morality and also in the principle of transparency and accountability to parliament. CAG is the adjunct functionary of the parliament. He derives his constitutional standing as the auditor of Union and the states from article 148 to 151 of the constitution. The CAG office kept independent as it requires to function smoothly and without bias. The role of CAGI is so important that he/she might be the only government office that can maintain financial stabilization and prevent major financial crisis and by doing so leads the country towards the path of economic as well as social progress.*

In this paper we have examined the position, working and effectiveness of the CAG reports. The paper also throws light on the role of financial committees. This paper also highlights the relationship between CAGI and parliament. Concluding part tries to provide suggestions to improve its efficiency.

Key Words : *Comptroller and Auditor General of India, Audit Reports, Accountability, Public Accounts Committee, Estimate Committee, Public Undertakings.*

India is a union of 29 states. The responsibility and powers (including financial) of the union and the states, and the relationship between them, are set out in the constitution of India. The legislative powers are detailed in three lists- union, state and concurrent. In India the audit of the account of the union and of the states – is a union responsibility. Accordingly the accounts of the union and the states are to be kept in such form as the President of India prescribes on the advice of the Comptroller and Auditor General of India. There is thus the unified system of auditing and accounting facilitated by parliament.

Indian constitution has given special status to the Comptroller and Auditor General (CAG) to enable him to function as guardian or caretaker of national finance. CAG's audit report is concerned with not just the fidelity of accounts or with the overall performance of schemes and adequacy of systems.

Evolution and Significance of Audit

The origin of auditing is as ancient as the origin of organized governance – "An audit is an examination and verification of the accounts after transactions are completed in order to discover and report to the legislative body any unauthorized, illegal or irregular expenditures, any financial practices that are unsound and whether the administration has faithfully discharged hid responsibility".[1] Audit is

independent, it deals with problems of high level of state administration, and various public organs, and it has full access to accounts, files and records of all public organizations for scrutiny. The Lima Declaration of INTOSAI (International Organization of Supreme Audit Institutions) defines the purpose of audit as follows: The concept and establishment of audit is inherent in public financial administration as the management of public funds represents a trust. Audit is not an end itself but an indispensable part of a control system whose aim is to reveal deviations from accepted standards and violations of the principles of legality, efficiency, effectiveness and economy of resource management early enough so as to make it possible to take corrective measures in individual cases, to make accountable parties accept responsibilities, to obtain compensation or to take steps to prevent violation from recurring or at least to make more difficult.[2]

Position and Role of CAG

> *"The Comptroller & Auditor General must be as supreme as the judges of the Supreme Court, perhaps even more so."*
>
> - Dr. Pattabhi Sitaramayya

The Indian Audit and Accounts department (IA & AD) is the supreme audit Institution of India, set up over 150 years again 1860. The members of this service assist the Comptroller and Auditor General of India in discharging the duties mandated to him by constitution of India. The Indian Audit and accounts department (IA & AD) also known as the (SAI) Supreme Audit Institution in the international context.

Chapter V of the constitution of India and the Comptroller and Auditor Generals (Duties, powers and conditions of service) Act 1971, explains the appointment, salary, duties, powers, etc. of the CAG. The CAG is the one dignitary, who sees on behalf of the legislatures that the expenses voted by them are not exceeded or varied and that the money expended was legally available for and applicable to the purposes to which it had been applied. Indian constitution has been given special status to the Comptroller and Auditor General (CAG) to enable him to function as guardian or caretaker of national finance.

Under article (148-152) he has been guaranteed an independent position analogues to the Supreme Court judge. The constitution assures to the Comptroller and Auditor General constitutional independence and has also placed him beyond fear or favour of the executive, whose transaction he is expected to audit. The audit reports on the Union accounts and state prepared by him are to be placed in the parliament and state legislatures.

Nothing can restraint the CAG's judgment in any manner or matters which he/she may bring to the notice of the legislatures in the discharge of his/her duties.

Dr. B.R. Ambedkar during debates in Lok Sabha observed "I am of the opinion that this dignitary or officer is probably the most important officer of the constitution of India. He is one man who is going to see that the expenses voted by the parliament are not exceeded, or varied in what has been laid down by the parliament in what is called the Appropriation Act. If this functionary is to carry on his duties even of the judiciary he should have certainly been as independent as the judiciary".[3]

Unlike the CAG of UK or the CG of the USA the Indian CAG is not an officer of parliament but an independent constitutional functionary. The reason for this is that the CAG is CAG for the Union as well as the States, which is the unique feature of the Indian quasi federal system. The financial management system and accountability mechanism both at the Union and State are almost the same except in certain details.

Objects of The Audit Reports of CAG:

> *"The judiciary has the power even to declare a law invalid when the legislature has exceeded its powers. Similarly the office of the Comptroller and*

Auditor General with its widespread organization all over the country has the power to see that the money is granted by the legislature to executive authorities are spent for the purpose meant and the accounts are maintained in a proper and efficient manner. He has the power to call to account any officer, however, highly placea, so far as state money concerned."

- Dr. Rajendra Prasad

An audit report contains the final fully corroborated audit findings. These may have been accepted by the department and or are proved factually and are material enough to be placed before legislature. The objective of audit is to bring about improvement in the management and conduct of government activities and programmes.

They seek to determine the nature of the inadequacies identified, whether they are isolated or recurring. They not only stimulate corrective action but to ensure that the lapse does occur again. They try to make appropriate, informed and implementable recommendations to improve systems, procedures and process. In order to meet the challenges of good governance the CAG's office has been given dual role: One as an agency that functions along with the legislature and ensures that the executive obeys with the laws passed by the legislature and enhances the executive accountability to the legislature, another as an agency that ensures obedience by the sub-ordinate authorities with respect to the rules and regulations issued by the executive. The CAG must find the black spots and lapses in the governance of any government as well as commercial organizations and report to the President of India. The CAG also provide technical assistance/guidance and support to some local bodies to boost their answerability.

What Happens To The Audit Report:

The reports of the CAG are submitted to the President in case of the Union and the Governor in case of the state who in turn cause them to be tabled before the house. After tabling in the house these reports attract considerable media and public attention, small booklets also printed. These are designed for wide dissemination and to mould public opinion for critical appreciation of social sector schemes being implemented by government.

The inspection of annual account and audit reports by the Parliament alone would be an insurmountable task, as it call for expertise in the subject and it would command too much burdens on the inadequate time available to the parliament for discussion of issues of national importance. Therefore, the Parliament and state legislature have, for this purpose constituted specialized committees like (PAC) Public Accounts Committee, committee on public undertakings to which these audit reports and annual accounts automatically stand referred.

Financial Committees and Their Workings:

The committees select these findings and recommendations from CAG reports that they judge to be the most critical to the public interest and technical assistance to the committees in this task. The audit reports of the CAG enterprises are considered by the PAC. The committees on public undertakings consider the audit reports relating to commercial enterprises. The PAC (Public Accounts Committee) examines the statement of accounts showing the appropriation of sums granted by parliament for the expenditure of the government of India, the annual final accounts of the government and such other accounts laid before the house as the committee may think fit. It also scrutinizes the Appropriation accounts of the government of India and the reports of the Comptroller and Auditor General of India.

The Estimate committee on the other hand acts as a continuous economy committee and its criticism and suggestions acts as a deterrent on extravagance in public expenditure. It makes a detailed examination of the annual budget estimates in organization, efficiency, or

administrative reform consistent with the policy underlying the estimates may be effected.

The financial committees are said to play a very important role as the watch dogs of the parliament. They are unique as the oversight and control exercised by the committees is continuous, through and direct, employing all means of scrutiny by way of issuance of questionnaires, calling of memoranda from representative, on official organization and knowledgeable individuals, on the spot study of organizations and informal discussion of oral evidence of non-officials and officials. (Kashyap 2008)

The three financial committee's recommendation are intended to tome up the administration for economic efficient and speedy execution of these policies and programmes. It is very much observer that various measures are suggested by the Financial Committees are in general accepted by the government. The Financial Committees have adequate procedures to ensure that their recommendations are given due consideration by the government and where they are not accepted, the committees are appraised of the reasons for not being accepted in the 'Action Taken'. Reports are submitted by the government on the floor of the parliament.

There are Difficulties in the Functioning of Committee System: Firstly they normally do not go into questions of policy as policy formulation is the exclusive privilege of the executive. A committee is not supposed to sit in judgment on a policy which is approved by the executive. Furthermore they examine the administration ex post facto. The committee not only examine only those acts which have already been done or not done which otherwise ought to have been done. The recommendations of the committees do not contain any binding force as they are merely advisory in nature. There is large scale absenteeism, combined average attendance was reported to have been less than 50 percent in committees.

The National Commission to Review on the Working of the Constitution (NCRWC) observed that "Most committees oversee more than one ministry, thus preventing more focused work. Most political parties do not follow any norms while nominating members to these committees. They are also handicapped by lack ok of specialist advisers. Every committee has tenure of one year. This means members have no opportunity of specializing in a particular subject or group of subjects unless they can persuade their whips to let them continue to serve on a particular committee. This adhocism tells on the quality of work done by the committees whose reports suffer from absence of critical analysis of the work of the ministries under their supervision. Parliamentary oversight essential for enforcing accountability of the executive, is worse than useless if it degenerates into a meaningless routine".

Relationship Between CAG And Financial Parliamentary Committees:

The Comptroller and Auditor of India plays crucial part in the working of the financial committees of parliament and state legislatures. The CAG has to be acknowledged as a friend, philosopher and guide to these committees. The role of CAG and audit committees should not be mixed up as CAG looks at the audit at the angle of accuracy. The CAG is the acting hand of committee. The position of CAG directly affects the functioning of PAC. In order to maintain parliamentary control over finance, the CAG becomes indispensable.

The various committees examine the many audit reports on a selective basis, assisted by the CAG or his principal Audit officers as follows-

1. Assistance in the selection of subjects.
2. Supply of background information and memorandum of important points.
3. Briefing of the working groups and subcommittees for a proper understanding of the subject.
4. Give suggestions of the chairman of a committee as and when necessary.

5. Attendance at the sitting of the committees to assist in their examination of witnesses.
6. Vetting of written submissions of the witnesses for ensuring factual accuracy.
7. Factual verification of the reports of the committees.
8. Assistance as the sitting of committees devoted to deliberation on and adoption of their reports.
9. Vetting of the notes of government on action taken on the notes of the committees' recommendation.
10. Factual verification of the follow up reports of the committees.
11. Attendance to assist the committees at the sitting for consideration and adoption of their follow up reports.

Informal assistance is also given to the individual members and the secretariat of the committees so as to enable them to have a proper understanding of the issues dealt with the relevant audit report. In India the audit report as such are not discussed in the parliament or state legislature. However the recommendations of the committees are by convention considered as the recommendations as the entire Parliament. Hence the assistance given by the CAG and hid office to the financial committees is in effect assistance to the entire legislature. Even in regard to those issues dealt within the audit reports which have not been taken up by committees for detailed, oral and other examination, notes on remedial action taken by individual departments of government are required to be submitted to the committees after the notes are vetted by the Vetted Audit Department.

The effectiveness of audit to a large extent depends on the interest and support it receives from the PAC. During the last fifty years of democracy, the PAC while it has been able to bring some medium of discipline in the working of the executive, its working has shown serious deficiencies and major reforms are needed, if it has to fulfill its assigned task. Somnath Chatterjee, Speaker of Lok Sabha while addressing a seminar on Legislature and Audit Interface : "Proper functioning of the process of parliamentary control over public exchequer is directly linked to the capacity of the CAG to provide high quality, timely reports to the parliament and state legislature and the capacity of the Public Accounts committee and the committee of the Public Undertakings to examine them and issue their recommendations effectively and speedily. The effectiveness of the legislative committees is not dependent only on the speed and extend of the examination of the CAG's report but also on the executive's response and commitment to act upon the recommendations made in the Reports of the Legislative Committees with speed and without hindrance".

One of the most severe deficiencies in committee's working is that government can ignore its recommendations. This takes away its effectiveness as the committee works nonparty lines, free from the parliamentary debate, does a very thorough examination of the subject under review, and its reports are marked by high degree of objectivity, the government should normally accept all its recommendations. In the event of government not accepting its recommendations, it should place an explanatory memorandum in the house. There is also need for greater understanding between the PAC and CAG. CAG should bring out reports on subjects in which PAC has an interest after ascertaining its views.

Comptroller & Auditor General And Parliament Relationship:

> *"In a vibrant democracy like ours, a relationship of trust and confidence between the legislature and CAG is essential to maintain the integrity of the framework of financial accountability in our country."*
>
> -Somnath Chatterjee (Speaker of Lok Sabha)

CAG has an elaborate relation with the parliament specified with the constitution of India. CAG is responsible to the parliament because expenditure that occur to consolidate fund of India need parliamentary approval accept charged approval.

The official website of the CAG's says the Comptroller and Auditor General of India has a dual role of perform. Firstly an agency to function on behalf of legislature to ensure that the executive complies with the various laws, passed by the legislature in letter and spirit, and secondly on behalf of the executive to ensure compliance by sub-ordinate authorities with the rules and orders issued by it.

The Comptroller and Auditor General as head of Indian audit and accounts department, neither a part of the legislature or the executive, but is an officer created by the constitution to see that diverse authorities act in regard to all matters accordance with the constitution, and the laws and rules framed there under CAG reports only to the parliament and provide details value for money assessment of programmes and projects undertaken by government. Independence of CAG provides strength to the accountability process. The PAC and COPU report to parliament about the Action taken on CAG's reports.

He takes an oath or affirmation on entering the office in a form prescribed in the constitution itself. The special majority required for his removal makes the Comptroller and Auditor General in effect independent not only of the executive but also of a simple majority in the parliament. He is protected by the constitution against any adverse variation in his salary and other perquisites and even the parliament has no powers to vary these adversely. The expenditure on his office is charged and not voted upon in parliament. It is in securing his independence because any derogation in his independence would make the institution effect and affect his ability to discharge his duties without fear of favour.

Being an independent body, it doesn't require any approval from the legislature to initiate audit for any department or undertakings.

Most elected representatives of parliament and state legislature are unfamiliar with the Indian Audit and Accounts department. The trouble of educating them and develop close working harmonious relationship with them. As a result that parliamentary members do not get a feeling that CAG works on their behalf, whenever an attack on the institution of CAG is made by vested interest, member of parliament do not come forward to defend him. He therefore finds himself helpless. There is need for the parliament to recognize that CAG works on their behalf and give it full support.

Somnath Chatterjee, Speaker of Lok Sabha observed "Executive Accountability to the legislature is one of the cornerstones on which edifice of parliamentary democracy is erected. It is also one of the crucial components of good governance, along with securing Rule of law, ensuring transparency, and combating lack of probity. In all these respects it is imperative to have proper interface between the legislature and the Supreme Audit Institution."[4]

The Indian Parliament should formally recognize CAG as part of its legislative wing and give the institution fuel backing and support so that it is able to effectively discharge its responsibility of holding the government to account on its behalf.

But in a reality the relationship or connectivity between CAG and parliament are not as healthier and close as it should be.

Conclusion

The CAGI office is one of the four pillars of a democratic constitution, other 3 pillars, i.e. executive, legislature and judiciary. For the purpose of securing top standards of financial integrity of the administration and watching the interest of the tax payer and also for purposes of legislative control, the CAG office is kept as independent as is required to function smoothly and without bias. The role of the Comptroller and

Auditor General of India is so important, that he/she might be the only government office that can maintain financial stabilization and prevent major financial crises, and by doing so lead the country towards the path of economic as well as social progress.

CAG's presence has deterrent and preventive effect on financial lapses. Their audit report provide an analysis of the financial health of the union and state governments based on time series data, so that the perspective governments can draw appropriate lessons and take corrective actions at the instance of audit. Many chances in policy, law and rules are made by various departments at the union/state levels to avoid recurrence of similar irregularities. This make services more efficient, improve revenue collection and strengthen management of resources.

Because of this elaborate arrangement for the parliamentary control over national finances, it may appear that the finances of the union government are under the rigid control of the parliament. But the real picture is very different. The parliament is firmly under the control of the Prime Minister and Cabinet. Due to their majority support in the house of people, the cabinet controls the parliament. And through it the finances of the union government. Whatever little control the parliament exercises is through the criticism of the opposition. The opposition exposes and brings to the attention of the nation. Instances of financial misbehavior of the government. But unlike the British opposition, the Indian opposition is divided and hence weak. So even this check is not as strong as it should be. The functioning of the CAGI in India is exposed to several criticism. In India the emphasis in almost exclusively on audit rather than on control of expenditure.

In England the government department requires authorization from the comptroller. Thus whenever money is withdrawn for expenditure the comptroller is satisfied that there is legal authority for expenditure. In India the CAGI comes into the picture only at the Audit state i.e. after the expenditure have already been made. Some critics also question the wisdom of commenting on extravagance of the government by the CAGI.

The CAG's reports have suffered from too little and not too much publicity. One of the major weaknesses of the Indian system is that very few of the CAG's reports are widely known, and that not all of them get discussed in parliament. Some years ago, press conferences began to be held after the audit reports were placed before parliament, and the practice continues. This not a new departure introduced by the present CAG. If the CAG is become more effective as an institution for the enforcement of accountability, it is necessary that audit reports be more widely known and discussed. The people have a right to know their contents. It as a result of the CWG and the 2G controversies, the CAG and his reports are now better known than before, that is a very good development. If the present CAG manages to enhance the effectiveness of this constitutional institution, the country would awe a debt of gratitude to him.

References

1. *Reports of the President's committee on Administrative Management (U.S.A.) January 1937. P.21.*
2. *INTOSAI: Lima Declaration, October 1977 Section 1*
3. *Cited in M.S. Ramayyar, Indian Audit and Accounts Department New Delhi: IIPA 1967, P44.*
4. *Somnath Chatterjee: Speech delivered at the seminar on, Legislature and Audit Interface, organized by the office of the CAG on 22nd July 2005.*

Social Audit of Panchayati Raj in Rajasthan

Dr. Chhail Bihari
Lecture, JDPG College, Jaipur

Kedar Lal Meena
Research Scholar, Maharaja Vinayak University, Jaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract *: Argues that social auditing has a key importance of there is a growing awareness among corporate sector enterprises that enterprise should contribute towards social goals. Attempts to assess the social performance of rural areas. Social audits are now widely accepted as an important mechanism to address corruption and strengthen accountability in government service delivery. The process took root with the launch of the National Rural Employment Guarantee Act in 2008 which mandates the regular conduct of social audits of works sanctioned under in the gram sabha at least once every six months. This paper in an attempt to address this gap. We choose State of Rajasthan as a case study since it is the only State Government in the country to have formally institutionalized social audits. It thus holds important lessons an how to conduct social audits. This paper draws an Rajasthan Experience to identity key design principles that need to be considered when developing an institutional architecture for implementing social audits of this nature.*

Keywords *: Accountability, Transparency, Auditing Profession, Social accounting, Social Audit, Stock Holder.*

Social audits assists in verifying the social performance claims of these government schemes, and projects revolves around the principles of equity, social responsibility, accountability, transparency, inclusiveness and community of the society, benefit, as defined by the Gramin Bharat like this (Manrega) a monthly news letter by ministry of Rural Development (MoRD) social audit is "a public assembly where all the details of the project are scrutinized". It is "a way of measuring. Understanding, reporting of the social audits to the improving an institutionals social and ethical performance" as per the National Institute of Rural Development (NIRD).

Panchayat Levels Social Audit is an independent evaluation of the performance of a Gram Sabha as it relates to the attainment of its social goals. It is an instrument of social accountability of an. In other words, social audit may be defined as an in-depth scrunity and analysis of working of any public utility vis-à-vis its social relevance social auditing is a process that enables and organization to assets and demonstrable its social economics, and environmental benefits. Social audits is a tool through which government department can plan, manage and measure non-financial activities and monitor both internal and consequences of the developments.

Panchayati Raj in Rajasthan

Compare to the state then the country and the establish of the Panchayati Raj Act on the date. Rajasthan

has the distinction of being the first state in the country who pioneered the establishment of panchayati Raj. The Rajasthan Legislative council passed panchayat samiti and 21/9 parishad Act. For the first time in the country on 2 sept., 1959. Pt. Jawahar lal Nehru inaugurated Panchayati Raj on 2 Oct., 1959. At Nagaur in Rajasthan. Later on, Panchayati Raj institutes were set-up in other states of the country.

The government issued an order on 15 June, 1992 stating that a panch or sarpanch will be come illegitimate automatically if he or she has third child (after two children) during the period of next one year after the election. The candidates having no children at the time or election will be free to have two children. The family planning has got a boost after the enforcement or this legal provision. Salient features of Rajasthan Panchayati Raj Act, 1994 are as follow:-

Gram sabha, formation of panchayat, formation of panchayati samiti, formation of district council or zila parishad.

Process of Social Audit

1. Finding out what is actually happening.
2. Comparing what is actually happening with what should be happening.
3. Identifying changes and improvements that need to be made.
4. Setting new SMART goals.
5. Having the finding verified by an independent auditor.
6. Publishing a public document the social Audit reports so that every one can read the results.

The foremost principle of social audit is to achieve continuously in proving performances relative to the chosen social objectives. Eight specific key principles have been identified from social auditing practices around have been identified from social auditing practices. It is the universal fact can be define compare to Rajasthan only.

- Multi – perspective / poly vocal.
- Comprehensive
- Participatory
- Multi directional
- Regular
- Comparative
- Verified
- Disclosed?

Objectives of social Audit

a) To assess the status of social Audit and Gram Sabha and panchayati Raj as per law of the land and as practiced in India and recommend measures for, marking the process of adopting implementation of social Audits as a matter of culture.

Specific Objective :- The specific objectives of the study in context to social Audits are :

(i) To assess the legal status of social Audit as per central and state legislations.

(ii) To assess the awareness and acceptance of social audit among the officials of state and central government.

(iii) To assess the level of acceptance of implementation of social Audits in different states in India.

(iv) To assess the experience and the Learning from implementation of social audits wherever they have been implemented.[8]

Benefits of social Auditing for government departments

The following are the benefits of social Audit :

1. Enhances reputation
2. Alerts policy makers to stock holder trands
3. Affects positive organizational change
4. Increases accountability
5. Assists in re-orienting and re-focusing priorities
6. Provides increased confidence in social areas.

The other benefits of social Audit :

1. Involvement of people in development activities ensures that money is spent where is it actually needed.
2. Awareness among people

3. Benefits reach the people
4. Power in hands of the public
5. Reduction of wastage
6. Reduction of corruption
7. Improves the standard of governance
8. Government becomes more responsible and accountable

Major Areas of Social Audit

1. **Community Development :** This includes the impact of organizational activities on individuals or group who were in fact, outside the immediate sphere of the business activities. This contribution shows an important shift in attitudes, for fund spent in society –oriented activities might be conceived as ultra-virus the objective of a company as laid down in the memorandum of association. The following are the examples of activities relating to the benefit of the community :

(i) **Housing :** Construction of dwelling house, financing for housing and improving the living conditions of employees of providing various faculties in the house.

(ii) **Transportation :** Providing transportation without change of at a concessional rate.

(iii) **Health service :** In order to reduce diseases and illness, the support is provided by the companies for health-care facilities and services.

(iv) **Planning and development :** It includes area planning and crime prevention.

(v) **Food programme and education :** Providing food grains, refreshment and educational facilities to the public and words of employees, free of charge or at a concessional rate.

2. **Human Resources :** Define of these resources.
3. **Physical Resources and Environment contribution.**
4. **Service or product contribution.**

Types of Social Audit : The various types of social audit may be listed as follow:

(a) Social Process Audit
(b) Financial statements format social audit
(c) Macro –micro social indicator Audit
(d) Social performance Audit
(e) Partial social Audit
(f) Comprehensive Audit

Dungarpur District of Rajasthan:

Social Audit is a process of reviewing official records and determining whether state reported expenditures reflect the actual money.

The mass social audit under the employment guarantee scheme in Dungarpur is the most significant feature of the first phase or implementation of the NREGA in India. Launched on 2 February, 2006, the first phase of the NREGA implementation included Dungarpur as one of 200 districts of India. A district in the poor tribal belt of southern Rajasthan, Dungarpur is also the birth place of the Right to information movement in India. People take a foot march called "Padayatra" with the aim of spreading awareness across 237 panchayats rural self –government institutions of Dungarpur employing 150,000 labourers at 1,700 work sites, about half of rural house holds belonging to below poverty line (BPL) group in cencus, 2001.

Two factors are believed to be responsible for making the social audit a reality in Rajasthan : Frist the presence of activist groups that monifored the public money spent on drought and relief work and second, the involvement of the working class in demanding employments as an entitlement, more over, for the frist time in public programme, the NREGA includes transparency and public scrutiny as the statutory provisions under section 23 and section 17 respectively (as out lined in chapter 11 of the NREGA operational Guide lines).

The social audits highlight : A significant demand for the NREGA, Less the 2 percent corruption in the form of fudging of must rolls, building the water harvesting infrastructure as the first priority in the drough-prone district, reduction of out migration, and above all the

women participation of more than 80 percent in the employment guarantee scheme. The need for effective management of task, timely payment of wages and provision of support facilities at work sites is also emphasised.

NREGA Slogans

Sona Chandi main nahi managa; gadi bangla, Main mahi manga ; limca shimca, pepsi cola, Main nahi manga ; Rozi roti, purana padhaiyee, Photocopy ; desh ka kharcha, kharcha ka hisab, Main ne manga.

(I don't want gold & silvers, car and bunglow nor I want limca, pepsi cola, But I want food, full literacy, accountability of public money spand in Nrega.)

Conclusion

Social audits have potentials for a meaningful impact on the effectiveness of the programme delivery system, the potential of which is not fully utilized. The primary grass – root level institutions, namely Gram Sabha's Panchayati Raj in the rural areas and resident / industrial or traders associations in urban areas need to be strengthened.

Here are same of the suggestions that could be used to make the social audits more effective and efficient while conducting a social audits, it is required that the purpose is clearly defined. The stock holder should be properly identified. A note should be made at whether marginalized social groups, which are normally excluded have a say on local development issues and activities and have their view on the actual performance of local elected bodies right to information act in 2005, the task of obtain statistics and other information from the Govt. Department and become the a lot easier then before the performance indicators in adopted by the society of large should be taken as standards in order the judge the performance.

References

1. *Dr. Sheeamal Jacob, social audit consultant, social audit manual cum toolkit (Draft) P.P. 9-10*
2. *Dr. P.K. Mohanty, social audit took it : A Guide for performance improvement and out come measurements Centre for good governance, 2002 P.P. 14-15*
3. *Omni-Antwi, Auditing : Theory and practice (The auditing compendium) Dig book Ghana Ltd. (2009)*
4. *D. Crowther, Social and Environment Accounting (Landon : Financial Times prentice Hall 2000) P.P. - 20*
5. *Dr. P.K. Mohanty, Social Audit : A Guide for performance Improvement and out come mesasurement, centre for good governance, 2005, P.P. 9-12*
6. *Freer spreckley local livelihoods, social audit tool kit (Fourth Edition) Edited by sally hunt, England 2008 P.P. -7*
7. *Clom Gerhard, Income and wealth, series I,Experiences in the use of social accounting in public in the united states. 1951, P.P-7*
8. *Centre for good governance social Audit : A tool kit a guids for performance improvement and out come measurement Hyderabad, 2005 P.P-17-18*

Work Life Balance and Civilization

Surbhi Mehra
Research Scholar, M D S University,Ajmer

shodhshree@gmail.com

Abstract : *Globalization has significantly increased the world economy's level of technological advancement, thus leading to competition locally and internationally. Over the past few decades, a dramatic change has occurred in the labour market and demographic profiles of employees. The traditional "job for life" has changed into an economic environment of instability and job uncertainty. Workers' perspectives and expectations have also changed towards work. In the modern era of technology and convenience, organizations have begun to provide their employees with helpful ways to balance their work and non-work roles through benefits like flexible work hours, telecommuting, and so on. Higher levels of work demands and longer time spent in employment led to lower levels of quality time spent with families and lower family satisfaction. The aim of this paper is to advance our understanding of the impact of work–life initiatives designed to foster workplace structures and cultures that are supportive of the interface between work, family, and personal life.*

Keywords: *work life balance, employees, employers, performance, roles.*

The argument of how an individual's work/life edge can affect their social life and standing within a community has long been a matter of concern. It has been viewed that the way of individual's participation in work shape its other institutions, such as social relationships, community participation, identities along with the sway it have on values and beliefs.

How society's individuals manage a work/life balance has also been a management concern :

Balance is defined as "satisfaction and good functioning at work and at home with a minimum of role conflict". This paper attempts to explore how the connections amongst work activity and 'community' participation can transform how an individual balances their participation in work and their social-self.

Individuals need to have the feeling of belongingness, to avoid social isolation they want to be incorporated in some kind of institution, be it a family group or form a community link through work. Finding the balance of combining such important institutions proves to be difficult due to a shift in definitions and positions of work have on both, completing job roles successfully as well as maintaining a personal and social identity within the wider community.

As a Result of Advancement in Technology:

The way we work is changing fast, changes in employment legislation and an increasingly competitive and connected global world. Not only has there been a change in work and working life, a change in life

outside of work can also be seen to have changed within contemporary society. A change in family units and structures, reduced leisure time and community participation and a change in the way individuals spend their leisure time. An increase in '24' hour activities has also both affected the way work can affect an individual, both for the good and for the bad.

As Bowswell and Olson-Buchanan stated, "increasingly sophisticated and affordable technologies have made it more feasible for employees to keep contact with work". Employees have many methods, such as emails, computers, and cell phones, which enable them to accomplish their work beyond the physical boundaries of their office. Employees may respond to an email or a voice mail after-hours or during the weekend, typically while not officially "on the job". Researchers have found that employees who consider their work roles to be an important component of their identities will be more likely to apply these communication technologies to work while in their non-work domain.

This unclear boundary of work and life is a result of technological control. Technological control "emerges from the physical technology of an organization." In other words, companies use email and distribute smart phones to enable and encourage their employees to stay connected to the business even when they are not in the office. This type of control, as Barker argues, replaces the more direct, authoritarian control, or simple control, such as managers and bosses. As a result, communication technologies in the temporal and structural aspects of work have changed, defining a "new workplace" in which employees are more connected to the jobs beyond the boundaries of the traditional workday and workplace. The more this boundary is indistinct, the higher work-to-life conflict is self-reported by employees.

Employee assistance professionals say there are many causes for this situation ranging from personal ambition and the pressure of family obligations to the accelerating pace of technology. According to a recent study employees consider their jobs and work hours excessive because of globalization.The advancement in technology has increased the expectation and need for fast responses and increases the need of constant availability from workers and leads to increase pressure on employees. It can be seen that the UK has the longest working hours compared to the rest of Europe, and the average number of hours worked per day has remained steady, but the number of employees working more than 48 hours has increased in the past ten years. An increase in the number of hours in work, dominates life and a sense of work-life imbalance follows.

Working late nights, weekends, ever changing shift patterns or any other 'disruptive' work patterns has made difficult to manage and schedule family time and leisure activities. Working shift , patterns unsettle family life activities have a long standing and somewhat negative outcome on the level of marital happiness and also the overall satisfaction of family life. Family units and communities are seen as the initial institutions for social integration. In times of social change, families and communities have remained a constant institution that has helped with promoting and maintaining a sense of social cohesion. Along with providing a basis for its members, families can also be seen as an important tool for teaching the next generation how to cope with such social change and the adult world of work. As the family provides this foundation, such 'work-life' changes have put the family unit, community participation all under great trauma.

Traditional arguments surrounding the work-life balance have primarily been concerned with how family members are able to balance work and home life activities, primarily with how professional mothers are able to balance their work and childcare responsibilities. However, modern –day arguments concerning the work life balance can be seen to have shifted from such a view to how society has changed and developed and how societal changes have predisposed the work life balance. A change in society has led to a change in working of companies and organizations have adapted employees working

arrangements to be well-suited with such societal changes and new responsibilities, lifestyles etc.

Many people now days, have chosen flexible working hours or have chosen work of non-permanent nature, are seen to have more command over maintaining a successful working and family life balance. This is attainable by having more control and ability to create a work schedule structure that allows them to work around childcare or other domestic responsibilities that they have. Such non-permanent work or self-arranged tasks do come at a price. Home or non-permanent employees have to make various sacrifices like giving up company benefits, socializing with other employees, having employees' rights or job security are some of them.

Flexible hours and the rise in individuals working from home are seen to be in practice, to put in order time around work responsibilities and domestic life. Flexible and working from home is seen to be practiced to help increase the balance between domestic responsibilities and an ever increasing volume of work. Those who participate in part time work, or maintain a low status within the workplace are seen to avoid high levels of imbalance commonly associated with full time occupation, and as a result are able to care and maintain their family household and associated workload without any burden or stress. It is observed that it is the women members of a family unit who participate in non-permanent forms of work. By allowing women to participate in work as well as maintain a successful family lifestyle, can in fact make up for the heavy or unsociable workload of the male member of a family.

Richard Sennett stated that new forms of work can become destroyed. New types of occupation and working patterns to create and maintain work life balance, can in fact lead to an imbalance between the tools and value that social individuals hold to create a successful working life. The new working patterns that have been created have changed working life and the concept of the fixed working day have declined for many individuals, and as hours have become more varied and flexible, so the availability and commitment of employees. This change in schedules and lifestyle will ultimately have an effect on how well workers can participate in wider society or maintain that work/life balance.

A focus on patterns of work life balance are often seen to examine the imbalance that members of society face trying to maintain both a work life and social life. Throughout his work Sennett attempts to look at how the act of capitalism had changed and argues that although the new flexible, competitive workplace gave workers a new sense of mobility, choice and freedom to 'control' their work schedule, it ultimately has not delivered such promises. Instead it has replaced the existing work life culture with a new society with workplaces that are without stability, routine and an environment that encourages self-determination and risk but also provides disorientation and produces uncertainty for employees. Sennett recognizes that this 'chaos' denies workers a sense of self or 'frame of reference' by which to conduct their social life and social self.

Government policies have also been established to help members of society to create a positive social self and participate within their communities. The Big Society Network was established by the Conservative government to bring together organizations, businesses and members of society to work together to positively impact social change, by 'unleashing social energy' help build a better, healthier society. The aim of the project is to enable members of local communities to work collectively to bring about positive social change to their local communities, be it by maintain communal areas, or running a local post office. For such a 'Big society' to work there is a lot of reliance of individuals to volunteer their private time to benefit the wider community, but with the continued rise in a new and conceivably 'unbalanced' work life interface for many, such policies are impossible to undertake. As mentioned throughout this, employees fight a constant battle with time to balance their working roles and responsibilities and their personal or community roles and responsibilities.

As individuals can be seen to be living and working a '24' hour lifestyle, there has been a rise in the expansion of jobs that can be seen as personal care and consumer services to cater for such employees. '24' hours supermarkets can all be attributed to the rise in new and flexible working hours as well as creating new and expanding job roles.

It is seen that a change in the work life balance can also be of benefit to organizations and companies, as a shift into new policies or procedure of work could lead to a rise in productivity and profits and can help companies to respond to any new and developing consumer needs more effectively. The Employment Act was updated in 2003 to include more benefits to assist employees and employers alike with managing the demands of a successful work life balance. Reforming polices such as increased maternity and paternity leave helps to support employees maintain a healthy relationship with their working life and family life.

Research by the Institute of Employment Studies, looked into workplace policies that are in place to allow employees to create a successful work life balance. Throughout research, there was a noticeable trend in the resistance of taking up such polices, there were a number of reasons why workers felt unable to take advantage of organizational work-life policies. The main reason for such resistance is due to the fact that employees feel that accepting flexibility may affect their career progression or may result in a change in wages. Also as a result of flexibility, an employee's workload could increase and their wages could reduce, which in fact would negatively impact their personal time, instead of helping it. Even though many organizational polices are put into place in the workplace, many workers could be left feeling that they would not be supported if they did take advantage of them.

Studying the work life balance, it has been examined that changes in work have also changed how an individual balances their family and personal leisure commitments. Many of these changes reference how intense involvement or over commitment to either work or family life can result in a damaging balance, but it is not always the case.

It has been explored as the term work life balance can be seen to theoretically communicate the needs of all employees, it has become apparent that not all employees struggle with maintaining, or accessing such a balance. When reference to a work life balance, most researches categorize such 'life' as good who maintain a successful family unit and work life, but does not take into account those without such caring responsibilities. Organizations who put forward work life balancing policies and cultures amongst their workforces, can be seen to not only be able to create a more satisfied employee and creating a more fair workplace, but also adapt their productivity and business needs to suit the ever changing work and life culture and an ever changing lifestyle.

Religion also Contributes a Lot in Framing Our Society:

Religion and spirituality have a major influence in defining employee's work life-balance. Religion represents an essential issue in diversity management, as the question of accommodating religion at work often raises controversial debate.

Religion is a choice based upon personal belief, but religious and ethical values are often inseparable in the pursuit of one's livelihood. As a result, religion influences organizations: employees may for example ask for a day-off (Eid, Diwali) or refuse to work in a company for religious purposes.

Some employers may fear that religion disturbs the "business of business" and thus have a negative impact on the company. In some secular societies such as France, employees are expected to leave their religion at the door of the company.

Poor management of religious diversity may affect employees' performances if they feel forced to choose between aspects of their religious identity and their jobs. This may also lead to them dissociating themselves from the organization or sometimes because of work and income earning pressures they may disassociate themselves from their culture and religion.

Therefore, religious diversity management is essential to ensuring a satisfying work–life balance

for employees. Some organizations also allow their employees to make up time spent on religious activities out of contractual hours.

Consequences of Imbalance:

Healthy and happy life is a balancing act that is affected by various factors:

- The influence of unfavorable genes,
- By private pressures and
- Most recently by the imbalance of work and family life.

Many people expose themselves uncalled for to the so-called extra work, because the "hard worker" enjoys a very high social recognition. These aspects can be the cause of an imbalance in the areas of life. But there are also other reasons which can lead to such an imbalance.

Remarkable is, for example, the increase in non-occupational activities with obligation character, which include mainly house and garden work, maintenance and support of family members or volunteer activities. All this can contribute to the perception of a chronic lack of time. This time pressure is, amongst others, influenced by one's age, the age and number of children in the household, marital status, the profession and level of employment as well as the income level. The psychological strain, affects the health, which increases due to the strong pressure of time, by the complexity of work, growing responsibilities, concern for long-term existential protection etc.

Uncertainty is seen as the dominant attitude to life in the post-modern society. This uncertainty is caused by the pressure which is executed from the society to the humans. It is the uncertainty to fail, but also the fear of their own limits, not to achieve something what the society expects, and especially the desire for recognition in all areas of life. In today's society we are in never ending competition. Appearance, occupation, education of the children - everything is compared to a media staged ideal. Everything should be perfect. Everyone wants more - on the job, from the partner, from the children, from themselves - will one day be burned out and empty inside. He is then faced with the realization that perfection does not exist. Burnout is till this date not a recognized illness. An attempt to define this concept more closely, can be: a condition that gets only the passionate, that is certainly not a mental illness but only a grave exhaustion (but can lead to numerous sick days).It can benefit the term that it is a disease model which is socially acceptable and also, to some extent, the individual self-esteem stabilizing. This finding in turn facilitates many undetected depressed people, the way to a qualified treatment. According to experts in the field, in addition to the ultra hard-working and the idealists mainly the perfectionist, the lonely, the grim and the thin-skinned are especially endangered of a burnout. All together they usually have a lack of a healthy distance to work.

Another factor is also, that, for example decision-makers in government offices and upper echelons are not allowed to show weaknesses or signs of disease etc., because this would immediately lead to doubts of the ability for further responsibility. Only 20% of working people do sports regularly and also only 2% keep regularly preventive medical check-up. As other priorities seem to be set and the time is lacking for regular sports. Frightening is that the job has such a high priority, that people waive screening as a sign of weakness. In contrast to that, the burnout syndrome seems to be gaining popularity. There seems nothing to be ashamed to show weaknesses, but quite the opposite: The burnout is part of a successful career like a home for the role model family. Besides that the statement which describes the burnout as a "socially recognized precious version of the depression and despair that lets also at the moment of failure the self-image intact" fits and therefore concludes "Only losers become depressed, burnout against it is a diagnosis for winners, more precisely, for former winners."

The phases of burnout can be described, among other things, first by great ambition, then follows the suppression of failure, isolation and finally,

the cynical attitude towards the employer or supervisor. Concerned persons have very often also anxiety disorders and depressions, which are serious mental diseases. depressions are the predominant causes of the nearly 10,000 suicides that occur alone each year.

Improving Work Life Balance :

An observation of companies who were accused of overworking their employees, states that "when people get worked beyond their capacity, companies pay the price." Although some employers believe that workers should reduce their own work load by simplifying their lives and making a better effort to care for their health, most experts feel that the chief responsibility for reducing stress should be management.

According to a survey of a stress management consulting firm, "Traditional stress-management programs placed the responsibility of reducing stress on the individual rather than on the organization-where it belongs. No matter how healthy individual employees are when they start out, if they work in a dysfunctional system, they'll burn out."

Work–life balance has been addressed by some employers and has been seen as a benefit to them. Research has shown that those employees who were more favorable towards their organization's efforts to support work–life balance also indicated a much lower intent to leave the organization, greater pride in their organization, a willingness to recommend it as a place to work and higher overall job satisfaction.

Employers can offer a range of different programs and initiatives, such as flexible working arrangements in the form of part-time, casual and telecommuting work. More proactive employers can provide compulsory leave, strict maximum hours and foster an environment that encourages employees not to continue working after hours.

It is generally only highly skilled workers that can enjoy such benefits as written in their contracts, although many professional fields would not go so far as to discourage workaholic behavior. Unskilled workers will almost always have to rely on bare minimum legal requirements.

According to Stewart Friedman-professor of Management and founding director of the Wharton School's Leadership Program and of its Work/Life Integration Project—a "one size fits all" mentality in human resources management often perpetuates frustration among employees. "It's not an uncommon problem in many HR areas where, for the sake of equality, there's a standard policy that is implemented in a way that's universally applicable -- [even though] everyone's life is different and everyone needs different things in terms of how to integrate the different pieces. It's got to be customized."

Friedman's research indicates that the solution lies in approaching the components of work, home, community, and self as a comprehensive system. Instead of taking a zero-sum approach, Friedman's Total Leadership program teaches professionals how to successfully pursue "four-way wins"—improved performance across all parts of life.

Although employers are offering many opportunities to help their employees balance work and life, these opportunities may be a catch twenty-two for some female employees. Even if the organization offers part-time options, many women will not take advantage of it as this type of arrangement is often seen as "occupational dead end."

Even with the more flexible schedule, working mothers opt not to work part-time because these positions typically receive less interesting and challenging assignments; taking these assignments and working part-time may hinder advancement and growth. Even when the option to work part-time is available, some may not take advantage of it because they do not want to be marginalized. This feeling of marginalization could be a result of not fitting into the "ideal worker" framework.

References:

1. Sharma P and Dayal P (2015); 'Work Life Balance: Women Employees Working in Banking Sector of India', International Conference on Recent Research Development in Environment, Social Sciences and Humanities.
2. Ramya R (2014); 'Work Life Balance Strategies of Women', International Journal of Research and Development.
3. Ameta K (2014); 'Managing Personal and Professional Life: An Empirical Study', AEIJMR – Vol 2 (4).
4. 'Impact of Flexible Working Hours on Work-Life Balance' (2014), American Journal of Industrial and Business Management, Vol. 4(1).
5. Lakshmi KS and Gopinath SS (2013); 'Work Life balance of women of women employees – with reference to teaching faculties', International Monthly Refereed Journal of Research In Management & Technology, Volume II.

Assessing Corporate Financial Disclosure Practices in Indian companies: A practical Approach Adoption in View of Indian Accounting Standards

Balkishan Vaishnav
Assistant Professor
S.D.S.C Badamia College,Varkana ,Pali

Abstract : *Corporate financial disclosure system provides reliable and relevant information to the different stakeholders for their financial and investment decision making. Through adoption of corporate disclosure practices, a proper recording and classification of economic and financial transactions in particular business can be followed in its truest manner. Thus, it can be firmly stated that corporate should include all type of required information relevant for various interested groups in their financial reports and documents. The wider recognition of social responsibility of business for the last few decades has important implications in view of corporate disclosure practices. This has emphasized the efficient allocation of society's resources and wealth. Now, groups other than shareholder such as employees, local communities, social groups and the general public have also interested to get the reliable information through the fair and transparent corporate financial disclosures. This study may prove beneficial for overall society, as it may be meaningful research to trace out reasons of variations between rule, regulation and their follow-up practices adopted by corporate sector. This study may helpful to analysis the variation between reality and presentation by the Corporate Concern.*

KeyWords *: Corporate Financial Information, Transparency and Disclosure, Standard Model, Research design, Standardization Practices.*

A Complete, fair and reliable corporate financial information is dire need of this competitive global era for welfare of all the stakeholders and general public, that's annexed to corporate concern directly and indirectly. Providing true and reliable corporate information is first and most responsibility of corporate sector. Investor's decisions making depends on corporate financial disclosures. Malpractices are seen occasionally in these arenas, big variations exists between rules, regulations and their actual follow-up practices in spite of guidance of Indian accounting standards. There are also provisions of imposing penalties in Indian companies act 1956 and 2013. Although corporate concerns are bearing penalties in lieu of breaking these rules and regulations, yet doesn't provide correct information about corporate disclosures due to their mollified intentions. This research is a humble work to check these variations arisen between actual practices adoption and standard rules and regulations. This work is to be executed with the help of observations of corporate financial statements, annual reports, conducting physical survey and organizing personal interviews. This research may be helpful for all the stakeholders, which demands correct information. It is well known fact that there are 33 Indian Accounting Standards (IAS) established by Indian Accounting Standards

Board (ASB) to remove variations for resolving several accounting and financial problems and to move towards standardization practices. ASB intent to harmonize the diverse accounting policies followed in the preparation and presentation of financial statement by different corporate, so as to facilitate intra-firm and inter-firm comparison. Although all the accounting Standards may not be applicable in all companies. As per their limitations, these are divided into mandatory and voluntary. It is generally seen, corporate concern are not following properly IAS in their practices. To trace out reasons for the same, will be essence of this research study.

Objectives

The Study objectives help the researcher to avoid the collection of data which are not strictly necessary for understanding & solving problem that has defined. This research study will be conducted for fulfilling following objectives-

- To suggest ways for making financial statements more meaningful & comparable.
- To study for resolving conflict of financial interest among various stakeholders.
- To check the variances between follow up practices of Indian Accounting Standards.
- To assess and compare the intensity of transparency in disclosure practices adopted by selected Indian companies.
- To provide a "Standard Model" of accounting policies, valuation, norms and discloser requirement for Indian companies as per identification of weakness.

Research Gap

Research gap is a research question or problem which has not been answered appropriately. It is a blank space among different researches, which has to be filled by new research.

In past research studies in arena of corporate financial disclosure, researchers has investigated the manner of disclosure in various corporate sectors like as cement industries, oil, gas and petrol industries, and plastic industries etc. Some researcher has presented features of research. Another researcher has investigated on social and environmental disclosure. Secondary Indian Accounting Standards has issued in 1977 first time by board of Indian accounting standard, but there has no any research to check variations between their theories and actual follow-up till now. Through this research, Efforts may be executed to check these variations and their ill-effects on stakeholder's interests. Accounting standards has also some limitation, if all the accounting standards would be mandatory for all the type of corporate concern, than how they may be benefited for government and all the related stakeholders. This phenomenon will be rigorously studied in this research.

Hypothesis

On the basis of data collection, the researcher identified the following broader hypothesis for this research study-

- There is no significant association between adoption of actual corporate disclosure practices and their theoretical aspects.
- There is no transparency among financial disclosure presented by corporate concerns.
- The corporate sector does not provide the correct financial information different stakeholders.

Research Methodology

The research methodology is the general pattern of organizing the procedure for collecting valid and reliable data for an investigation. It gives a detailed description of the research procedures that are followed during the investigation. It is a systematic process dealing with identifying problem, collecting data, analyzing these data and reaching at certain conclusion either in the form of solution towards the problem concerned or certain generalization for some theoretical formulation. This research study will be based on the secondary data derived from the annual financial disclosure presented by corporate sector. Data relating to history, growth and development of industries will be collected from

the books, journals related to industries and published paper, reports and article from the various newspapers, bulletins published by the industries and websites. Field survey will also be conducted to get realistic view of information.

As there can be various types of data of sample companies hence, simple random sampling will be useful and will provide for satisfactory results. Random sampling is also more reliable than other sampling method.

Research Design : The Research design for this study will be descriptive as well as analytical. It will be carried out the fulfilling desired objectives and will collect the large number of data from the selected corporate sectors.

Sample Size : For fulfilling the objective of study, 100 National and multinational companies of different sector will be included for research such as Cement, Gas & Oil, zinc, Automobiles, cotton industries etc.

Method of Data Collection : The Data will be collected from the primary and secondary sources. Primary data will be collected with the help of questionnaire. That will be served to the selective corporate sector on the basis of simple random sampling. The questionnaire will be served to 100 respondents. Secondary data in view of corporate disclosures will be collected with the help of annual reports, websites of corporate sector, journals, magazines and newspapers.

Statistical and Presentation Tools : For the data analysis, various statistical tools like- average, percentages, F-test, Chi-square and other statistical tools will be used for analysis and to test the hypothetical relationship among different variables. For the presentation of data, various charts and graph will be also being executed.

Sampling Technique : In Simple random technique, each member of the population has an equal chance of being selected as subject. The entire process of sampling in a single step with each subject selected independently of the other members of the population. In this research, there will be large numbers of item, so other sampling techniques will not produce better results in view of the population. By studying the corporate financial disclosure and accounting standards of selected companies, there will be numerous mathematical equations and information, so simple random technique will be used and that will produce better results.

Conclusion : At Present Time ,Corporate Financial Disclosure By the companies, and their reality has fully different .Companies disclosure fully depend on it's internal benefits. If Government take action then it may helpful for economy Firstly.

References

1. *Aljifri,K. (2008). Annual report disclosure in a developing country: The case of the UAE. Retrieved April20, 2016, from*

   http://dx.doi.org

2. *Akhtaruddin, M., Hossain, M., Hossain, M., & Yao, L. (2009).Corporate governance and voluntary disclosure in corporate annual reports of Malaysian listed firms.*

3. *Ansari, S., & Bell, J. (2009). Five easy pieces: A case study of cost management as organizational change. Retrieved April20, 2016, from*

4. *http://dx.doi.org*

5. *Bauwhede, H. V., & Willekens, M. (2008). Disclosure on corporate governance in the European Union. Retrieved April20,2016,from http://dx.doi.org*

6. *Buzby,S.L (1975). Company size, listed versus unlisted stocks and the extent of financial disclosure. Retrieved April20,2016, fromhttp://jstor.org*

7. *Chen, J., & Roberts, R. (2010). Toward a more coherent understanding of the organization–society relationship:*

   A theoretical consideration for social and environmental accounting research. Retrieved April20,2016,from http://dx.doi.org

8. *Chopra, Meenakshi.(2015). Corporate governance disclosure practices by banking sector. Retrieved April20,2016,from http:// hdl.handle.ne*

Women Empowerment: A Challenge of 21st Century

Usha Rathore
Research Scholar &
Guest Lecturer, K N College , Jodhpur

shodhshree@gmail.com

***Abstract** : Women empowerment is very essential for the development of society. Empowerment gives a women power to think , act freely ,exercise their choice & fulfill their potential as full and equal members of society. Women condition socially & politically has not remain same they were more exploited, deprived & degraded . In this 21st century various steps need to be taken to make women more empowered which would result in more developed society.*

***Key words:** Women Empowerment, Society, Development, Potential , Exploited.*

For centuries women were not treated equal to men in many ways. They were not allowed to own property .They did not have a share in the property of their parents, they have no voting rights, and they have no freedom to choose their work or Job so on. Now that we have come out of those dark days of oppression of women there is a need for strong movement to fight for the rights which man have or in other words a movement for the empowerment of women.

There is no tool for development more effective than empowerment of women. If women is empowered her children her family will be better off. If families prosper so....does the whole country. Women Empowerment " is a burning issue all over the world. "Women empowerment and women equality with men" is a universal issue.

What is the Meaning of Empowerment :

Empowerment is the process of enabling or authorizing individual to think, take action and control work in an autonomous way. It is the process by which one can gain control over one's destiny and the circumstances of one's lives. Empowerment includes control our resources (Physical, human, intellectual & financial) and over ideology (beliefs, values and attitudes). It is not merely a feel of greater extrinsic control but also grows intrinsic capacity. Greater self confidence and an internal transformation of one's consciousness that enables one to overcome external barriers to accessing resources or changing traditional ideology.

Women Empowerment refers to the creation of an environment for women where they can make decisions of their own for their personal benefits as well as for the society. Women Empowerment refers to increasing and improving the social, economic, political and legal strength of the women, to ensure equal-right to women, and to make them confident enough to claim their rights, such as:

- Freely live their life with a sense of self-worth, respect and dignity,
- Have complete control of their life, both within and outside of their home and workplace,
- To make their own choices and decisions,
- Have equal rights to participate in social, religious and public activities,
- Have equal social status in the society,
- Have equal rights for social and economic justice,
- Determine financial and economic choices
- Get equal education and employment opportunity without any gender bias,
- Get safe and comfortable working environment,

Thus Women empowerment is very essential for the development of society.

Why is Need for Women Empowerment

Why women empowerment is important? Women population is around 50% of the total population of the world. They have every right to be treated equally with men in every sphere of life and society. The empowerment of women would result in overall development of society both at micro and macro level. Active participation of women in economic activities and decisions, would contribute towards overall economic development.

- **Under-employed and unemployed:** A large number of women around the world are unemployed. The world economy suffers a lot because of the unequal opportunity for women at workplaces.
- **Equally competent and intelligent:** Women are equally competent. Nowadays, women are even ahead of men in many socio-economic activities.
- **Talented:** Women are as talented as men higher education and encouragement will help women to show their talents which will not only benefit her individually but to the whole world at large.
- **Overall Development of Society:** The main advantage of Women Empowerment is that there will be an overall development of the society.
- **Economic Benefits:** Women Empowerment also leads to more economic benefits not to the individuals but to the society as well. Women empowerment helps women to stand on their own legs, become independent and also to earn for their family which grows country's economy.
- **Reduction in domestic violence:** Women Empowerment leads to decrease in domestic violence. Uneducated women are at higher risk for domestic violence than an educated woman.
- **Reduce Poverty:** Women Empowerment also reduces poverty. Sometimes, the money earned by the male member of the family is not sufficient to meet the demands of the family. The added earnings of women help the family to come out of poverty trap.
- **National Development:** Women are increasingly participating in the national development process. They are making the nation proud by their outstanding performances almost every sphere including medical science, social service, engineering, etc.
- **Irreplaceable in some sectors:** Women are considered irreplaceable for certain jobs.

In spite of the various measures taken up by the government after independence and even during British rule the women haven't been fully empowered.

We may be proud by women in India occupying highest offices of president ,prime minister, loksabha speaker, leader of opposition or women like miss Chandra Kocher occupy in highest positions in the corporate sector but the fact remains that we still witness dowry deaths domestic violence, exploitation of women, rape cases, female feticide is not an uncommon phenomenon. The male female ratio though

improved over last few years is still far from satisfactory.

The ground reality is deprivation, degradation and exploitation of women specially women from rural areas and those belonging to deprived sector of society Women are being brutalized, materialized and subjected to in human exploitation and discrimination. In spite of reservation being granted of women in Panchayat elections after 73rd and 74th constitutional amendment in many panchayats the male chauvinism doesn't allow them to function independently.

How Can Women are Empowered :

Empowerment of Women would result in better and more developed society. When women contribute equally along with men for the benefit of society, the world would surely become a better place to live. There are several ways to empower women; some of them are **discussed below:**

Education as a mean of empowerment of women can bring about a positive attitudinal change. Education increases the economic, social and political opportunities available to woman. It leads to direct economic benefits in the form of higher life time earnings for women.The society and community also benefit from the higher productivity of its labor force.By educating women, economy of the country increases. It has been seen from the last few decades that involvement of educated women in various activities helps the country to move towards economic and social development.Female education also contributes towards health and well-being of the family.Female education also reduces the fertility rate, education increases women's knowledge about controlling fertility and access to family planning services and often encourages them to delay to age at which they marry [lower population growth].

Under the social empowerment of women steps needs to be taken to improve the health status of women, reduce maternal mortality especially in the areas which do not have good medical facilities, a programme for checking the spread of sexuality transmitted diseases like HIV/AIDS and infections / communicable diseases like T.B. need to be launched.

Greater access for women to education must be insured in the educational systems. Gender sensitivity must be developed, a watch has to be kept on dropout rate of girls and corrective measures should be taken to check the dropout rates.Women face high risk of malnutrition hence focused attention would have to be given to meet the nutritional needs of women at all stages of their life cycle.

Awareness programmed need to be organized for creating awareness among women especially belonging to weaker sections about their rights .Government has to be vigilant for ensuring that there is no discrimination against the girl child and her rights protected. The social stigma like child marriage, female feticide, and child abuse and child prostitution must be eradicated immediately.

Women can be empowered by decreasing the gender inequalities or disparities in all sectors of the society especially in education sectors. Job skills (Vocational training): Proper training should be provided to women's for better results.

Create More Part-Time Job Opportunities: In India, mostly women are housewives so they do not get any opportunity for full-time work. Hence, more part-time and flexible jobs should be created so that more and more women get engaged into commercial activities.

Conclusion

Women are playing an important role in nation building we can't deny that.At the root of all problems is how boys and girls are looked at differently even within the family we need to change the outlook in the society.Women should be free to choose career, education, marriage or having a family.Discrimination against women is the root of all troubles there are laws for everything but that is not enough we need speedy justice to create fear in those who commit crime against women. Economic freedom plays a very

important role in empowering women. In order to really bring women empowerment in the Indian society, it needs to understand and eliminate the main cause of the ill practices against women which are patriarchal and male dominated system of the society. It needs to be open-minded and change the old mind set against women together with the constitutional and other legal provisions.

References:

1. *Alsop Ruth Bertelsen Mette Holland, Jeremy:Empowerment in Practice: From Analysis to Implementation,World Bank Publications,2005*
2. *The Healing Project :Women Reinvented: True Stories of Empowerment and Change,LaChance Publishing,2010*
3. *Asian Development Bank :Legal Empowerment for Women and Disadvantaged Groups,2009*
4. *Equality for women, Herndon. US: The World Bank, 2008*

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Individual Subscription Form

Name .....

Designation .....

Name of Organization .....

.....

Address .....

.....

District .....

State

.....

Pin .....

Tel. No. (R) .....

Mobile .....

e-mail .....

Date (Signature)

Frequency	:	Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April , July & October.
Mode of Payment	:	Subscription fee can be deposit through online Banking.
Bank Details	:	Virendra Sharma, OBC Bank, Adarsh Nagar, jaipur SB A/C No. 06722151002965, IFSC Code ORBC 0100672, MICR Code 302022005 Subscription Fees - 1500 Rs.

Membership No. ..... Date .....

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I.....

hereby declared that the paper entitled'.....

.....'is unpublished original paper which is not sent any where for publication.

This paper is prepared by me/jointly with.....

.....which is exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature .....

Name .....

Designation .....

Official Address .....

.....

Residential Address .....

.....

.....

Phone No. ..... Pin No. .....

e-mail Address .....

Shodh Shree

(International Referred Journal of Multidisciplinary Research)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018
Shodhshree@gmail.com

Institutional Membership Form

The Editor
Shodhshree
Jaipur

Dear Sir
I want to become a member of this Journal for -

☐ 1 year	☐ 2 years	☐ 3 years
(Rs. 1000/-)	(Rs. 1800/-)	(Rs. 2500 /-)

I am sending here with Rs..... through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution .....

.....

Address.....

..... Pin Code.....

Phone/Mobile No. .....

E-mail ID .....

Date: Signature

For Office Use Only

Membership No._____ Date_____

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly) i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

Bank Details : **Cheque /DD must be in Favor of Virendra Sharma ,**OBC Bank, Adarsh Nagar, Jaipur
SB A/C NO.06722151002965
IFSC Code ORBC0100672, MICR Code 302022005

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.

2 All manuscripts must be accompanied by the brief abstract, Abstract including Keywords must not exceed more then 150 words.

3. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.

4. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.

5. Maximum word limit of research paper up to 2500 words.

6. Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.

7. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.

8. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.

9. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

Research Paper may be sent to our e-mail: shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134

To,

प्रिन्टेड मैटर
If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)
54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक - वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर-302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।
मुद्रण स्थल आकृति एड्वरटाईजर्स, जयपुर